''जनपद जालौन के कृषि विकास में जिला सहकारी बैंक की भूमिका''

अर्थशास्त्र विषय में पी-एच0 डी0 उपाधि हेतु

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी

को

प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

⁜

प्रस्तुतकर्ता

शरद जी श्रीवास्तव

वरिष्ठ प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग

डी0 वी0 कालेज, उरई

⁜

निर्देशक

डा० के० पी० गुप्ता

रीडर एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग

डी0 वी0 कालेज, उरई

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय

उरई, (जालौन) उत्तर प्रदेश

2004
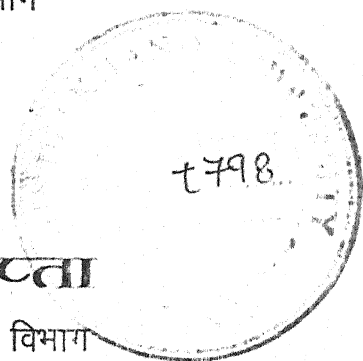
घोषणा पत्र

मैं घोषणा करता हूँ कि प्रस्तुत शोध कार्य मैंने डा0 के0पी0 गुप्ता के निर्देशन में किया है। शोध प्रबन्ध की सामग्री मौलिक है तथा सम्पूर्ण लेखन स्वतन्त्र रुप से स्वयं के द्वारा किया गया है। इसमें प्रयुक्त तथ्यों एवं समंकों का संकलन मैंने स्वयं किया गया है तथा तथ्यों पर आधारित आरेखों की रचना भी मैंने स्वयं की है।

Sharad ji Srivastava

(शरद जी श्रीवास्तव)

वरिष्ठ प्रवक्ता, अर्थाशास्त्र विभाग

दयानन्द वैदिक कालेज, उरई

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री शरद जी श्रीवास्तव ने ''जनपद जालौन के कृषि विकास में जिला सहकारी बैंक की भूमिका'' विषय पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पी0एचडी0 उपाधि हेतु निर्धारित नियमानुसार मेरा निर्देशन प्राप्त करके लिखा है । यह शोध प्रबन्ध श्री शरद जी श्रीवास्तव के स्वयं के शोध कार्य पर आधारित है और यह उनकी मौलिक कृति है।

श्री शरद जी श्रीवास्तव ने निर्धारित नियमों के अनुसार वांछित अवधि 24 माह से अधिक समय उपस्थित रहकर मेरा निर्देशन प्राप्त किया और मेरे अभिमत में यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी को पी0एच0डी0 उपाधि हेतु निर्धारित अध्यादेश की अनिवार्यताओं की सम्पूर्ति करता है ।

दिनांक : 5/6/04

(डा0 के0 पी0 गुप्ता)
एम0ए0, एम0काम0 पी0एच0डी0
रीडर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
दयानन्द वैदिक कालेज, उरई

कृतज्ञता-ज्ञापन

सर्वप्रथम मैं महाविद्यालय के प्राचार्य डा.एन.डी. समाधिया का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होनें समय–समय पर मेरी सुप्त भावना को आन्दोलित कर प्रोत्साहित किया, परिणामतं मेरी इस शोध–संरचना का संकल्प सत्कार हो सका।
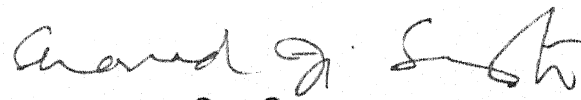
मुझे यह स्वीकार करते हर्ष है कि मेरे विभागाध्ययन एवं गुरू श्रद्धेय डा0 के. पी. गुप्ता के हर प्रकार के प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोग और प्रांसगिक अमूल्य सुझावों ने शोध–संरचना के अंकुरित, प्रस्फुटित, पुष्पित और अन्ततः परिष्कृत हो फलित होने में अविस्मणीय भूमिका अदा की है।

मैं कभी भूल न सकूँगा डा0 आर.जी.निगम, अवकाश प्राप्त अध्यत्त अर्थशास्त्र विभाग डी. वी. कालेज उरई तथा मेंरे परम आदरणीय गुरू जी की असीम अनुकम्पा को, जिन के अथक प्रयास व शोध संरचना के परिमार्जन, परिष्करण और आदर्श परियोजना के सफल प्रस्तुतीकरण में सराहनीय भूमिका अदाकर शोध संरचना को सम्पूर्णता प्रदान की।

विभिन्न सरकारी, सहकारी व गैर सरकारी विभागोध्यक्षों व उनके कर्मचारियों का विशेष रुप से श्री सुरेन्द्र सिंह सेंगर महाप्रबन्धक जालौन डिस्ट्रिक कोआपरेटिव बैंक उरई का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। जिन सभी के सहर्ष सहयोग से अनुभवपूर्ण जानकारियाँ व आधुनिकतल समंक प्राप्त हो सके एवं प्रश्नावलियों का आदान प्रदान सम्भव हो सका।

इस अवसर पर मै उन सभी द्विजनों का लेखकों के प्रति क्षमा याचना करना चाहूँगा जिनकी पुस्तकीय सामग्री की सहायता के बिना यह शोध संरचना कभी पूर्ण आकार ही न ले पाती।

अन्ततः उन सभी इष्ट मित्रों महाविद्यालयी साथियों के प्रति विनम्र भाव व्यक्त करता हूँ जिनकी शुभकामानएं मेरे इस लघु शोध प्रयास में सदैव मेरे साथ रहीं।

शरद जी श्रीवास्तव
वरिष्ठ प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग
दयानन्द वैदिक कालेज, उरई

प्राक्कथन

भारत में आयोजन के संस्थापक सहकारिता को दलित, शोषित व पिछड़े वर्गों के आर्थिक विकासार्थ विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में एक मात्र समुचित, समीचीन और संतोषप्रद हल समझते थे और आज भी वे ग्राम पंचायत, ग्राम सहकारी समिति और ग्राम विद्यालय को ऐसे संस्थानों की त्रिमूर्ति स्वीकार करते हैं जिस पर आधारित एक स्वावलम्बी और सामाजार्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण और न्यायपूर्ण समग्र सामाजार्थिक सम्पन्न व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

आज भी प्राथमिक सहकारी समितियों के शोषण रहित, स्वेच्छ–सदस्यता, अविकेन्द्रित निर्णय पद्धति, एक व्यक्ति एक वोट सिद्धान्त और लाभ पर सर्वस्वीकृत नियंत्रण के साथ–साथ सहकारी समितियों में सार्वजनिक हितों व व्यक्तिगत स्वामित्व को समाहित करके सहकारिता व सहकारी समितियों को कृषि व्यवस्था के चतुर्दिक विकास का एक आदर्श व महत्वपूर्ण उपकरण बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है। इसी महत्व को अंगीकार करते हुये उत्तर प्रदेश सरकार में वर्तमान सहकारिता मंत्री श्री राम प्रकाश त्रिपाठी द्वारा सहकारी समितियों को कल्पतरु से सम्बोधित करने को तथा 'सहकारिता आपके द्वारा–महा अभियान 2002' को 25 दिसम्बर से 25 अक्टूबर 2002 तक प्रदेश व्यापी आन्दोलन के रुप में चलाने का आग्रह किया गया है। जनपद स्तर पर समस्त सहकारी समितियों पर गोष्ठियाँ व शिविर आयोजित किये जायेंगे, और इस समस्त प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु जनपद का केन्द्रीय सहकारी बैंक ही होगा, अस्तु इस नाते जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 के क्रियाकलापों का अध्ययन और उसकी ग्रामीण एवं कृषि विकास में सक्रिय भागीदारी का महत्व और भी बढ़ जाता है।

ऐसा नहीं कि आज ये प्रयास सर्व प्रथम किये जा रहे हों वरन् सहकारिता आन्दोलन (जो कि भारत में 1904 में प्रारम्भ हुआ) की सफलता सुनिश्चित करने हेतु, कई प्रकार के अभिनव प्रयास व प्रयोग देश में व प्रदेश में एक निश्चित नीति के रूप में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने 1937 में 'कृषि साख विभाग' की स्थापना के साथ–साथ प्रारम्भ किये गये थे, जिसके अन्तर्गत सहकारिता को एक विश्वसनीय व शीघ्रगामी अनिवार्य केन्द्र मानकर, ग्रामस्तर पर प्राथमिक समितियां, जनपद स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक और राज्य स्तर पर शीर्ष सहकारी बैंक खोलकर इनकी सहायतार्थ रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, को एक मित्र, एक दार्शनिक तथा एक पथ–प्रर्दशक की भूमिका सौंपी गई थी, परन्तु 1951–1954 में गठित की गई अखिल भारतीय ग्रामिण साख सर्वेक्षण समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशों के साथ–साथ इस टिप्पणी के बाद कि ''भारत में सहकारिता असफल हो गई है........................'', रिजर्व बैंक ने इस दायित्व को 1955 में स्टेट बैंक आफ इण्डिया तत्पश्चात् कृषि पुनर्वित्त निगम को और अन्ततः प्रादेशिक व राष्ट्रीय स्तर पर 1982 में राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) को सौंप दिया, अस्तु आज साख सहकारिता का पिरमिडाकार ढांचा निम्नाकिंत स्वरुप में है :
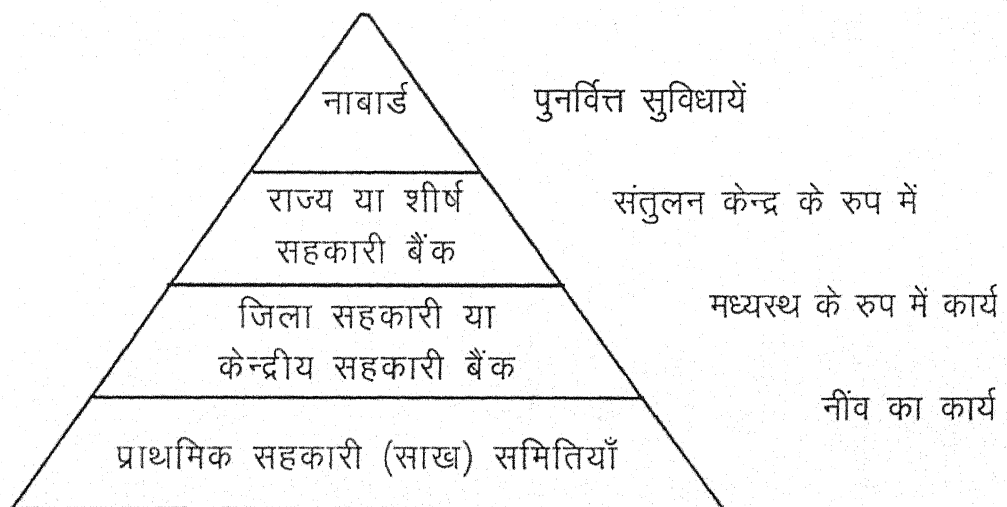
प्रस्तुत शोध संरचना ''जनपद जालौन के कृषि–विकास में जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई की भूमिका'' में जिला सहकारी बैंक या केन्द्रीय बैंक एक ओर ग्राम स्तर पर प्राथमिक सहकारी साख समितियां और दूसरी ओर राज्य या शीर्ष सहकारी बैंक से प्रादेशिक स्तर के साथ–साथ नाबार्ड जैसी राष्ट्रीय स्तर की साख प्रदान करने वाली संस्था के मध्य एक मध्यस्थ या पुल का कार्य करता है।
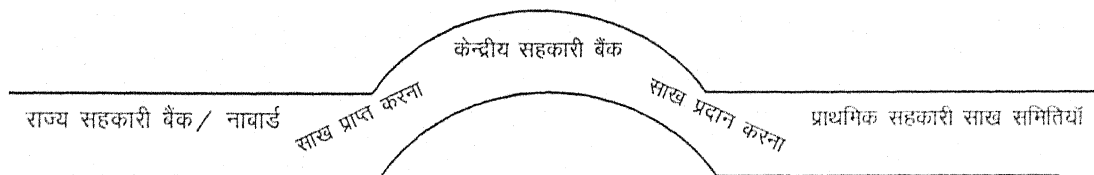
अस्तु सदैव से ही प्राथमिक सहकारी समितियों को सामयिक समुचित व सस्ती साख केन्द्रीय सहकारी बैंक देता रहा है और सदैव से ही एक सक्षम, सचेष्ट, स्वाबलम्बी तथा समर्पित मध्यस्थ की अनिवार्यता का अनुभव किया जाता रहा है। जब जब कोई समस्या उत्पन्न हुई है, चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र में हो या सामाजार्थिक क्षेत्र में, उसका समाधान किसी न किसी मध्यस्थ से ही सम्भव हो सका है, यदि वह शुद्ध अर्न्तमन से संकटमोचन स्वरूप में प्रकट हो प्रस्फुटित व प्रवाहित हुई हो।

यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं तो भी मध्यस्थ की भूमिका का महत्व स्पष्ट हुआ है। इतिहास साक्षी है कि जब कभी निर्धनता, भुखमरी, शोषण या अकाल के गाल में निःसहाय व निरीह जन समुदाय समाने लगा है, शोषित व शोषणकर्ता, शक्तिहीन व शक्तिशाली, निर्धन व धनी, विपन्न और सम्पन्न, के मध्य सामाजार्थिक विषमता की खाई और गहरी व चौड़ी हुई है, जब जब सबल व समर्थ द्वारा यातनाओं का अन्तहीन सिलसिला जारी रहा है तब–तब जारशाही, तानाशाही और राजशाही सत्ता के द्वार स्वयं खुले हैं और किसी न किसी 'रेफसिन, शुल्जे या लुज्जेटी' जैसे उदार

भाव मनीषियों ने युगपुरुष व कल्याणकर्ता के रुप में अवतरित हो एक प्रभावी मध्यस्थ की भूमिका निभाई है तथा ऐसी अनूठी केन्द्रीय संस्थास्वरूप संजीवनी का सूत्रपात किया है व क्षुधा से पीड़ित, कुपोषित, कर्ज के बोझ से सदियों से लदे अर्धनग्न, वस्त्रहीन, गृहहीन, पराधीन प्राणियों में आशा और उल्लास की किरण जगाई है और उन्हें आशामय जीवन की राह का मार्ग निर्देशन एक सच्चे मित्र और पथ प्रदर्शक की भांति कर, सहकारिता के मार्ग पर चलने व 'एक सब के लिये व सब एक के लिये' का स्वार्थ रहित उत्तम पाठ पढ़ाया है और इस प्रकार नारकीय जीवन यापन करने वालों के जीवन में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का महामंत्र फूंक कर एक अनुकरणीय अनुपम मध्यस्थ की सार्थक भूमिका निभाई है।

केन्द्रीय सहकारी बैंक इसी प्रकार ग्रामीण कृषि भूमि रूपी शरीर में एक हृदय के समान कार्य करता हुआ निरन्तर गांव-गांव में फैली व्यापक सहकारी समितियों के माध्यम से साख रूपी रक्त प्रवाहित कर उनको सफलतापूर्वक संचालित, सक्रिय व सजीव रखने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकने में सहायक सिद्ध हो सकता है। उदाहरणार्थ मुम्बई, चेन्नई, पंजाब, हरियाणा के केन्द्रीय सहकारी बैंक जिन्होंने द्वारा सस्ती, सामयिक व समुचित साख सुलभ करा कर अपने प्रभावी व सतत् सम्पर्क स्थापित रखकर प्राथमिक सहकारी साख समितियों को साख ऋण राशि की ऐसी संजीवनी प्रदान की है कि कृषि क्षेत्र में द्रुतगति से चमत्कारिक विकास सम्भव हुआ है। ठीक इसके विपरीत जहां जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों ने तनिक सी भी उदासीनता, ढिलाई व 'स्वजन हिताय' की नीति का प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से अनुसरण किया गया है वहीं प्रगति एवं विकास तो कोसों दूर हो गये हैं और सहकारी समितियाँ ग्रामीण सहकारी बैंक व केन्द्रीय सहकारी बैंक आर्थिक झंझावात व झंझटों की भंवर में फंस कर डूब गये हैं यथा प्रदेश में गोण्डा जिला सहकारी

बैंक, सिटी सहकारी बैंक लखनऊ आदि। इससे एक अति संशयात्मक स्थिति के उपजने के कारण निम्नांकित निराशात्मक दृष्टिकोण प्रदेश के केन्द्रीय बैंकों के कार्य कलापों के बारे में भी सत्य सा लगता है।

''हमने भूतकाल में भी सहकारी समितियों को अपनाकर साख समितियों व किसान सेवा समितियां चालू कर और अन्ततः जनपद एवं राज्य सहकारी बैंक व क्षेत्रीय बैंक स्थापित कर अनेकानेक प्रयोग किये परन्तु इसमें से कोई ग्रामीण कृषि की समस्या का अचूक समाधान सिद्ध नहीं हो सका।''

– आर0 के0 पटेल

श्री पटेल का उक्त कथन तथा उत्तर प्रदेश में केन्द्रीय सहकारी बैकों की विफलता, यद्यपि दोनों ही एक पैमाने पर तो नहीं मापे जा सकते हैं, परन्तु इतना अवश्य ही तार्किक आधार पर कहा जा सकता है कि जब–जब कोई कमीशन, समिति या अध्ययन दल आर्थिक समस्याओं के सामाधानार्थ गठित किया गया है तो सर्वेक्षण का व्यापक अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण ही उनका अधिकतर आधार रहा है जबकि मेरे दृष्टिकोण में किसी आर्थिक समस्या का निदान व्यापक दृष्टिकोण अपना कर एक सामान्य निष्कर्ष निकाल देना न होकर अणु या सूक्ष्म अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण होना चाहिये और देश या प्रदेश को सर्वेक्षण का आधार न मानकर विशेष स्थानीय इकाइयों का गहन व गम्भीर अध्ययन तथा विवेचन करना चाहिये, कारण यह है कि भारत जैसा विशाल देश जिसमें अत्यधिक भौगोलिक विषमताएं यथा भूमि संरचना, जलवायु पाई जाती हैं, जहां रहन–सहन व रीतिरिवाज के ढ़र्रे मानवीय सोच पर प्रभावी ढ़ंग से पकड़ बनाये हैं और जिससे उनकी मानसिकता व क्रियाशीलता प्रभावित होती है वहां सामान्य निर्णय व निष्कर्ष, सुधार व समाधान, सटीक व समीचीन हल प्रस्तुत कर सकेंगे, सही व सार्थक न लग कर संदेहात्मक ही प्रतीत होता है।

इस नाते जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 का शोधीय–अध्ययन निश्चय ही अति महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि बुन्दलेखण्ड की भूमि संरचना, जलवायु ही नहीं वरन् शताब्दियों से गरीबी और शोषण की मार झेल रहे यहां के असंख्य ग्रामीण व किसान मानसिक विचारहीनता से ग्रसित होने के कारण पाशविक प्रवृत्ति के पोषक व नारकीय जीवन झेलने के अभ्यस्त से हो गये हैं। उनकी सोच कुंठित है और यह कथन कि 'भारतीय कृषक ऋण में पैदा होता, ऋण में ही जीवित रहता है और ऋण में ही मरता है व अपने ऋण को अपनी सन्तानों के लिये छोड़ जाता है,' यहां सत्य का पर्याय सा लगता है। अस्तु इस नाते यह जानना आग्रह का विषय बन जाता है कि विगत 50 वर्षों में जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई की क्या भूमिका या क्या योगदान कृषि और कृषकों के विकास में रहा है।

तेजी से बदलते हुये सामाजार्थिक परिवेश में जब कि देश में हरित क्रान्ति के प्रवेश, प्रभाव व फैलाव की पुष्टि की जा रही है, जनपद जालौन में इसका कितना सार्थक प्रभाव हुआ है और उससे कृषि का कितना विकास किस–किस माध्यम से हुआ है, एक जिज्ञासा का विषय अवश्य ही बन जाता है इस सम्बन्ध में इस तथ्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता कि जहां देश की 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे रह रही है और इस जनसंख्या की 8 प्रतिशत निर्धनता से नीचे रहने वाली जनसंख्या उत्तर प्रदेश में और इस 8 प्रतिशत का अधिकांश भाग बुन्देलखण्ड व जनपद जालौन में ही रहता है। ऐसे में उन्हें देश की कृषि–ग्रामीण–क्रान्तियों से कितना लाभ सम्भव हो सका है या वे आज भी अछूते ही रह गये हैं, यह जानना आवश्यक सा लगता है।

हरित क्रान्ति की सरल शब्दों में यदि व्याख्या की जाय तो बैल व हल के स्थान पर ट्रेक्टर का प्रयोग सिंचाई, निकाई, मड़ाई, गुड़ाई आदि के लिये अधिकाधिक उर्वरक, गोबर के स्थान पर यूरिया, फास्फेट, आदि का

प्रयोग, पंम्पिग सेट का प्रयोग विनोअर, हारवेस्टर व थ्रेशर का प्रयोग व ब्लोअर का प्रयोग माना जाता है। पंजाब, हरियाणा में इनका प्रयोग सर्वाधिक हुआ है और इसलिये वहां सम्पन्नता व समृद्धि चतुर्दिक देखने को मिलती है परन्तु उत्तर प्रदेश और उसमें भी जनपद जालौन जिसे औद्योगिक मरुस्थल तो कहा जाता ही है। साथ ही उक्त प्रदेशों की तुलना में न केवल अत्यन्त पीछे हैं वरन् पिछड़ों में भी पिछड़े क्षेत्र में इसकी गिनती की जाती है। ऐसे में यदि जनपद में कृषि व ग्रामीणांचलों में विकास की ज्योति जलाना है तो गांव–गांव में फैली प्राथमिक सहकारी समितियों तक उपरोक्त सभी सुविधायें सुलभ कराना नितान्त आवश्यक है और इस नाते जनपद में केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा इसके द्वारा खोली गई ग्रामीण बैंकिग शाखायें व उनके द्वारा सहकारी समितियों व उनके सदस्यों तक इन तकनीकी संयन्त्रों की क्रय या इनकी सेवाओं को सुलभ करने की महत्वपूर्ण भूमिका की अनिवार्यता एवं सक्रियता किस हद तक अदा की गई है, कितनी सफलता या विफलता मिली है, यह अवश्य ही जिज्ञासा व अध्ययन का विषय बन गया है।

वर्तमान में उत्तर प्रदेश में जो जनपद स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैकों का परिदृश्य उभरकर सामने आया है वह कुछ संतोषप्रद व सफल समाधान की ओर संकेत नहीं करता । उत्तर प्रदेश में वर्तमान राज्य सहकारिता मंत्री श्री राम प्रकाश त्रिपाठी के अभिभाषण से, जो उन्होंने 25 सितम्बर 2002 को सहकारी भवन लखनऊ के प्रेक्षागार में दिया, वह स्पष्ट रूप से उनकी खिन्नता और हताशा के भाव को गोण्डा जिला सहकारी बैंक और समयान्तर सिटी सहकारी बैंक लखनऊ के बन्द होने के कारण दर्शाता है। उन्हीं के सचिव के अनुसार 70 जिलों में से 30 जिला सहकारी बैंक घाटे में चल रहे हैं। इन पर रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की अंकुश लगाने की पूर्ण सम्भावना है–(ए.के.जोशी)। अरबों रुपये की सहकारी सम्पत्तियाँ निष्क्रिय

पड़ी हैं–(सह0मंत्री)। सहकारिता क्षेत्र में डेढ़ करोड सदस्य हैं, इनमें से 75 प्रतिशत चुनाव के काम आते हैं (अनिता सिंह–विशेष सचिव)। पूर्व मंत्री श्याम सुन्दर शर्मा ने जिला सहकारी बैकों में बढ़ रहे राजनीतिक हस्तक्षेप व नौकरशाही की दखलंदाजी पर टिप्पणी की, एल.एम.चौबे ने कहा ''नाबार्ड की स्थापना कृ षि क्षेत्र की सहायता के लिए हुई थी मगर यह छोटे सहकारी बैंकों की वह मदद नहीं करता, यहाँ तक कि इस क्षेत्र में बैंकों के लिए केन्द्र सरकार की कोई योजना नहीं है।

(दैनिक जागरण 21 व 26.9.02)

अस्तु इन तीखी आलोचनाओं व टिप्पणियों की भनक व उससे उत्पन्न होती हुई निराशात्मक भावनाओं ने स्वभावतः मुझे, जो अर्थशास्त्र के सहकारिता विषय से जुड़ा होने के कारण और अर्थदृष्टि से जालौन जिला सहकारी बैंक का सदस्य होने के नाते, इतना सशंकित व प्रभावित किया कि जिज्ञासावश इस जिला सहकारी बैंक पर जो लगभग एक शताब्दी (1907) से ख्याति अर्जित कर तत्परता से जनपद की सेवा में कार्यरत है, पर एक गहन सूक्ष्म विश्लेषण विधि, व आकस्मिक निर्देशन विधि (रेण्डम सेम्पलिंग मेथड) का अनुसरण कर यह जानने का मौलिक व सार्थक प्रयास करूं जो निष्पक्ष भाव से जिला सहकारी सहकारी बैंक लि0 उरई की सेवाओं का मूल्यॉकन कर, उसके क्रिया कलापों द्वारा जन जन तक पहुँचने वाले लाभ और कार्यशैली के गुण व कमियों को उजागर कर कुछ ऐसे सुझाव प्रस्तुत करूं जिससे जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई ही नही वरन् सभी केन्द्रीय बैंकों तथा सहकारी संस्थागत संस्थाएं जो जपनदीय सामाजार्थिक प्रगति के अभिन्न अंग व कृषि विकास की महत्वपूर्ण धुरी बन गयी हैं, व्यावहारिक रूप से लाभान्वित हों और जनपदीय अर्थव्यवस्था में चार चाँद लगा सकें।

शोध-संरचना

प्रस्तुत शोध संरचना 'जनपद जालौन के कृषि विकास में जिला सहकारी बैंक की भूमिका' का विश्लेषणात्मक विवेचन नौ (9) अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है तत्पशचात् उनसे प्रतिध्वनित निष्कर्ष के माध्यम से शोध प्रबन्ध का समापन एक मौलिक परिकल्पना से किया गया है।

प्राक्कथन में विभिन्न तर्कों द्वारा कृषि एवं ग्रामीण वित्तीय के क्षेत्र में एक मध्यस्थ की भूमिका के महत्व व अनिवार्यता को दर्शाया गया है। इसी सन्दर्भ में प्रदेश में केन्द्रीय सहकारी बैकों की वर्तमान असंतोषजनक स्थिति को स्पष्ट करते हुये शोध–प्रबन्ध के निहित उद्देश्य को प्रेरणा की परिणति बतलाया गया है। स्वीकृत तालिकाओं के प्रति प्रतिबद्धता होने के कारण इसी में शोध–अध्ययन की रीतिओं व शोध समस्याओं को सम्मलित किया गया है।

प्रथम अध्याय में कृषि साख की अवश्यकता तथा महत्व को दर्शाते हुए, संस्थागत साख की भूमिका को समंको व तालिकाओं के सहारे प्रस्तुत किया गया है।

शोध–प्रबन्ध का क्षेत्र होने के नाते द्वितीय अध्याय में जनपद जालौन का परिचयात्मक विश्लेषण एवं इसके समाजार्थिक विकास का विस्तार से वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की साख संस्थाओं का वर्गीकरण, उनका ढाँचा तथा उनके द्वारा प्रदत्त सेवाओं और कार्य प्रणाली का उल्लेख किया गया है। इसी अध्याय में अल्पकालीन, मध्यकालीन प दीर्घकालीन सहकारी साख प्रदान करने वाली संस्थाओं का सविस्तार व अलग–अलग वर्णन है।

शोध–प्रबन्ध की विषय–वस्तु होने के कारण चतुर्थ अध्याय में जालौन जिला सहकारी बैंक लि0, उरई (केन्द्रीय सहकारी बैंक) के कार्यों, सेवाओं, ऋण–नीति, प्रदत्त ऋण, उत्तरोत्तर प्रगति व हानि लाभ की पूर्ण व्याख्या की गई है।

अध्याय पंचम में जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई की ग्रामीण शाखाओं, उनसे सम्बद्ध सहकारी समितियों तथा सदस्यों से प्राप्त वितरित प्रश्नावलियों के आधार पर बैंक की भूमिका का मूल्यांकन किया गया है।

अध्याय षष्टम के अन्तर्गत जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई तथा उसकी ग्रामीण शाखाओं द्वारा प्रदान किये गये ऋणों का जनपद की ग्रामीण–अर्थव्यवस्था तथा विभिन्न वर्गों क्षेत्रों व व्यवसायों पर पड़ने वाले प्रभाव को रेखांकित किया गया है।

सप्तम अध्याय में जनपद की कृषि–वित्त व्यवस्था में जालौन जिला सहकारी लि0 उरई एवं अन्य साख संस्थाओं यथा स्टेट बैंक आफ इण्डिया, राष्ट्रीयकृत इलाहाबाद बैंक, छत्रसाल ग्रामीण बैंक तथा राज्य कृषि एवं ग्राम्य विकास बैंक का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अष्टम अध्याय विभिन्न बाधाओं, कठिनाइयों, कमजोरियों व व्यावधानों और अनुचित कारगुजारियों का सैद्धान्तिक, व्यवहारिक तथा वास्तविक आधार पर विषद विवेचन प्रस्तुत करता है।

नवम् अध्याय में विभिन्न प्रकार के सुझावों की सैद्वान्तिक, व्यवहारिक तथा वास्तविक व्याख्या प्रस्तुत की गई है तथा सुधारों का उल्लेख किया गया है।

अन्ततः शोध–प्रबन्ध की सैद्धान्तिक व व्यवहारिक समग्र सामग्री को समाहित कर, उनसे उजागर हुए तथ्यों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए एक मौलिक सम्पूर्णता लिए हुए 'आदर्श परिकल्पना' को चित्रित किया गया है, जो यदि कार्यान्वित की गई तो निश्चय ही जनपद के कृषि विकास का सरल, व्यवहारिक एवं स्थायी हल प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होगी।

शोध संरचना का उद्देश्य

प्रारम्भिक पृष्ठांकित विचारों के संदर्भ में विषय पर शोध–कार्य के उद्देश्य की अनिवार्यता इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि केन्द्रीय हों या जिला सहकारी बैंक हों, का मूलरूप से कभी भी कोई भी अखिल भारतीय स्तर पर या प्रादेशिक स्तर पर सर्वेक्षण किसी भी आयोग, अध्ययन दल या समिति द्वारा नहीं किया गया, और न वह तत्परता ही दिखाई गई जैसी ग्रामीण स्तरीय (ग्रासरुट लेविल) पर अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति या इसी प्रकार की इसके पूर्व व पश्चात् जो भी आयोग या अध्ययन दल गठित किये गये या फिर शीर्ष सहकारिता संगठनों के लिये गठित आयोग या ट्रिब्यूनलों द्वारा दिखाई गई।

केन्द्रीय सहकारी बैंकों की मूल्याँकन–क्रिया व नियंत्रण का कार्य या तो राज्य सहकारी बैंकों को या फिर अब नाबार्ड जैसी शीर्ष कृषि विकास सहायतार्थ गठित संस्था को सौंप दिया गया। इन दोनों संस्थाओं ने अपने निश्चित प्रपत्रों पर वार्षिक प्रगति प्राप्त कर अपने सुधार के सांकेतिक सुझाव प्रस्तुत करना एक वार्षिक–दिनचर्या के रुप में भेजना व प्राप्त करना, तो जारी रखा परन्तु शायद इस बात का गहन गम्भीरता से विवेचन नहीं किया कि कहां व किस सीमा तक सैद्धान्तिक रुप से केन्द्रीय सहकारी बैंक सभी नियमों का पालन करते है या नहीं, जो सुझाव व समस्या व समस्याओं के हल की ओर जालौन डिस्ट्रिक कोआपरेटिव बैंक लि0, उरई का ध्यान आकर्षित किया गया उनका अनुपालन हुआ है या हो रहा है या नहीं। नाबार्ड की उपेक्षापूर्ण स्थिति पर प्रथमावलोकन पर ही टिप्पणी इस तथ्य की ओर संकेत करती है।

दूसरी ओर केन्द्रीय सहकारी बैंकों की विवशता यह है कि उनकी एक निश्चित कार्यप्रणाली नाबार्ड के गठन के पहले से चली आ रही है, कारण

यह कि उनकी अधिकांश अंशपूजी ऐसे नागरिकों के स्थायी खातों से जुड़ी है जिनके प्रति बैंक का उत्तरदायित्व है या यूं कहिये कि केन्द्रीय सहकारी बैंक, उरई उनका सदैव से सफलता पूर्वक निर्वाह करता आ रहा है और उस लीक से सरलता से हटना बैंक के लिये सम्भव नहीं। इसके साथ– साथ नाबार्ड या राज्य सहकारी बैंकों से अनेक प्रायः आते–जाते प्रपत्रों की भांति ही समझकर उन प्रपत्रों में निहित आदेशों और सुझावों को एक सामान्य प्रक्रिया मानकर यथा सम्भव ही अनुपालित कर पाता है।

अस्तु मैं एक अर्थशास्त्र विभाग का प्रवक्ता होने के नाते जहाँ सहकारिता एक महत्वपूर्ण विषय के रुप में अध्यापन का विषय है तथा वर्तमान सहकारिता मंत्री श्री राम प्रकाश जी की निराशाजनक टिप्पणी से इसलिये भी प्रभावित हुये बिना नहीं रह सका कि जब प्रदेश के 70 केन्द्रीय सहकारी बैकों में से 30 बैंक घाटे पर चल रहे हैं तथा केन्द्रीय सहकारी बैंक उरई जिसका मैं एक सदस्य भी रहा हूँ तो इस बैंक की वस्तुस्थिति की जानकारी करुँ और इस निष्कर्ष पर पहुँचने में सफल हो सकूं कि यह 1907 से कार्य कर रहा बैंक किस हद तक बुन्देलखण्ड की पिछड़ी कृषि तथा कृषकों की दशा को सुधारने में सहायक हुआ है, कहाँ तक लघु कृषकों व भूमिहीन कृषकों के जीवन स्तर को उठाने में सहायक हुआ है और यदि बैंक की प्रगति में कोई ऐसे अवरोध उत्पन्न हुये हैं जिनके कारण आशानुरुप सहायता व प्रगति सम्भव नहीं हुई है, तो इस दिशा में कुछ मौलिक व व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत कर इस केन्द्रीय बैंक की प्रगति में अपना योगदान प्रस्तुत कर सकूं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं इस शोध प्रबन्ध संरचना के माध्यम से निर्भीक व निष्पक्ष मूल्याकंन द्वारा कुछ अनुत्तरित, ज्वलन्त समस्याओं और प्रश्नों का व्यावहारिक व समीचीन हल प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा कर सकूँगा तथा अनेक अनछुए अध्यायों को उजागर कर जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई

को एक सारगर्भित व सरल हल प्रस्तुत कर सकूँगा, साथ–साथ अपने पुनीत अभीष्ट के अवश्यम्भावी लक्ष्य को भी पूरा कर सकूँगा।

शोध संरचना विधि (मैथडोलौजी)

प्रस्तुत शोध कार्य के अध्ययन का आधार द्विस्तरीय सोपान है:–

(अ) सूक्ष्मावलोकन विधि (माइक्रोएप्रोच)

(ब) आकस्मिक निर्देशन विधि (रेन्डमसेम्पलिंग मेंथड)

(अ) सूक्ष्मावलोकन विधि :-

सूक्ष्मावलोकन विधि के अन्तर्गत निःसंदेह प्राथमिक एवं द्वितीयक समको पर निर्भर करेंगे। प्राथमिक समंको में हम लाभार्थी, व्यक्तिगत सदस्यों, बैंक की ग्रामीण शाखाओं व ग्रामीण सहकारी बैंकों से सम्बद्ध सहकारी साख समितियों से प्राप्त सभी समंको, प्रपत्रों व सूचनाओं का अध्ययन कर निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया अपनायेगें। जहाँ तक द्वितीयक संमकों का सम्बन्ध है, नाबार्ड व उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी बैंक से सम्पर्क स्थापित कर शोध–कार्य से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। इसके अतिरिक्त समय–समय सम्बन्धित सहकारिता साहित्य, पर विभिन्न विचार धाराओं को समाहित करने हेतु सम्बन्धित नवीनतम पुस्तकीय साहित्य, योजना, कुरुक्षेत्र, यू. पी. कोआपरेटिव जनरल व अखिल भारतीय कोआपरेटिव जनरल व ऐसी ही अनेक सहायक पत्रिकाओं व दैनिक समाचार पत्रों में दिये गये समीचीन विचारों का भी समावेश कर, चर्तुमुखी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

(ब) आकस्मिक निदर्शन विधि (रेन्डम सेम्पलिंग मेथड) :–

इस विधि के अर्न्तगत जैसा स्पष्ट है हम प्रत्येक ग्रामीण प्राथमिक सहकारी समिति में जा कर तथा ग्रामीण सहकारी बैंकों से सम्बद्ध साख सहकारी समितियों के सदस्यों से सम्पर्क स्थापित करेंगे तथा एक प्रश्नोत्तरी

की सहायता से, जो प्रत्येक के स्वरूप के अनुरूप होगी, सभी को अधिकाधिक संख्या में देंगे, उन्हें समय देंगे तथा उनसे निष्पक्ष भाव से सभी सूचनाओं को समाहित करा कर और बिना किसी प्रभाव के सही सूचनाऐं भराकर उनसे वापस लेंगे। इसमें भी मेरे प्रमुख उपकरण के रूप में

(अ) व्यक्तिगत सदस्य/लाभार्थी

(ब) बैंक की ग्रामीण शाखायें

(स) बैंक की ग्रामीण शाखाओं से सम्बद्ध सहकारी साख समितियाँ और

(द) जिला सहकारी (केन्द्रीय) बैंक होंगें।

इसके अतिरिक्त वे व्यक्ति भी सम्पर्क में लाये जायेंगे, जिनके स्थाई निक्षेप बैंक की स्थाई पूंजी बनाते हैं। अन्ततः इन तीनों उपकरणों से सम्पर्क स्थापित कर तथा प्रश्नोत्तरियों का एकत्रीकरण कर विषद् विवेचन व विश्लेषण कर उनके केन्द्रीय सहकारी बैंक उरई के कार्यकलापों पर पड़ने वाले प्रभाव और निष्कर्षतः बैंक की प्रगति और उससे जनपद की कृषि के विकास में तथा ग्रामवासियों के स्तर में आशानुरूप गुणात्मक व रचनात्मक सुधार हुआ या नहीं, इसका मूल्यांकन प्रस्तुत किया जायेगा।

शोध समस्या का परिसीमन :-

सूक्ष्मावलोकन विधि पर आधारित यह शोध – संरचना जहां एक ओर केन्द्रीय सहकारी बैंक उरई या पंजीकृत नाम जालौन डिस्ट्रिक कोआपरेटिव बैंक लि0 उरई के नाम से जानी जाने वाली संस्था को केन्द्र बिन्दु मान कर उसके कार्यकलापों, प्रगति व उसके प्रभाव को दर्शाती है वहीं दूसरी ओर जनपद जालौन के अन्तर्गत नौ विकास खण्डों में फैली इसकी 18 बैंकिंग शाखाओं व उनसे सम्बद्ध ग्रामीण सहकारी साख समितियों के कार्य कलापों को

समाहित करने तक सीमित कही जा सकती है। इसमें सघन शोध रचना में उरई के केन्द्रीय बैंक के अतिरिक्त छत्रसाल ग्रामीण बैंक को भी लिया गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि जनपद की भूमि संरचना व जलवायु, कृषि कार्य हेतु सर्व उपयुक्त न होने के कारण, लघु आकार के स्वामित्व वाले अधिकांश कृषकों व उन पर निर्भर असंख्य निरक्षर भूमिहीन, जीवन रेखा से नीचे जीवन निर्वाह करने वाले दरिद्रनारायण, जो येनकेन प्रकारेण ग्रामीण सहकारी समितियों के नाम मात्र के बनाये गये या बन गये सदस्य हैं, उनके द्वारा प्रश्नोत्तरियों का सही ढ़ंग से प्रयोजन न समझ, उसके भरने के प्रति उदासीनता व उपेक्षापूर्ण मनः स्थिति के कारण भी शोध संरचना की सत्यता को पूर्णरूपेण ढ़ंग से सिद्ध करने में सहायक नहीं रही है। इसी प्रकार ग्रामीण शाखाओं से सहर्ष सहयोग न सम्भव होकर भरी हुई प्रश्नोत्तरी भी वस्तुतः स्थिति का सही लेखा जोखा प्रस्तुत करने में उतनी सहयक सिद्ध नहीं हो सकी जितनी आशा की जाती थी। परिणामतः मेरा अनवरत व अथक प्रयास फिर भी निश्चय ही मेरे इस अभिमत की पुष्टि करता है कि शोध संरचना की समस्त सीमाओं को लांघकर शोध संरचना की उपादेयता किसी प्रकार से प्रभावित हुये बिना अति लाभप्रद सिद्ध होगी।

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

कृषि साख की आवश्यकता एवं महत्व

यह आज भी स्थापित सत्य है कि भारत में कृषि–प्रधान, ग्राम–प्रधान और ग्रामवासी–प्रधान व्यवस्था है, जिसकी 70% जनसंख्या कृषि व्यवसाय से किसी न किसी प्रकार से जुड़ी है और इस जनसंख्या का अधिकांश भाग लघु–स्तरीय कृषक, भूमिहीन कृषक और बंधुआ मजदूर हैं। इन सबके लिये कृषि कोई लाभप्रद व्यवसाय न होकर जीवनयापन का साधन युग–युगान्तर से रहा है। आज भी भूमि और कृषि से जुड़ी यह जनसंख्या देश के लगभग 6 लाख गाँवों में बिखरी पड़ी है, जो समय और परिस्थितियों के विकाराल थपेड़ो की चोट खाती, और अपने भाग्य को कोसती, अन्धविश्वासी, भाग्यवादी और किसी हद तक निरक्षर व परम्परावादी विचारों और विधियों का अनुपालन करना अपना परम लक्ष्य और कर्तव्य मानती है। पौरुषहीनता, विवेकहीनता और पराश्रितता में पल रही कम से कम 36% जनसंख्या ऐसी है जो आज भी निर्धनता रेखा के नीचे रह रही है।

तालिका संख्या -1

निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या

वर्ष	ग्रामीण		शहरी		कुल	
	व्यक्ति	प्रतिशत	व्यक्ति	प्रतिशत	व्यक्ति	प्रतिशत
1973–74	28.1	56.4%	6.0	49.0%	32.1	54.9%
1977–78	28.4	53.1%	6.5	45.2%	32.9	51.3%
1987–88	23.2	39.1%	7.5	38.2%	30.7	38.9%
1993–94	24.4	37.3%	7.6	32.4%	32.0	36.0%

स्त्रोत –: योजना आयोग, भारत सरकार

उपरोक्त समंक इस ओर संकेत करते हैं कि यद्यपि सन् 1973–74 की तुलना में निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या में 1993–94 में कमी

आई है परन्तु 1987–88 की तुलना में पुनः निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या में वृद्धि होने के संकेत है। Expert Group के 1993 के सर्वेक्षण के आधार पर वे राज्य जिनमें निर्धनता का अनुपात अखिल भारतीय स्तर से ऊँचा है, उनमें उड़ीसा 55.6%, बिहार 53.4%, तमिलनाडू 45.1%, पश्चित बंगाल 44%, मध्यप्रदेश 43.4% और उत्तर प्रदेश 42% हैं। इसके विपरीत वे राज्य जिनमें निर्धनता में भारी कमी आई है, उनमें गुजरात, केरल, आन्ध्रप्रदेश, हरियाणा और पंजाब हैं। उत्तर प्रदेश में बढ़ोत्तरी के मूल कारण जनसंख्या में भारी वृद्धि, रोजगार के अवसर लगभग नगण्य तथा सीमान्त और लघु कृषकों का भूमिहीन कृषकों व मजदूरों में परिणित होना है।

एक और भयावह स्थिति का संकेत ग्राम सर्वेक्षण में मिला, और वह यह कि अनेक लघु स्तीरय कृषक, जब कभी प्राकृतिक आपदा की चपेट में आ गये हैं और उनकी फसल कभी उपलवृष्टि के कारण, कभी अतिवृष्टि के कारण, कभी सूखे या समय पर पानी न बरसने के कारण, या अन्य कृषि विपरीत परिस्थियों के कारण, आशानुरुप अनाज या फल नहीं दे पाई तो उन्हें लेने के देने पड़ गये हैं, क्योंकि आज भी अनेक महत्वपूर्ण कृषि–समुन्नत सिंचाई, खाद, ट्रेक्टर आदि से कृषि कार्य या शीध्र होना सम्भव तो हुआ है परन्तु एक सीमान्त या लघु कृषक के लिये तो कृषि आज भी "मानसून का जुआ ही है।" अतः वह इन सुविधाओं का पूर्णरुपेण लाभ नहीं उठा पाता। अन्ततः उसकी भूमि का वह भाग जिस पर उसका व उसके सम्पूर्ण परिवार का भविष्य निर्भर है, गाँव के महाजन, बनियाँ या फिर वे व्यक्ति या जमीदार जिनका गाँव में बोलबाला व प्रभुत्व है, के चंगुल में फंस जाता है ओर धीरे–धीरे वह सीमान्त से भूमिहीन कृषक बन जाता है। सम्पन्न अधिक सम्पन्न और विपन्न अधिक विपन्न बन जाता है। इसका मूलकारण यही है कि उसके पास भूमि के अतिरिक्त, उधार लेने के लिये कोई अन्य सुरक्षित कोष या

सम्पदा नहीं होती और फिर भारतीय कृषकों पर इस कथन की सार्थकता आज भी सत्य प्रमाणित हो जाती है कि 'भारतीय कृषक ऋण में पैदा होता है, ऋण में ही जीवित रहता है, ऋण में ही मरता है, व अपने ऋण को आने वाली पीढ़ी के लिये छोड़ जाता है।' इस प्रकार ऋण लेने, ऋण को न चुका पाने का अन्तहीन चक्र प्ररम्भ हो जाता है।

बैसे भी कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें प्रारम्भ में ही पर्याप्त पूंजी लगाना पड़ती है और एक बार इस कृषि–प्रक्रिया को जब प्रारम्भ कर दिया जाता है, तो फिर सरलता से प्राकृतिक प्रकोपों से बचा नहीं जा सकता क्योंकि कृषि खुले आसमान के नीचे विस्तृत आकार प्रकार के खेतों में की जाती है, इसमें निर्माणी उद्योग की तरह आकस्मिक उत्पन्न होती आपदाओं को रोकने की सरल व शीध्रतम विधि सम्भव नही होती। कृषि में जब कार्य आरम्भ हो जाता है तो इसे उद्योगों की भाँति न रोका जा सकता है न उत्पादन घटाया जा सकता है और न दूसरी और निर्देशित किया जा सकता है। अस्तु विषम परिस्थितियों में जूझने और उससे उत्पन्न अनेकानेक जोखिमों को हल करने का एक मात्र उपाय यही है कि उसकी कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं व आपदाओं की पूर्ति के लिये सस्ती, सामयिक व समुचित साख सुलभ हो, जिसके त्वरित व सामयिक प्रयोग द्वारा कृषक अपनी हानि की पूर्ति कर सके और लाभार्जन कर अपना व अपने परिवार की सुख सम्पन्नता व सुखद आशामय भविष्य की कल्पना को साकार कर, सुख की सांस ले सके।

परन्तु वस्तुस्थिति यह रही है कि प्रायः कृषकों को साख सुविधाओं से पृथक और दूर रखा गया है। पूंजीबाजार एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं ने वित्त प्रदान करने में कृषि और कृषक दोनों की ही उपेक्षा की है तथा लघु एवं सीमान्त कृषकों की परिसम्पत्तियों को उपयुक्त प्रभार नही स्वीकार किया है। यद्यपि कृषक वर्ग अपनी वित्तीय स्थिति तथा ईमानदारी के कारण साख बाजार

साख संस्थाओं के सहयोग का पूर्ण व उपयुक्त अधिकारी है फिर भी उसे आवश्यक साख उपलब्ध नहीं हो पाती। सम्भवतः इसका प्रमुख कारण यह कहा जा सकता है कि एक उत्पादक या व्यापारी की अपेक्षा एक कृषक का कार्य अधिक जटिल व जोखिमपूर्ण है, कृषि-कार्यों का कालचक्र अधिक लम्बा है और मौसम की असामान्य अनिश्चितता के कारण जोखिम की सम्भावनायें अधिक रहती हैं। एक सामान्य व सीमान्त कृषक प्रायः उस समय और भी अधिक निःसहाय व असमर्थ हो जाता है जबकि उसकी समस्त पूंजी भूमि को जोतने-बोने में, खाद में व सिंचाई में फंसी होती है। इसीलिये किसी आकस्मिक, प्राकृतिक या पारवारिक आपदा से उसे उबरने के लिये साख का सहारा लेना पड़ता है। सर एफ. ए. निकल्सन के विचार में -: "यूरोप, अमेरिका तथा भारत की ग्राम -अर्थव्यवस्था के इतिहास से एक ही प्रकार की शिक्षा मिलती है कि कृषक को ऋण लेना चाहिये और उन्हें ऋण लेना होगा। अल्पकालिक ऋण की व्यवस्था करना इसलिये भी नितान्त आवश्यक है, क्योंकि कृषक की सभी पूंजी कृषि व स्टाक में फॅसी रहती है। अतः न तो साख सर्वथा अनुपयुक्त है और न ही कृषकों की दुर्बलता का चिन्ह।" (1960)

एक संयुक्त-राष्ट्र प्रकाशन में कृषि साख की आवश्यकता पर निम्न विचार व्यक्ति गया है -: "विश्व के किसानों को एक न एक ऋण लेना पड़ता है, और प्रायः बहुत अधिक ऋण लिया जाता है.........................जब भूमि में अधिकारों का पुनर्वितरण होने लगता है तब लगभग सदा ही अधिक ऋण की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार यह कृषि-हित में है और कृषि और सामान्य प्रगति के लिये भी आवश्यक है कि कृषकों को साख पर्याप्त मात्रा में एवं उचित लागतों पर उपलब्ध हो।"

प्रोफेसर जान डी. ब्लैक के अनुसार "यदि हमें थोड़े समय में कृषि उत्पादन को बढ़ाना है, तो हमें साख की व्यवस्था करनी पड़ेगी।" साख

सुविधायें सुलभ होने पर किसान उन्नत श्रम–बचत–यंत्र और अधिक बीज तथा उर्वरक खरीदने में समर्थ होने के साथ आकस्मिक पानी देने की व्यवस्था आदि को सरलता पूर्वक निपटा सकेगें। इसके अतिरिक्त उन्हें अनायास आने वाली पारवारिक, सामाजिक तथा वित्तीय कठिनाइयों को दूर करने में सहायता सम्भव हो जाती है जिससे कृषि विकास कार्यक्रमों का सुचारु रुप से संचालन हो पाता है। इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि भारतीय कृषक बिना पर्याप्त बाह्य सहायता के अपने कृषि व्यवसाय को नहीं चला सकता, और इसकी साक्षी किसानों की भयंकर ऋण–ग्रस्तता है जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होता है –:

तालिका संख्या -२

विभिन्न स्रोतो से कृषकों द्वारा लिया गया ऋण

	प्रतिशत विवरण			
	1951–52	1971	1981	1991
अ. संस्थागत स्रोत				
1. साहूकार	69.7	36.1	16.1	17.6
2. व्यापारी	5.5	8.4	3.2	5.5
3. रिश्तेदार एवं मित्र	14.2	13.1	8.7	5.6
4. भूस्वामी तथा अन्य	3.3	10.7	8.8	4.0
योग (1–4) (अ)	**92.7**	**68.3**	**36.8**	**32.7**
ब. संस्थागत स्रोत				
1. सरकार	3.1	7.1	3.9	6.1
2. सहकारी समितियाँ	3.3	22.0	29.9	21.6
3. वाणिज्य बैंक	0.9	2.6	29.4	33.7
4. अन्य	–	–	–	2.6
योग (1–4) (ब)	**7.3**	**31.7**	**63.2**	**64.0**
कुलयोग अ+ब	100.0	100.0	100.0	100.0

स्रोत –: करेंन्सी एण्ड फाइनेन्स 1988–89 तालिका सं.– 2 सातवी पंचवर्षीय योजना

उपरोक्त तालिका को देखने से यह स्पष्ट होता है कि लगभग 40 वर्षो के अन्तराल में असंस्थागत स्रोतो के द्वारा प्रदत्त ऋण 92.7% से घटकर

32.7% पर आ गया, जबकि संस्थागत स्त्रोतों से दिया गया ऋण का प्रतिशत 7.3% (1951–52) से बढ़कर 64% (1991) में आ गया, अर्थात् असंस्थागत ऋणों में 60% की कमी आई व दूसरी और संस्थागत ऋणों में 56–57% तक की वृद्धि हुई। इसमें सहकारी साख संस्थाओं का योगदान 3.3% से बढ़कर 21.6% यानी 18.3% की वृद्धि हुई । इस 18.3% वृद्धि का एक अप्रत्यक्ष कारण केन्द्रीय सहकारी बैकों या जिला सहकारी बैकों के बढ़ते योगदान व सक्रियता को भी जाता है। साथ–साथ असंस्थागत ऋणों में जो कमी परिलक्षित हुई है वह योजनान्तर्गत सहकारी संस्थाओं की बढ़ती भूमिका पर जोर तथा ग्रामीण जनता में महाजन की कुटिल नीतियों के विपरीत बढ़ती जागरुकता रहा है।

संस्थागत कृषि साख की आवश्यकता -:

उपरोक्त तालिका से संस्थागत कृषि साख की आवश्यकता पर पर्याप्त प्रकाश प्रतिबिम्बित तो होता है, साथ ही ग्रामीण साख तथा कृषि उत्पादन की विशेषताओं को ध्यान में रखकर कृषि के लिये संस्थागत साख की व्यवस्था और इसे एक सुदृढ़ आधार प्रदान करने हेतु केन्द्रीय या जिला सहकारी बैकों पर विलम्ब से ही सही, इस 21 वीं शती में उत्तरोत्तर सहकारिता के अग्राँकित क्रमिक विकास से भी स्पष्ट होता है।

भारतीय स्वतन्त्रोत्तर काल में योजनात्मक अर्थव्यवस्था के प्रादुर्भाव के फलस्वरुप ग्रामीण क्षेत्र व कृषि क्षेत्र के त्वरित गति से विकासार्थ तथा भूमिहीन व लघुस्तरीय कृषकों व निर्धनता रेखा से नीचे रह रहे, नारकीय जीवन जी रहे करोड़ों ग्रामवासियों के जीवन में नवस्फूर्ति व नवआशा संचार हेतु समय –समय पर आकर्षक शाब्दिक अलंकारों के आडम्बर से अलंकृत योजनायें यथा 'क्षेत्रीय पद्यति (ऐरिचा एप्रोच) सेवा क्षेत्रीय पद्यति (सर्विस ऐरिया एप्रोच) विकासोन्मुख योजनायें, समूह क्षेत्रीय पद्यति (कस्टर ऐरिया ऐप्रोच), क्षमताबद्ध

साख सम्बद्ध योजना (पोटेन्सल लिंक्ड क्रेडिटप्लान) और न जाने कितनी ऐसी ही स्थानीय व प्रादेशिक योजनायें कार्यान्वित की गयीं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण साख के व्यापक विस्तार व गाँव-गाँव में साख की नींव को स्थापित करने हेतु सन् 1904 से ही सहकारी साख समितियाँ कार्यरत थीं परन्तु 1950-52 में अखिल भारतीय कृषि साख सर्वेक्षण समित के अनुसार 'भारत में सहकारिता असफल हो गई है' जैसे उद्‌गार व्यक्त करने पर 'सहकारिता को सफल बनाना है' के लिये नये सिरे से सोचने पर विवश किया।

उसके पश्चात् ही 1969 में व्यापारिक बैंकिग को ग्रामीण साख पूर्ति का महत्वपूर्ण अंग बनाने हेतु 'अग्रणी बैंक योजना' (लीड़ बैंक स्कीम) तत्पश्चात् क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (रीजनल रुरल बैंक) जैसी योजनायें लाई गयीं तथा सहकारिता से इन योजनाओं को सम्बद्ध किया गया, और सहकारिता के प्रादेशिक त्रैस्तरीय ढ़ाँचे को भी नवीन स्परुप नेबार्ड जैसी शीर्ष संस्था को रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की संस्तुति पर स्थापित कर इसे कृषि साख की हर प्रादेशिक समस्या के समाधान का अन्तिम रुप से निर्णय लेनें का अधिकारी बना दिया गया।

भारतीय ग्रामीण साख-परिदृश्य में जब से व्यापारिक बैंकिंग का प्रवेश हुआ है तब से यह क्षेत्र अनेकों महत्वपूर्ण व प्रभावी परिवर्तनों से मुखरित हुआ है। वर्तमान प्रादेशिक चवर्गीय ढ़ांचे में केन्द्रीय सहकारी या जिला सहकारी बैकों द्वारा एक महत्वपूर्ण मध्यस्थ की सराहनीय भूमिका का निर्वहन किया जा रहा है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों की सुप्त घनराशि का एकत्रीकरण करके उसे स्थायी निक्षेप का रुप प्रदान करके इसे पुनः उन लोगों तक अधिक उपयोगी बनाकर पहुँचाने का कार्य इन बैकों द्वारा सम्पन्न किया जा रहा है, जो भूमिहीन है, लघुकृषक हैं व निर्धनता रेखा के नीचे नारकीय जीवन जीने के लिये विवश हैं अथवा मौसमी बेरोजगारी की मार झेलते हुये बंधुआ मजदूर हैं। इस प्रकार

सस्ती, समुचित व सामयिक साख के माध्यम से सामाजार्थिक उत्थान के साथ–साथ ग्रामीण व सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में शाखायें खोलना, उनके प्रबन्ध व कार्यप्रणाली पर पैनी नजर रखना तथा समय–समय पर उनकी सहायता करना, नवीनतम कृषि तकनीकि अपनाने हेतु प्रोत्साहित करना और इस प्रकार बहुआयामी अर्थकेन्द्र बनकर अवरुद्ध व मन्थरगति से विकसित हो रहे गांवों व कस्बों को त्वरित विकासार्थ उन्नत कृषि तकनीकि का सहारा देकर कृषि को मात्र जीवकोपार्जन के स्थान पर एक व्यवहारिक व्यवसायिक स्वरुप प्रदान करने में हर प्रकार से वरदान ही नहीं वरन ये बैंक कल्पतरु का स्वरूप धारण कर रहे हैं।

अब यदि हम असंस्थागत परिदृश्य को हटाकर भी देखें तो यही पाते हैं कि यद्यपि वर्षानुवर्ष कृषि–ऋण की मात्रा ज्यों–ज्यों बढ़ती गई है सहकारी समितियों व केन्द्रीय सहकारी बैकों का योगदान भी तीव्रगति से बढ़ा है, जैसा निम्न तालिका से स्पष्ट होता है।

तालिका संख्या -३

विभिन्न संस्थागत स्रोतों से अनुदानित कृषि ऋण (करोड़ रूपये में)

वर्ष	सहकारी समितियां	वाणिज्य बैंक	कुल
1984–85	3,440	2,790	6,230
1990–91	3,970	5,010	8,980
1999–00	18,430	26,180	44,610
2000–01	22,710	28,750	51,460

स्रोत –: भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (2000–01)

यह निर्विवाद है कि सहकारी साख समितियों के कृषि क्षेत्र में योगदान में जो भी बढ़ोतरी हुई है उसका श्रेय मूलरुप से केन्द्रीय सहकारी बैकों व शीर्ष संस्थाओं द्वारा सहकारी साख समितियों को दिये जाने वाले ऋण से बहुत हद तक प्रभावित रहा है। अस्तु मेरे मतानुसार सन् 1984–85 के कृषि–ऋण में जो 3, 440 करोड़ रुपयें से 22,710 करोड़ रुपये अर्थात् लगभग

19000 करोड़ की वृद्धि प्रदर्शित हुई है उसमें अधिकांश कृषिऋण की पूर्ति केन्द्रीय बैकों द्वारा या इनके माध्यम से ही की गई है। इस तथ्य की पुष्टि निम्नांकित तालिका से पूर्णतया हो जाती है कि आज भी केन्द्रीय बैकों की सहायता की प्रदेश व जनपद विशेष को कितनी अधिक आवश्यकता है।

तालिका संख्या -४

केन्द्रीय सहकारी बैकों से प्रदत्त कृषि ऋण

	1950–51	1960–61	1970–01	1995–96
संख्या	505	390	341	336
दिये गये ऋण (करोड़ रु0)	83	350	894	34,498

स्रोत –: तालिका नं0 2 रिजर्व बैंक आफ इण्डिया

केन्द्रीय सहकारी बैकों का कृषि-वित्त व्यवस्था में महत्व -:

आज भारतीय सहकारिता आन्दोलन 3.5 लाख सहकारियों, इनके 17.5 करोड़ सदस्यों (इसके 50% से भी अधिक केवल सहकारी साख समितियों के सदस्य हैं) और 76000 करोड़ रुपयों की पूंजी के साथ संसार के सबसे बड़े जन आन्दोलन का विशालरुप धारण कर चुका है फिर भी लगभग100 वर्ष पश्चात् अखिल भारतीय ग्रामीण साख–सर्वेक्षण समिति का यह कथन आज भी सटीक बैठता है कि 'भारत में सहकारिता असफल हो गई है, इसे सफल बनाना होगा'। इसके साथ–साथ एक और तथ्य उचित ही जान पड़ता है कि सहकारी आन्दोलन का आज पूर्णरूपेण सरकारीकरण कर दिया गया है।

अब यदि इन दो तथ्यों को ध्यान में रखकर विश्लेषण करें तो सत्यता इसी से स्पष्ट हो जाती है कि यह आन्दोलन अभी तक न ग्रामीण जनता की दरिद्रता ही मिटा सका है, न अधिकांश लघु और सीमान्त कृषकों के कृषि उत्पादन में वृद्धि करा सका, न उन्नत विपणन दशायें प्रस्तुत कर सका और यहाँ तक कि गाँव में महाजन का कार्य कर रही असंस्थागत इकाइयों को

भी समाप्त नही कर सका है। दूसरी आरे जो भी सफलता का सेहरा ग्राम साख सहकारी समितियों के सिर बंधा है वह उसी प्रदेश या क्षेत्र में सम्भव हो पाया है, जहाँ एक सजग प्रहरी व एक सक्रिय सहायक व मित्र ग्रामीण जनता की हितेषी बन सस्ती, सामयिक व समुचित साख की व्यवस्था को केन्द्रीय सहकारी बैंक एवं नाबार्ड जैसी शीर्ष संस्थायें द्वारा सम्भव बना दिया गया है। जहाँ पर इन शीर्ष संस्थाओ में राजनीतिक भ्रष्टाचार का प्रकोप प्रभावी हो गया है वहां यह सहकारी शीर्ष संस्थायें केवल कागजी घोड़े दौड़ाने वाली संस्थायें बन गई हैं और कृषि विकास के स्थान पर कृषि विनाश ही देखने को मिला है। दुर्भाग्यवश उत्तर प्रदेश की अधिकांश केन्द्रीय बैंकिग संस्थायें ऐसे ही सहकारी दलदल में फंसी नजर आ रही हैं। लखनऊ का सिटी बैंक व गोण्डा का जिला सहकारी बैंक तथा वे 31 अन्य केन्द्रीय सहकारी बैंक जिन पर रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की संदेह की गाज गिरने को है, इस प्रदेश की दुर्दशा के प्रतीक बन गये हैं, और यही कारण है कृषि के वित्तीय संकट के कारण उत्पादन क्षमता में वृद्धि, प्रयुक्त साधनों की कार्यक्षमता में वृद्धि और इन्हीं पर आधारित राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सामाजिक व राजनीतिक स्थायित्व, जो सुदृढ़ कृषि वित्त व्यवस्था के महत्वपूर्ण उद्देश्य को सफल बनाते हैं, पूर्णरुपेण सम्भव नहीं हो सके हैं।

इतना ही नहीं कृषि साख व्यवस्था को केवल कृषि हितार्थ अर्थलाभ के लिये ही सुदृढ़ होना महत्वपूर्ण नहीं है वरन् इसमें निहित है एक महान सामाजिक कार्य एवं सेवा की भावना। अनुभव स्पष्ट करता है कि कृषक उत्पादन मात्र अपने लिये ही नहीं करता वरन् वे सब भी उस अन्न से लाभान्वित होते हैं जो अनाज का उत्पादन नहीं करते। अस्तु कृषि अर्थ व्यवस्था का सुदृढ़ होना सभी के लिये अति महत्वपूर्ण है। अस्तु एक सुदृढ़ कृषि–वित्त व्यवस्था का महत्व एवं भूमिका –

1. राष्ट्रीय आय में वृद्धि तथा जीवन स्तर में सुधार,
2. रोजगार–अवसरों में वृद्धि,
3. आर्थिक विकासार्थ एवं आर्थिक अधिशेष के सृजन में वृद्धि,
4. निर्यात वृद्धि व बाजार विस्तार,
5. अनाज व कच्चे माल की प्राप्ति/उपलब्धि

और अन्ततः एक राजनीतिक व सामाजिक प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र के विकास में प्रभावी भूमिक निभाने वाले अभिकर्ता व प्रणेता के रूप में देखी व समझी जानी चाहिये।

द्वितीय अध्याय

जनपद जालौन का परिचयात्मक एवं सामाजार्थिक विकास व विस्तार (–शोध क्षेत्र)

जनपद जालौन एक विकासोन्मुख परन्तु पिछड़ा एवं धार्मिक तथा ऐतिहासिक महत्व का क्षेत्र है। धार्मिक दृष्टिकोण से यह ऋषि उद्दालक की तपोभूमि रहा है तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रदूत नाना साहब की कर्मस्थली व आल्हा ऊदल की राजनीतिक गतिविधियों व उनके उत्थान पतन का केन्द्र रहा है। जनपद जालौन बुन्देलखण्ड के झांसी प्रभाग का एक भाग है यद्यपि आज भी ऐतिहासिक परम्परा को निभाते हुये हम इस जनपद को जालौन के नाम से जानते और मानते हैं फिर भी जनपद के सभी महत्वपूर्ण मुख्यालय उरई नगर में ही स्थापित हैं। उरई नगर कानपुर व झांसी नगरों के मध्य सेन्ट्रल रेलवे (वर्तमान में उत्तर–मध्य रेलवे) से जुड़ा है जबकि जालौन ग्रामीण पृष्ठभूमि पर बसी एक ऐसी नगरी है जहां आज भी प्रस्तावित रेल का विस्तार होने को है। उरई का महत्व इसलिये भी अधिक है क्योंकि जहां एक ओर यहां से राष्ट्रीय राजमार्ग गुज़रता है, दूसरी ओर दक्षिण व पश्चिम की ओर जाने वाले मार्गों से यह राजस्थान मध्य–प्रदेश व महाराष्ट्र से जुड़ा है। जनपद और विशेषकर उरई नगर के औद्योगिक विकासार्थ एक 10.70 एकड़ का औद्योगिक क्षेत्र राष्ट्रीय राजमार्ग पर आवंटित किया गया है जहाँ बिजली, पानी व मार्ग सुविधा जैसी अवस्थापना सुविधायें प्रदत्त कराई गई है जिससे जनपद का औद्योगिक बाँझपन समाप्त किया जा सके, रोजगार के अवसर बढ़ें तथा नये उद्योगों को स्थापित करने के लिये नव–साहसियों को प्रोत्साहन मिल सके।

जनपद जालौन एक त्रिभुजाकार वाला क्षेत्र है जो $26^0–27^0$ व

उत्तर प्रदेश
का मानचित्र
उत्तर
सहारनपुर
मुज़फ्फरनगर
बिजनौर
मेरठ
गाजियाबाद
मुरादाबाद
रामपुर
गौतमबुद्ध नगर
बरेली
पीलीभीत
बदायूं
अलीगढ़
शाहजहाँपुर
खीरी
मथुरा
हाथरस
एटा
फर्रुखाबाद
हरदोई
सीतापुर
बलरामपुर
मैनपुरी
आगरा
कन्नौज
गोण्डा
सिद्धार्थ नगर
इटावा
लखनऊ
बाराबंकी
बस्ती
गोरखपुर
फैजाबाद
औरैया
कानपुर देहात
उन्नाव
सुल्तानपुर
जालौन
रायबरेली
आजमगढ़
मऊ
फतेहपुर
प्रताप गढ़
जौनपुर
हमीरपुर
झांसी
गाजीपुर
महोबा
बांदा
कौशाम्बी
इलाहाबाद
चित्रकूट
मिर्जापुर
चन्दौली
ललितपुर
झारखण्ड
प्र दे श
छततीस गढ़
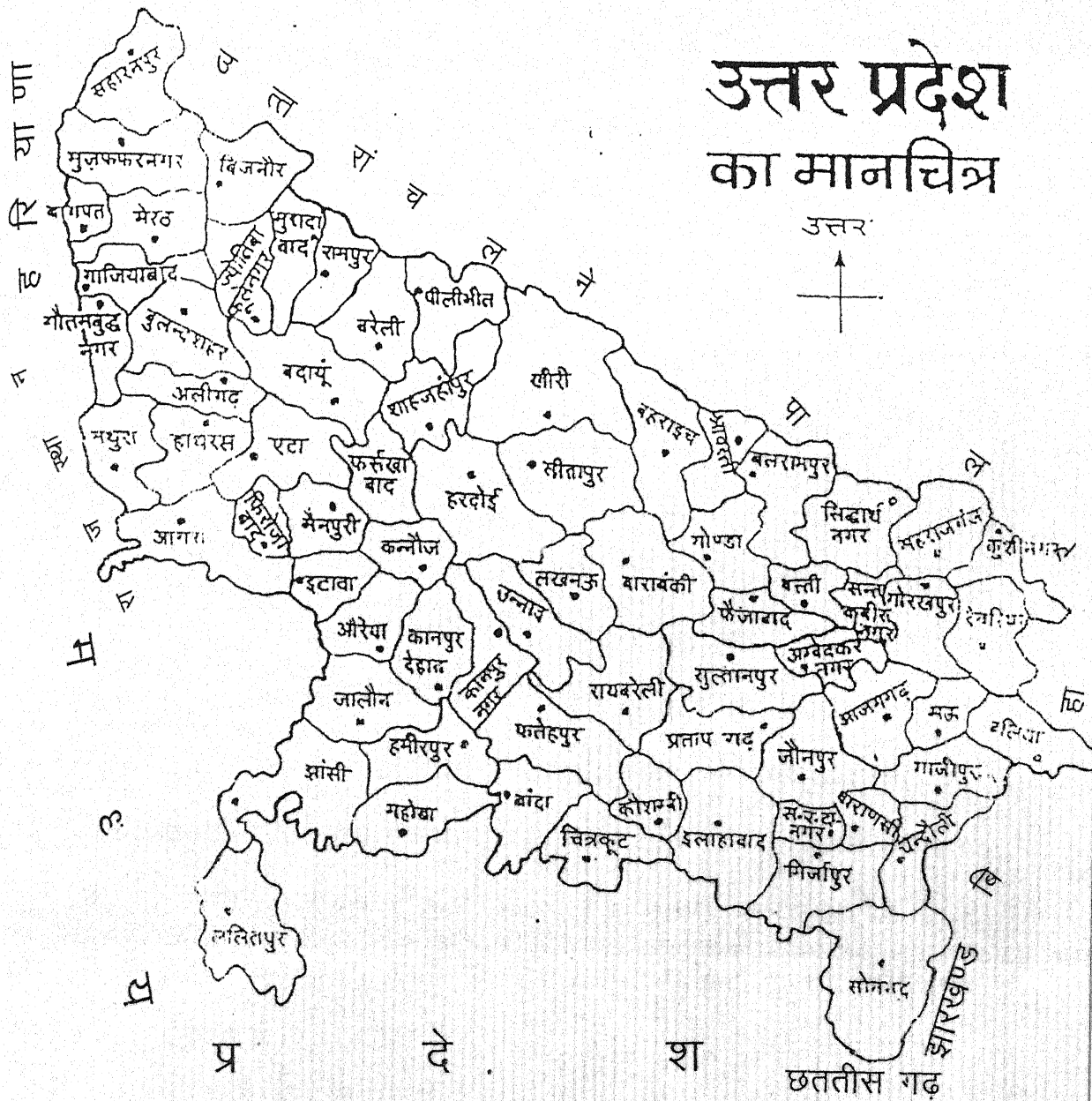
25^0-46^0 उत्तरी अक्षांश 78^0-55^0 व 79^0-55^0 पूर्वी देशान्तर के क्षेत्रफल में फैला है। यह उत्तर–पूर्व में इटावा व कानपुर से तथा झांसी और हमीरपुर जनपदों से व दक्षिण–पश्चिम में मध्य प्रदेश के भिण्ड व दतिया जनपदों से घिरा हुआ है। जनपद उत्तर पूर्व में यमुना नदी, दक्षिण पश्चिम में बेतवा व पश्चिम में पहुज नदियों से जल आपूर्ति में धनी है।

जनपदीय जलवायु अतिशुष्क है तथा शीघ्र परिवर्तनशील भी है। ग्रीष्म–माह में यहां अत्याधिक गर्मी से झुलस से जाते हैं। अधिक और न्यूनतम तापमान 47.8^0 सेल्सियस से 49.2^0 सेल्सियस तक और जाड़े के दिनों में 3.1^0 से 0^0 सेल्सियस तक शीत लहरों के प्रकोप के कारण गिर जाता है। वर्षा बहुत निश्चित नहीं कही जा सकती, सामान्य जलवृद्धि 864 मि0मी0 के आस–पास ही रहती है। मिट्टी अधिकाशतः उपजाऊ है, परन्तु कहीं–कहीं पर काली भुरभुरी व कहीं–कहीं पर पथरीली भी पाई जाती है।

भूतल का क्षेत्रफल4569 वर्ग किलोमीटर है। जनपद की लम्बाई पूर्व से पश्चिम 80 कि0मी0 है, जबकि उत्तर दक्षिण 105 कि0मी0 है। 1991 की जनगणना के अनुसार जनपद की जनसंख्या 12,19,377 थी। इसमें 5,21,282 पुरूष व 4,28,898 स्त्रियां थीं। पिछले दशक की तुलना में जनसंख्या वृद्धि 20. 30 प्रतिशत आंकी गयी। इस जनसंख्या का 79.9 प्रतिशत भाग गांव में रहता है शेष 21.1 प्रतिशत शहरी क्षेत्र में रहता है। सम्पूर्ण जनसंख्या में 27.3 प्रतिशत जनसंख्या अनुसूचित जाति की है। जनपद में 942 आबाद और 209 गैर आबाद गाँव हैं।

सम्पूर्ण जनपद 9 विकास खण्डों में विभाजित हैं, ये विकास खण्ड हैं, रामपुरा, कुठौन्द, माधौगढ़, जालौन, नदीगांव, कोंच, डकोर, महेवा, और कदौरा। जनपद में पांच तहसीले हैं, उरई, कोंच, जालौन, कालपी, माधौगढ़। साक्षर पुरूषों की संख्या 357.61 हजार व स्त्रियों की 138.89 हजार है। जनपद

जनपद
जालौन
उत्तर
जनपद
हमीरपुर
जनपद
जालौन
उरई
कोंच
कालपी
कदौरा
नदीगांव
माधौगढ़
रामपुरा
डकोर
जनपद
जनपद

में शिक्षालयों की जनसंख्या निम्न प्रकार से हैं :–

1.	जूनियर बेसिक स्कूल	1522
2.	सीनियर बेसिक स्कूल	414
3.	उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	92
4.	डिग्री कालेज	06
5.	पॉलीटेक्निक	01
6.	औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र	01

जनसंख्या एवं साक्षरता :-(१९९१ की जनगणना के आधार पर)

जनपद की पांच तहसीलों व नौ विकास खण्डों के अन्तर्गत आने वाले 942 गांव में कुल जनसंख्या 12,19,377 है जिनमें–

1. 9,50.180 ग्रामीण 2,69,197 नगरीय हैं
2. 6,66,865 पुरुष 5,52,512 स्त्रियां हैं

जनपद की बोली जाने वाली मूल भाषा हिन्दी है। इसके अतिरिक्त उर्दू, पंजाबी, बंगाली तथा कुछ अन्य भाषायें भी बोली जाती हैं। लगभग 95.74 प्रतिशत जनसंख्या हिन्दी ही बोलती है।

शैक्षिक स्तर १९९१

		पुरुष	स्त्री
1.	निरक्षर	3,07,494	4,13,611
2.	साक्षर (बिना शैक्षिक स्तर)	61,108	25,545
3.	प्राइमरी	99,732	57,809
4.	मिडिल	8,403	29,750
5.	हाई / हायर सेकेन्ड्री स्कूल	89,410	20,117
6.	गैर तकनीकी डिप्लोमा/प्रमाण पत्र	1900	270
7.	तकनीकी डिप्लोमा का प्रमाण पत्र	590	140
8.	स्नातक या अधिक	22,608	5,270

स्रोत :– सांख्यिकीय पत्रिका–जिला जालौन–वर्ष 2000

तालिका संख्या - ५

वर्ष	साक्षर व्यक्ति			साक्षरता का प्रतिशत		
	पुरुष	स्त्री	कुल	पुरुष	स्त्री	कुल
1971	17,60,047	46,563	2,22,610	40.2	12.4	27.4
1981	2,69,346	85,160	3,54,506	50.2	19.0	35.9
1991	3,59,371	1,38,901	4,98,272	66.2	31.6	50.7

नोट :– 1991 की साक्षरता का प्रतिशत 7+ अधिक वर्ष की जनसंख्या से सम्बन्धित है

बैंक व उनकी शाखायें

अ. राष्ट्रीयकृत बैंक :–

1. इलाहाबाद बैंक (अग्रणी बैंक) (प्रधान कार्यालय–उरई) — 27 शाखायें
2. सेन्ट्रल बैंक — 7 शाखायें
3. स्टेट बैंक आफ इण्डिया — 8 शाखायें
4. बैंक आफ इण्डिया — 1 शाखा
5. पंजाब नेशनल बैंक — 1 शाखा
6. बैंक आफ इण्डिया — 1 शाखा

ब. सहकारी बैंक :–

1. जिला सहकारी बैंक — 19 शाखायें
2. उ0 प्र0 राज्य सहकारी कृषि एवं ग्राम्य विकास बैंक — 4 शाखायें

स. अन्य बैंक (ग्रामीण क्षेत्र) :–

1. छत्रसाल ग्रामीण बैंक — 35 शाखायें

द. अन्य सहकारी संस्थाएं :–

1. डिस्ट्रिक कोआपरेटिव डेबलपमेन्ट यूनियन — 1 शाखा
2. सेन्ट्रल कोआपरेटिव कन्ज्यूमर्स स्टोर्स — 1 शाखा
3. सेल्स एण्ड परचेज कोआपरेटिव समितियां (क्रय विक्रय सहकारी समितियां) — 8 शाखायें
4. कोआपरेटिव यूनियन/सप्लाई स्टोर्स — 26 शाखायें

5.	कृषि सहकारी साख समितियां	68 शाखायें
6.	कृषक परिवार संख्या	171680
7.	कृषक सदस्य	146590

स्रोत :– जनपद जालौन पत्रिका 1999 दिनांक 31.3.99

तहसीलवार विकासखण्डों का विवरण

तहसील	विकास खण्ड
1. उरई	डकोर
2. जालौन	जालौन, कुठौंद
3. कालपी	कदौरा, महेबा
4. कोंच	कोंच, नदीगांव
5. माधौगढ़	माधौगढ़, रामपुरा

क्षेत्रफलवार कृषि क्षेत्र का वर्गीकरण (१९९८)

1.	कुल भौगोलिक क्षेत्र	456213 हेक्टेअर
2.	शुद्ध जोता व बोया गया क्षेत्र	348389 हेक्टेअर
3.	वर्तमान परती क्षेत्र	25701 हेक्टेअर
4.	जंगल क्षेत्र	5498 हेक्टेअर
5.	कृषि के लिये अप्राप्य क्षेत्र	25158 हेक्टेअर
6.	शेष बिना जोता हुआ क्षेत्र	27048 हेक्टेअर
7.	अनुपयुक्त क्षेत्र (वेस्टलैण्ड)	24419 हेक्टेअर

कृषि जोतों का आकार व क्षेत्रफल

	क्षेत्रफल	संख्या
1.	1 हेक्टेअर के कम	96959
2.	1 हेक्टेअर के 2 हेक्टेअर के बीच	42394
3.	2 हेक्टेअर के 3 हेक्टेअर के बीच	20589

4.	3 हेक्टेअर के 5 हेक्टेअर के बीच	18802
5.	5 हेक्टेअर से अधिक	15529

उपरोक्त जोतों के आकार से यह स्पष्ट होता है कि 1 हेक्टेअर से कम से लेकर 2 हेक्टेअर की कृषि जोतों की संख्या अत्याधिक है जो प्रायः सीमान्त व लघुकृषकों के पास है और जिन पर आसानी से आधुनिक कृषि यन्त्रों का प्रयोग सम्भव नही हैं व नये यन्त्र इन लोगों की क्रय शक्ति से बाहर हैं। अतः या तो ये हल बैल का सहारा लेते हैं या फिर आधुनिक कृषि यन्त्र अर्थात् ट्रेक्टर आदि का प्रयोग किराये पर लेकर ही कर पाते हैं और वह भी जब वे बड़े सम्पन्न कृषकों के कृषि कार्य से खाली हों इसलिये इनकी कृषि मात्र जीवकोपार्जन का साधन ही बनी रह जाती है।

सिंचाई की सुविधाएं

नहरों की लम्बाई	–	1916 कि.मी.
राजकीय नलकूप	–	508 संख्या
व्यक्तिगत नलकूप तथा पम्पिंग सेट	–	12,374 संख्या

सिंचाई (हेक्टेअर) वर्ष 1996

कुल सिचिंत क्षेत्रफल 157861 — 47.4 प्रतिशत

सिंचाई विधियां

अ.	नहरें	157861	47.4 %
ब.	टयूब वेल	24197	60.3 %
स.	कुएँ	5329	3.4 %
द.	अन्य	1523	1.0 %

इस प्रकार लगभग समस्त क्षेत्रफल का 1/3 भाग नेहरों द्वारा सिंचित किया जाता है। वस्तुतः 50 प्रतिशत सिंचित क्षेत्रफल पर भरोसेमन्द सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं। परन्तु प्रायः यह शिकायत सुनने को मिलती है कि नहर के

जनपद जालौन के विभिन्न साधनों द्वारा श्रोतवार सिंचित क्षेत्रफल हेक्टेअर में
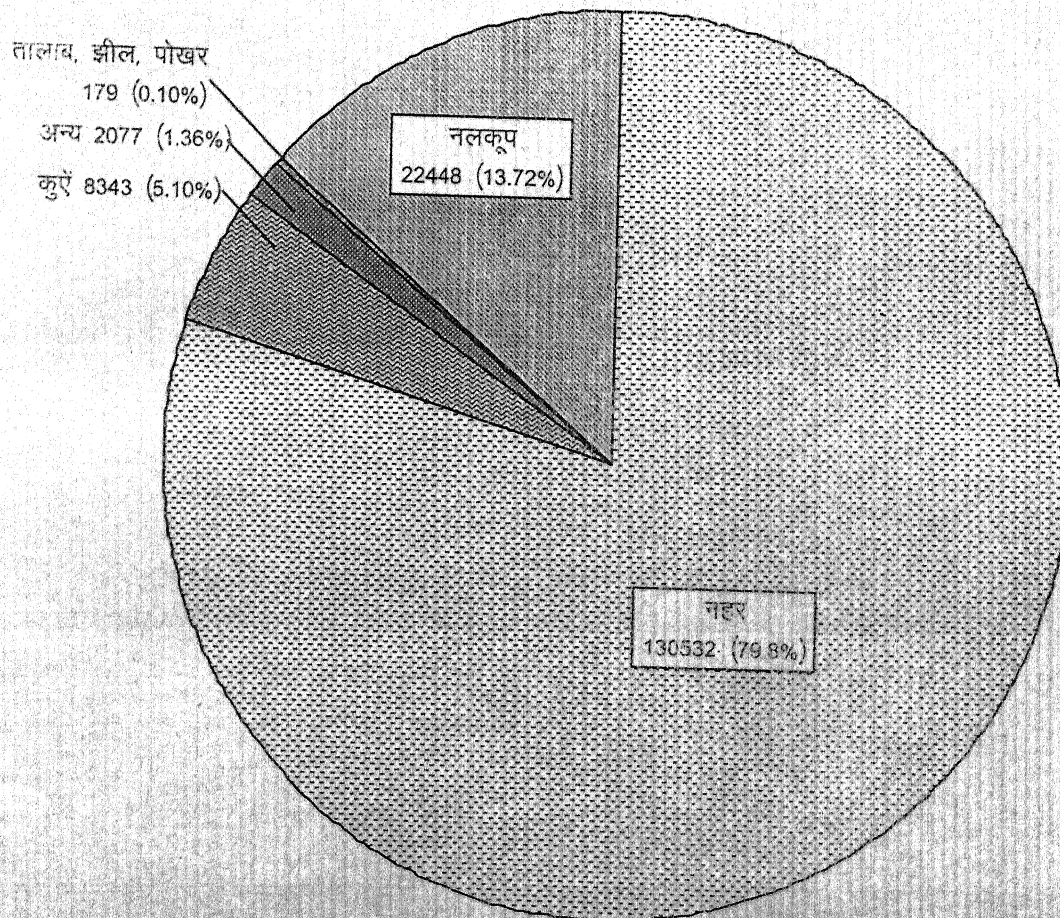
छोर वाले भागों को या तो पानी समय से नहीं मिलता यदि पानी मिलता है तो बहुत कम। ऐसा प्रायः अनुभव किया गया है कि बड़े-बड़े भूमि स्वामी व ग्रामीण क्षेत्र के दबंग व्यक्ति लघु व सीमान्त कृषकों को अपने दबाव व प्रभाव के चलते इस लाभ से वंचित कर देते हैं।

कृषि

शुद्ध बोया जाने वाल क्षेत्र	1998–99	384 ह हे.
शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल	1998–99	164 ह हे.
सकल संचित क्षेत्रफल	1998–99	167 ह हे

कृषि उत्पादन

खाद्यान्न	1998–99	497 ह.मी.टन
गन्ना	1998–99	79 ह.मी.टन
तिलहन	1998–99	11 ह.मी.टन
आलू	1998–99	8 ह.मी.टन

फसलों की बुआई की रुपरेखा (हेक्टेअर में)-

1. द्वि/बहुवार बोया जाने वाला क्षेत्र	36168
2. सम्पूर्ण बोया गया क्षेत्र	348389
3. मुख्य फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र :–	
अ. गेहूँ	55.4
ब. ज्वार	19815
स. चना	72876
द. मसूर	65858
ह. अरहर	9213
र. तिलहन	70235
ल. मटर	6864
व. अन्य	8975

जनपद जालौन की मुख्य फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल हेक्टेअर में
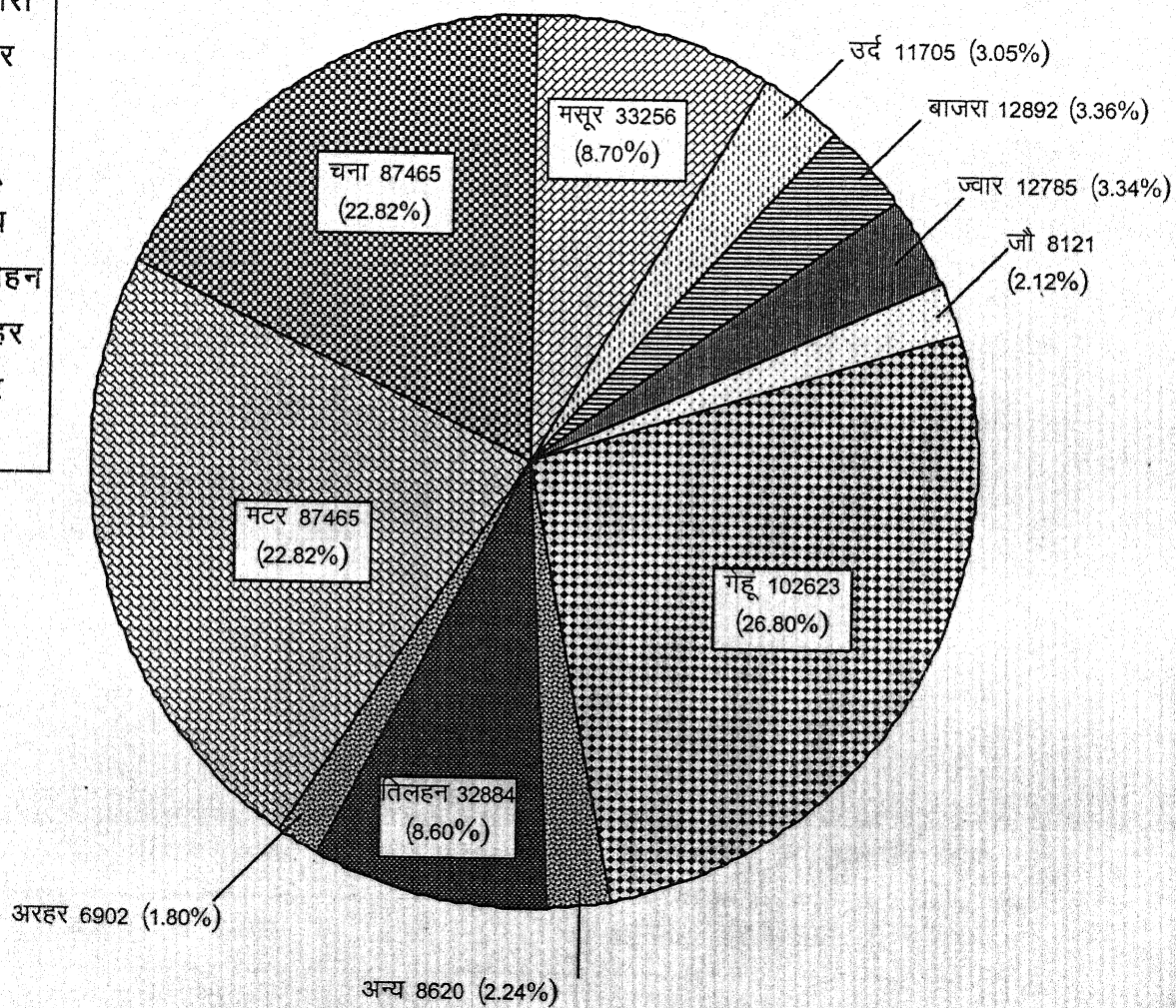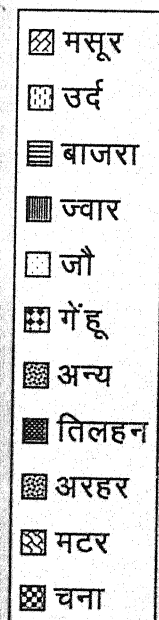
इस प्रकार जनपद की कृषि उपज में गेहूँ, चना, मसूर व तिलहन की प्रधानता है। उरई, माधौगढ़ महत्वपूर्ण अनाज की मण्डियाँ हैं। मसूर निर्यात की जाती है।

इस प्रकार रबी और खरीफ की दो फसलें ली जाती हैं। जायद की कोई महत्वपूर्ण फसल नहीं है।

मुख्य कर्मकरों का व्यवसायवार विवरण (प्रतिशत में)

1. कृषक	55.4
2. कृषि श्रमिक	23.2
3. पशुपालन, वृक्षारोपण तथा जंगल लगाना	0.8
4. खान खोदना	0.0
5. पारवारिक उद्योग	1.0
6. गैर पारवारिक उद्योग	2.6
7. निर्माण कार्य	1.3
8. व्यापार एवं वाणिज्य	6.0
9. यातायात संग्रहण एवं संचार	1.7
10.अन्य	8.1

तालिका संख्या-६

श्रमिकों का वर्गीकरण–1996 (1991 की जनगणना के आधार पर)

श्रमिकों के प्रकार	श्रमिकों की संख्यां	प्रतिशत
अ. कुल कृषिश्रमिक	1,99,083	68.5
ब. लघु और सीमान्त श्रमिक	1,42,948	51.1
स. खेतिहरश्रमिक / भूमिहीन	83,463	23.1
द. कृषि सम्बन्धित श्रमिक	2,890	0.8
ह. घरेलू कुटीर उद्योगश्रमिक	3.613	1.1
र. कारीगर / शिल्पकार	9,394	2.7
ल. अन्य श्रमिक	62,868	2.7
सम्पूर्ण श्रमिक संख्या योग	3,61,311	–

उपरोक्त तालिका से दो महत्वपूर्ण विशेषताएं जनपदीय ग्रामीण व्यवस्था की उभर कर सामने आती हैं। प्रथम तो जनपदीय व्यवस्था कृषि प्रधान अर्थ–व्यवस्था है और दूसरी कि लगभग आधे कृषक, लघु या फिर सीमान्त कृषक हैं। इसी संदर्भ में एक दुखद पहलू यह है कि जहां खेतिहर मजदूरों तथा भूमिहीन कृषकों की संख्या 1966 में 83225 थी वह सन् 1998–99 में बढ़ कर 83,463 हो गई । वस्तुतः यह बढ़ोत्तरी उन लघु या सीमान्त कृषकों में हुई है जो पहले भूमि के मालिक थे परन्तु धीरे–धीरे महाजन या बड़े–बड़े भूमि स्वामियों के कर्ज में दब गये और उन्हें जमीन छोड़नी पड़ी व वे श्रमिक बन गये।

एक अन्य चौकाने वाला तथ्य यह भी रहा कि सरकार से पर्याप्त साख व सामान (कच्चा माल) की सुविधा प्राप्त होने पर भी जनपद के कुटीर उद्योगों की संख्या जो 1996 में 13037 थी अब घट कर 3613 रह गई। हुआ यह है कि रस्सी उद्योग, टोकरी व डलिया उद्योग का स्थान प्लास्टिक ने ले लिया है।

तालिका संख्या - ७

जनपद में क्रियात्मक जोतों का आकार वर्गानुसार संख्या व क्षेत्रफल कृषि गणना 1990–91 आकार वर्ग हेक्टेअर

विकास खण्डवार 1990–91	0.5 हे0 से कम		0.5 हे0 से 1 हे0		1 हे0 से 2 हे0	
	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल
1	2	3	4	5	6	7
1. रामपुरा	7015	2210	4461	3588	3817	5735
2. कुठौंद	8244	2315	4505	3809	3952	5852
3. माधौगढ़	5832	1528	3992	2110	3168	5413
4. जालौन	6571	2032	4487	2832	3999	5942
5. नदीगांव	7573	2005	4838	3495	5287	7621
6. कोंच	6574	1978	4638	3293	4888	7102
7. डकोर	7302	2041	6680	4713	8624	12494
8. महेबा	6256	1899	5365	3663	5554	8201
9. कदौरा	7257	1912	5573	3868	6770	9357
योग ग्रामीण क्षेत्र	**62624**	**17920**	**44539**	**31371**	**46059**	**67717**
नगरीय क्षेत्र	**38**	**105**	**40**	**107**	**52**	**115**
कुल जनपद	**62662**	**18025**	**44579**	**31478**	**46111**	**67832**

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 65

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि जनपद में 0.5 हेक्टेअर से कम आकार वाले जोतों की संख्या आज भी सर्वाधिक है और ये वे जोतें हैं जिन्हें हम अधिकतर सीमान्त और लघु कृषकों के स्वामित्व में पाते हैं इन्हें हम अनार्थिक इस अर्थ में कह सकते हैं क्योंकि न तो इन पर ट्रेक्टर आदि से कार्य सम्भव है और यदि कहीं-कहीं है भी तो किराये के ट्रेक्टर से कृषि कार्य सम्पन्न होता है। कुठौंद तथा नदीगांव विकास खण्डों में इनकी संख्या सर्वाधिक है। संख्या अधिक के साथ-साथ क्षेत्रफल कम होना इस बात का द्योतक है कि जोत का आकार तुलनात्मक दृष्ठिकोण से अन्य विकास खण्डोंकी जोतें के आकार से छोटा या कम है। नगरीय क्षेत्रों में 0.5 हे. से 1.00 – 2.00 हे. क्षेत्र की संख्या, ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में नगण्य है, वस्तुतः नगरीय क्षेत्रों में जहां हर प्रकार की सुविधाएं सुलभ रहती हैं जिससे कृषि कार्य की प्रगति में आने वाली बाधाओं पर तुरन्त अंकुश लगाना सम्भव हो जाता है तथा आधुनिक कृषि यंत्रों का यथा ट्रेक्टर, बुलडोज़र, विनोअर व हावेस्टर तथा अन्यान्य उन्नत यंत्र प्रयोग मे लाना सम्भव हो पाता है। नगरों से दूरस्थ ग्रामाचलों में इन सुविधाओं को सुधारने की व्यवस्था (जैसी रुस में मशीन ट्रेक्टर आर्गेनाईजेसन्स) सम्भव न होने के कारण टेक्ट्रर छोड़ अन्य संयंत्रों का प्रयोग कठिनाई से ही सम्भव हो पाता है। जहाँ तक हरित-क्रान्ति के पश्चात् बुन्देलखण्ड के इस क्षेत्र में आधुनिकतम संयंत्रों के प्रयोग की बात है तो यहां अनेक अत्यधिक अमीर परिवार है जो ऐसी सुविधाओं का व्यक्तिगत तौर पर लाभ उठा रहे हैं। जिले में वर्तमान में उन्नत व आधुनिकतम यंत्रों के प्रयोग का विवरण निम्न प्रकार से है।

तालिका संख्या -८

जनपद में कृषि यन्त्र व उपकरण का प्रयोग 1998

क्षेत्र	हल लकड़ी	हल लोहा	उन्नत हैरो तथा कल्टीवेटर	उन्नत थ्रेसर मशीन	स्पेयर संख्या	उन्नत बुआई यन्त्र	ट्रेक्टर
ग्रामीण	21192	6601	5520	9255	745	30967	9561
नगरीय	6454	2164	1679	1272	256	3238	1016
योग	**27646**	**8765**	**7199**	**10527**	**1001**	**34205**	**10577**

स्रोत :- सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 68

कीट नाशक व रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग एवं उत्पादन

हमारे देश का हृदय कहा जाने वाला उत्तर प्रदेश आज भयावह विस्फोटक गति से बढ़ती जनसंख्या से प्रभावित है। परिणामतः जहाँ एक ओर आबादी बढ़ रही है वहीं दूसरी ओर कृषि उत्पादन हेतु भूमि उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। इस सबके साथ—साथ प्राकृतिक आपदायें समय—समय पर विकराल रुप धारण कर लेती हैं जिसके कारण वर्ष 2002 प्रदेश में सूखा ग्रसित प्रदेश घोषित कर दिया गया है। जलाभाव व अतिवृष्टि के अतिरिक्त कभी—कभी खड़ी फसलें रोग ग्रस्त हो जाती हैं। अनेक प्रकार के कीट कृषि उत्पादन को इस बुरी तरह से प्रभावित करते हैं कि कृषि उत्पादन से लागत भी निकलना कठिन ही नहीं असम्भव सा लगने लगता है।

बुन्देलखण्ड का एक महत्वपूर्ण जनपद जालौन है। यहाँ अधिकांश जनता खेती की एक मात्र जीविका के साधन पर पूर्णतया निर्भर रहती है। परम्परागत खेती के परिणामस्वरुप वे अपनी कृषि पद्धति में किसी लाभप्रद परिवर्तन जैसे समय—समय पर कीटनाशक दवाओं का छिडाकाव को भी इसलिये तैयार नहीं होते, क्योंकि उनके अनुसार कीटणुनाशक दवाओं का छिड़काव पौधे को ही नहीं वरन् उपज को हानि पहुँचाने के साथ—साथ दूषित कर सकता है जिसके प्रयोग करने से उनके स्वास्थ्य को हानि हो सकती है। इस अन्धविश्वास के चलते अग्रांकित तालिका इस तथ्य की पुष्टि करती है कि 9 विकास खण्डों में से मात्र 4 विकास खण्डों में कीटनाशक डिपो कार्यरत हैं। शेष 7 नगरीय क्षेत्र अर्थात् उरई में स्थापित हैं। इसमें भी विकासखण्ड डकोर उरई तहसील में ही आता है। अस्तु कीटनाशक दवाओं के प्रयोग के लिये, व्यापक तथा प्रभावी अभियान छेड़ने की आवश्यकता है। एक हास्यप्रद स्थिति सम्पर्क करने पर सामने आई, जिसमें अधिकांश कृषक जीवहत्या, मूसहत्या (खलियानों में) अहिंसात्मक भावना से प्रेरित होने के कारण पाप समझते हैं।

तालिका संख्या - ९

जनपद में कृषि विकास से सम्बन्धित मुख्य सुविधाएँ (मी.टन.)

वर्ष	बीजगोदाम /उर्वरक डिपो		ग्रामीण गोदाम		कीटनाशक डिपो		बीज वृद्धि के फार्म
1	2		3		4		5
	संख्या	क्षमता	संख्या	क्षमता	संख्या	क्षमता	संख्या
1997–98	77	7300	80	8000	11	775	5
1998–99	77	7300	80	8000	11	775	5
1999–2000	77	7300	80	8000	11	775	5
योग ग्रामीण	60	3850	66	6600	4	211	5
नगरीय	17	3450	14	1400	7	564	–
जनपद योग	77	7300	80	8000	11	775	5

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 70

निम्नांकित तालिका पुनः इसी तथ्य की पुष्टि करती है कि कृषि सेवाओं का विकास व विस्तार अधिकांशतः नगर/उरई तक ही सीमित रहा है :–

तालिका संख्या - १०

जनपद में कृषि विकास से सम्बन्धित मुख्य सुविधाएँ

वर्ष	शीत भण्डार		कृषि सेवा केन्द्र		कृषि उत्पादन मण्डी समिति	बायो गैस संयंत्र
1	2		3		4	5
	संख्या	क्षमता	एग्रो	अन्य	संख्या	संख्या
1997–98	1	2700	4	–	4	5
1998–99	1	2700	4	–	4	5
1999–2000	1	2700	4	–	4	5
योग ग्रामीण	–	–	–	–	1	1613
नगरीय	1	2700	4	–	6	–
जनपद योग	1	2700	4	–	4	5

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 71

रासायनिक उर्वरक एवं खाद का प्रयोग एवं कृषि उत्पादन

कृषि उत्पादन में वृद्धि की किसी भी योजना में उर्वरकों व खादों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हमारे देश व प्रदेश यहां तक कि जनपद में नाना प्रकार की भूमि पाई जाती है परन्तु इसमें नाईट्रोजन व फास्फोरस की कमी सभी जगह व्याप्त है। कारण यह रहा है कि परम्परागत खेती शताब्दियों से पिता से पुत्र द्वारा अपनाई शैली पर ही चलती रही है जिसके कारण भूमि से जितना पोषक तत्व लिया गया है उतना वापस लौटाया नहीं गया, इससे भूमि की उत्पादन क्षमता गिरती चली गई है। शाही कृषि आयोग के शब्दों में, "भारतीय मिट्टी पौधों की खुराक के जिन तत्वों से वंचित है उनमें सबसे महत्वपूर्ण तत्व नाइट्रोजन है। इस तत्व की कमी की समस्या ही वास्तविक खाद की समस्या है।"

जैसा कि ज्ञात है कि भूमि के रसायनिक लक्षणों से पौधो के पोषक–तत्वों की वास्तविक पूर्ति का सम्बन्ध होता है। पौधे भूमि से जो आवश्यक पोषक तत्व लेते हैं उनमें नाईट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश मुख्य तत्व हैं। चूंकि जनपद में अन्य प्रकार की खादों जैसे, हरी खाद, हड्डी की खाद, मछली की खाद, यहां तक कि गोबर की खाद (मात्र 40 प्रतिशत खाद के रुप में प्रयोग में आ पाता है) की पूर्ति में बहुत कठिनाई होती इसीलिये रसायनिक उर्वरकों का विशेष महत्व है।

निम्नांकित तालिका यह दर्शाती है कि पिछले कछ वर्षों से रसायनिक खाद के प्रयोग में कमी आई है। इसके कई कारण हैं जिनमें उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग, आवश्यकता से अधिक प्रयोग के कारण आलू जैसे उत्पाद में उर्वरक की बू आ जाना, गलत विधि एवं गलत समय पर प्रयोग करना, अनुचित जल प्रबन्ध, बिना मिट्टी के परीक्षण के उर्वरक का प्रयोग

आदि। अब यह कहने की कोई सार्थकता नहीं रह गई है कि कृषि उत्पादन के बढ़ते लक्ष्य की पूर्ति हेतु भविष्य में कृषि उत्पादकता में अधिकता में अधिक वृद्धि करनी होगी, अतः भूमि में जिन तत्वों की कमी है उनकी पूर्ति के लिए रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग एक अनिवार्यता स्वीकार करनी होगी।

हरित क्रान्तिके आगमन के साथ–साथ जनपद में उर्वरकों के प्रयोग में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है जो निम्न प्रकार से है :–

तालिका संख्या - ११

जनपद में उर्वरक वितरण (मी. टन)

वर्ष	नाईट्रोजन	फास्फोरस	पोटास	योग
1	2	3	4	5
1996–97	14673	7150	79	21902
1997–98	14508	6034	32	20574
1998–99	12500	4723	191	17414
योग ग्रामीण क्षेत्र	12500	4723	191	17414

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 69

जनपद में परिवहन एवं संचार सेवाएं

किसी भी देश, प्रदेश या फिर जनपद कि समृद्धि एवं विकास में कृषि, उद्योग व खनन जितना महत्व रखते हैं, उतना ही महत्व परिवहन के तथां संचार के साधनों का है। परिवहन एवं संचार के साधनों को आर्थिक प्रगति का द्योतक माना जाता है जिनके बिना व्यापार और उद्योगों का विकास असम्भव है। इसीलिए यदि कृषि और उद्योग को अर्थव्यवस्था की काया माना जाय तो परिवहन एवं संचार इसकी धमनियां हैं, यह देश, प्रदेश व जनपद में वही कार्य करती हैं जो मावन शरीर में धमनी और शिराएं करती हैं।

जनपद स्तर पर उरई रेल द्वारा प्रदेश व देश के अन्य भागों से जुड़ा है, साथ–साथ लोक निर्माण विभाग के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रीय राजमार्गों, प्रादेशिक राजमार्ग तथा अन्य सड़कों के बृहत जाल से जुड़ा है, जैसा कि जनपद के मानचित्र में अंकित है।

तालिका संख्या - १२

जनपद में पक्की सड़कें–लम्बाई (कि0मी0)

क्र.सं.	मद	1996–97	1997–98	1998–99
1	2	3	4	5
1.	**लोक निर्माण विभाग के अन्तर्गत**			
	1. राष्ट्रीय राजमार्ग	72	72	72
	2. प्रादेशिक राजमार्ग	81	81	81
	3. मुख्य जिला सड़के	146	146	146
	4. अन्य जिला तथा ग्रामीण सड़के	933	985	1313
	योग	**1232**	**1284**	**1612**
2.	**स्थानीय निकायों के अन्तर्गत**			
	1. जिला पंचायत	24	24	24
	2. नगर निगम / नगर पालिका परिषद / नगरपंचायत / केन्द्र	49	49	49
	योग	**73**	**73**	**73**
3.	**अन्य विभागों के अन्तर्गत**			
	सिंचाई विभाग, गन्नविभाग वन विभाग, डी.जी., बी.आर.	25	25	25
	योग	**25**	**25**	**25**
	कुल योग (1 + 2 + 3)	**1330**	**1382**	**1710**

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 103

तालिका संख्या - १३

जनपद में विकास खण्डवार पक्की सड़कों की लम्बाई (कि.मी.)

वर्ष / विकास खण्ड	पक्की सड़कों की लम्बाई	सब ऋतु योग्य सड़कों से जुड़े ग्रामों की संख्या (जन संख्यावार)			
	कुल	लोक नि. वि.	1000 से कम वाले ग्राम	1000 से 1499 वाले ग्राम	1500 से अधिक वाले ग्राम
1	2	3	4	5	6
1996–97	1330	1232	262	89	129
1997–98	1382	1284	131	66	139
1998–99	1710	1612	131	66	139
विकास खण्डवार (1998–99)					
1. रामपुरा	108	102	9	5	6
2. कुठौंद	112	112	11	7	11
3. माधौगढ़	130	120	10	1	14
4. जालौन	200	190	10	7	16
5. नदीगांव	180	168	23	6	15
6. कोंच	136	136	20	7	13
7. डकोर	300	300	26	8	29
8. महेबा	260	260	10	11	15
9. कदौरा	200	200	12	14	20
योग ग्रामीण	**1626**	**1588**	**131**	**66**	**139**
नगरीय	**84**	**24**	–	–	–
योग जनपद	**1710**	**1612**	**131**	**66**	**139**

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 104

संचार सेवाएं

संचार सेवाओं के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख साधनों में टेलीफोन व्यवस्था में भारी क्रान्तिकारी विस्तार हुआ जबकि डाक सेवाएं तथा तार सेवाएं इससे प्रभावित हुई हैं। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां संचार सुविधाओं के अधिक विस्तार की आवश्यकता है अपेक्षाकृत उतना विस्तार व विकास नहीं हो पाया है जितना कि नगरीय क्षेत्र में जहां यह लोकप्रिय भी अधिक हुआ है। अग्रांकित तालिका से यह स्पष्ट होता है :–

तालिका संख्या - १४

जनपद में विकास खण्डवार संचार सेवाएं

वर्ष / खण्डवार	डाकघर	तारघर	पी.सी.ओ.	टेलीफोन
1	2	3	4	5
1996–97	244	12	365	4850
1997–98	244	12	1081	10121
1998–99	244	12	1271	14034
विकास खण्ड वार (1998–99)				
1. रामपुरा	15	1	2	72
2. कुठौंद	24	–	8	102
3. माधौगढ़	17	1	2	75
4. जालौन	26	–	2	70
5. नदीगांव	27	1	1	60
6. कोंच	27	–	2	102
7. डकोर	32	1	2	80
8. महेबा	16	1	1	55
9. कदौरा	30	1	1	65
योग ग्रामीण	**214**	**6**	**21**	**681**
नगरीय	**30**	**6**	**1250**	**13353**
योगजनपद	**244**	**12**	**1271**	**14034**

बैंकिंग सुविधाएँ

कृषि दासता का मध्य काल का उपरोक्त नमूना आज भी जनपद के अनेक गांवों में देखने को मिलता है, जो इस बात का प्रमाण भी है कि बैंकिग सुविधाओं का जो भी विस्तार जनपद में हुआ है वह अपर्याप्त ही नहीं वरन् असंतोषजनक भी है। जनपद में बैंकिग सेवाओं का संक्षिप्त विवरण यद्यपि पूर्वाकिंत है फिर भी जनपदीय बैंकिग संविधाओं का विकास खण्डवार विवरण तथा ऋण वितरण की समेकित स्थिति वस्तुस्थिति जान लेने क लिये अति महत्वपूर्ण है।

तालिका संख्या - १५

जनपद में विकास खण्डवार अनुसूचित/ व्यावसायिक बैंक व ग्रामीण बैंकों की शाखाओं की संख्या

वर्ष / खण्डवार	राष्ट्रींयकृत बैंक शाखाएं	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शाखाऐं	अन्य गैर राष्ट्रीयकृत बैंक शाखाएं	जिला सहकारी बैंक उरई की शाखाएं
1	2	3	4	5
1997–98	48	35	21	19
1998–99	48	35	21	19
1999–2000	48	35	21	19
विकास खण्ड वार (1999–2000)				
1. रामपुरा	–	2	2	2
2. कुठौंद	4	3	2	1
3. माधौगढ़	3	2	3	2
4. जालौन	–	4	2	2
5. नदीगांव	3	4	2	3
6. कोंच	–	2	3	1
7. डकोर	3	6	3	5
8. महेबा	3	5	3	2
9. कदौरा	3	3	2	1
योग ग्रामीण	**19**	**31**	**21**	**14**
नगरीय	**29**	**4**	**–**	**5**
योगजनपद	**48**	**35**	**21**	**19**

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 106

अग्रांकित तालिका के अन्तर्गत जनपद में व्यवसायिक बैंकों में जमा धनराशि एवं ऋण व्यवस्था के त्रिवर्षीय समेकित विवरण को प्रस्तुत किया गया है। यह तालिका इस ओर संकेत करती है कि यद्यपि जमा धनराशि में तो उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है परन्तु ऋण देने के प्रतिशत में अत्याधिक कमी आई है जो 1997–98 की वितरित धनराशि के प्रतिशत के आधे से भी कम है। ज्ञात हुआ है कि अधिकांश ऋण जिनकी अवधि पूर्ण हो चुकी है उनका भुगतान समय से न होने से तथा राजनीतिक कारणों से यह कमी आई है। इसी प्रकार की हस्तकक्षेप की बात नरसिम्हन समिति ने नवम्बर 1991 में अपने प्रतिवेदन में अंकित की थी। इसके कारण कृषि तथा कृषि से सम्बन्धित क्रियायें प्रभावित

हुई हैं। लघु उद्योगों में अधिक ऋण न देकर व्यक्तिगत ऋणों को प्राथमिकता दी गई है, इसका एक कारण कुटीर और लघु उद्योगों के प्रति लोगों में उत्साह कमी भी रही है।

तालिका संख्या - १६

जनपद के व्यावसायिक बैंकों में जमाराशि तथा ऋण वितरण (हजार रूपयों में)

क्र.स.	मद	1997—98	1998—99	1999—2000
1	2	3	4	5
1.	धनराशि जमा	24,42,816	24,84,793	47,98,900
2.	कुल ऋण वितरण	16,12,538	16,27,849	14,98,560
3.	जमा धनराशि में ऋण वितरण का प्रतिशत	66	65	31
4.	प्राथमिकता क्षेत्र में ऋण वितरण			
अ.	कृषि तथा से कृषि से सबंधित कार्य	10,03,435	10,06,408	4,08,944
ब.	लघु उद्योग	67,304	67,470	15,242
स.	अन्य	4,74,139	4,74,703	36,923
योग	अ+ब+स	15,44,878	15,48,581	4,61,109

स्रोत :— सांख्यकीय पत्रिका — जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 107

जनपद का औद्योगिक परिदृश्य

लगभग 20 से 25 वर्ष पूर्व जनपद जालौन औद्योगिक मरुस्थल माना जाता था। परन्तु इसके पश्चात् प्रादेशिक व केन्द्रीय सरकार ने अनेक औद्योगिक विकासार्थ योजनाएं प्रस्तुत कर इस जनपद में औद्योगिक क्रान्ति लाने के प्रयास किये तथा एक बहुत बड़ा क्षेत्र जो राष्ट्रीय राजमार्ग से सटा हुआ है, नये उद्योग लगाने, साहसियों को प्रोत्साहित करने तथा बेरोजगारी की स्थनीय समस्या हल करने के लिये अनुदानित ही नहीं किया वरन् इस क्षेत्र में पानी, बिजली व सस्ते दर पर भूमि देने की व्यवस्था भी की गई इस प्रकार सातवीं व आठवीं योजनान्तर्गत कई राष्ट्रीय स्तर की कम्पिनियों ने व ख्याति प्राप्त उद्यमियों ने यहां कई औद्योगिक संस्थान स्थापित किये हैं। इनमें से इस नव विकसित क्षेत्र में निम्न औद्योगिक इकाइयाँ कार्यरत हैं —

1. मेसर्स उवर्शी सिन्थेटिक प्रोसेसर्स प्रा0लि0 उरई।
2. मेसर्स उरई आइल एण्ड केमीकल प्रा0लि0 उरई।
3. मेसर्स प्रगति स्टील्स प्रा0लि0 उरई।
4. मेसर्स वेजीप्रो फूडस एण्ड फीड्स लि0 उरई (सोयाबीन उत्पादन)।
5. मेसर्स बलवीर स्टील्स प्रा.लि., उरई (स्टील कास्टिंग)।
6. मेसर्स हिन्दुस्तान लीवर लि0, उरई (साबुन, ग्लेसरीन)।
7. मेसर्स उरई फलोर मिल्स प्रा.लि., उरई।
8. मेसर्स अल्फा कास्टिंग प्रा0लि0 उरई (स्टील कास्टिंग)।
9. मेसर्स प्रीतम स्टील्स प्रा0लि. उरई।
10. मेसर्स गुड अर्थ स्टील्स प्रा0लि0 उरई।
11. मेसर्स रिलायंस सीमेन्ट प्रा0लि0 उरई।
12. मेसर्स शताब्दी स्टील्स लि. उरई।
13. मेसर्स बुन्दलेखण्ड रिफेक्ट्रीज प्रा.लि. उरई।
14. मेसर्स बसन्त रिफेक्ट्रीज प्रा0लि. उरई।
15. मेसर्स एस.वी.एस. पैंकिग इन्डस्ट्रीज, उरई।
16. मेसर्स अनु पोलीटेक्स प्रा.लि., उरई।
17. मेसर्स पंकज प्लास्टिक इण्डस्ट्रीज उरई (पोलीथीन–थैले)।
18. मेसर्स अग्रवाल प्लास्टिक इन्डस्ट्रीज, उरई।
19. मेसर्स कृष्णा ग्रेनाईट, उरई।
20. मेसर्स गणेश ग्रेनाईट, उरई।
21. मेसर्स गरिमा फेरो एलाईज लि0 उरई।
22. मेसर्स स्टार इन्डस्ट्रीज, उरई (नमक)।
23. मेसर्स अमित फूड्स, उरई।
24. मेसर्स सेंगर एन्टरप्राइजेज, उरई (इलेक्ट्रिक पैनल)।
25. मेसर्स सौरभ आइस फैक्ट्री,उरई (आइस)।

इसके अतिरिक्त उपरोक्त औद्योगिक इकाइयों की सफलता से प्रभावित हो अनेक नये साहसी इस क्षेत्र में आने की सोच रहे हैं। उपरोक्त इकाइयों में से कई इकाइयां ऐसी भी हैं जिन्हें जालौन डिस्ट्रिक कोआपरेटिव बैंक लि. उरई (जिस पर वर्तमान शोध संरचना केन्द्रित है) ने व्यक्तिगत ऋण देकर समय–समय पर लाभान्वित किया है। जनपद की पांच औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाए बेरोजगार युवकों को विभिन्न उद्योग क्षेत्र का प्रशिक्षण प्रदान करती हैं। ये प्रशिक्षण संस्थाएं उरई, कोंच, माधौगढ़, बंगरा व कालपी में स्थापित हैं।

उपरोक्त औद्योगिक संस्थानों के अतिरिक्त कालपी में कागज उद्योग, स्टील ट्रंक व चमड़ा उद्योग की अनेक इकाइयाँ कार्यरत हैं। माधौगढ़ की मिनी शुगर मिल में गुड़ का उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त हड्डियों से खाद बनाने का कारखाना भी उरई दूरस्थ क्षेत्र में स्थापित है। नगर में कई दाल व किराना मिल भी कार्यरत हैं।

उद्योगों में कार्यरत् श्रमिक :

	स्त्रियां	पुरुष
कुशल श्रमिक	2500	13000
अकुशल श्रमिक	1800	21,281

स्रोत :– जनपद जालौन का औद्योगिक परिदृश्य (1998–99) हिन्दी पुस्तिका

तालिका संख्या - १७

जनपद में औद्यौगीकरण की प्रगति

कारखाना अधिनियम 1948 के अन्तर्गत पंजीकृत कारखाने

क्र.सं.	मद	1990–91	1991–92	1992–93
1	2	3	4	5
1.	पंजीकृत कारखाने	34	34	35
2.	कार्यरत कारखाने	20	20	17
3.	कारखाने जिनसे रिटर्न प्राप्त हुए	19	19	19
4.	औसत दैनिक कार्यरत श्रमिक एवं कर्मचारी	797	797	650
5.	उत्पादन मूल्य (रुपयों)	476739	476739	713693

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 86

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ठ होता है कि प्रारम्भ में अनेक आकर्षक लाभों की कल्पना कर उद्योगों/कारखानो का पंजीकरण तो करा लिया गया, परन्तु प्रारम्भिक कठिनाइयों का साहस से सामना न करने के कारण, पंजीकृत कारखाने कार्यरत् न हो सके। एकाध ऐसे भी उद्यमी रहे, जिन्होंने उत्पादन तो प्रारम्भ किया परन्तु उपयुक्त बाजार व माल की खपत व मूल्य की वापसी सफलता पूर्वक न होने के कारण हताश होकर बैठ गये, कारखाने बन्द हो गये और वे कर्जदार हो गये।

तालिका संख्या -१८

जनपद में औद्योगिक आस्थान

क्र.सं.	मद	1997–98	1998–99	1999–2000
1	2	3	4	5
1.	आस्थनों की संख्या	5	5	5
2.	शेड़ों की संख्या (आवंटित)	8	8	12
	कार्यरत	5	5	5
3.	प्लान्टों की संख्या (आवंटिक) कार्यरत	100	120	113
4.	रोजगार में लगे औसत व्यक्तियो की संख्या	187	85	68
5.	उत्पादन मूल्य (0000रु0 में)	5322	5875	4075

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 88

तालिका संख्या - १९

विभिन्न प्रकार की संस्थाओं के आधीन कार्यशील औद्योगिक इकाइयाँ
1999–2000

क्र. सं.	संस्थाओं के नाम	चलित					
		पंचायत द्वारा	क्षेत्र समिति द्वारा	औद्योगिक सहकारी समिति द्वारा	पंजीकृत संस्थाओं द्वारा	व्यक्तिगतं उद्योग पतियों द्वारा	कुल योग
1	2	3	4	5	6	7	8
1.	खादी उद्योग	–	72	23	115	2231	2441
2.	खादी ग्रमोद्योग	–	–	–	122	–	122
3.	लघु उद्योग इकाइयां						
अ.	इंजीनियरिंग	–	–	–	7	672	679
ब.	रसायनिक	–	–	–	3	193	196
स.	विधायन	–	–	–	16	270	286
द.	हथकरघा	–	–	–	13	46	59
ह.	रेशम	–	–	–	–	4	4
र.	हस्तशिल्प	–	–	15	9	214	238
ल.	अन्य	–	–	–	18	3107	3125
4.	योग 1 +2	–	72	23	237	2231	2563
5.	योग 3 अ से + ल तक	–	–	15	66	4506	4587
6.	योग ग्रामीण एवं लघु उद्योग 4+5	–	72	38	303	6737	7150
7.	कार्यरत व्यक्तिय की सं0 1+2	–	72	23	237	2231	2563
8.	ग्रामीण एवं लघु उद्योग इकाइयाँ में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या 6 + 7		72	38	303	5737	6150

स्रोत :– सांख्यकीय पत्रिका – जिला जालौन वर्ष 2000 पृष्ठ संख्या 87

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि पंचायत द्वारा कोई उद्योग नहीं चलाया गया, क्षेत्रीय समितियों द्वारा कार्यक्षेत्र मात्र खादीउद्योग तक समिति रखा गया, औद्योगिक सहकारियों का भी कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं रहा। उद्योगों का विस्तार जो कुछ भी हुआ वह पंजीकृत संस्थाओं द्वारा या फिर सबसे महत्वपूर्ण योगदान व्यक्तिगत उद्योगपतियों का ही रहा जिन्होंने हर क्षेत्र में औद्यौगिक इकाइयों को स्थापित किया और सफलता पूर्वक संचालित कर लाभर्जन भी किया है।

तृतीय अध्याय

सहकारी साख का ढ़ाँचा या स्वरुप

भारत वर्ष में सहकारिता एक स्वस्फूर्तिदायी अर्थात् अन्तः प्रेरणायुक्त आन्दोलन नहीं है वरन् यह बाह्य कारकों व समर्थन से उत्प्रेरित आन्दोलन है। यह एक सर्वविदित तथ्य है। इसे जनमत एक सहकारी आन्दोलन न स्वीकार कर सरकारी आन्दोलन ही एक स्वर से मानता है। इस भारतीय सहकारी अन्दोलन की, जो आज संसार में एक बृहताकार अन्दोलन का स्वरुप ले चुका है, न तो इंग्लैण्ड के 'रोकडेल अग्रणी', जर्मनी के रेफीशन या शुल्जे, इटली के लुज्जेटी और डेनमार्क की डेयरी सहकारिता से तुलना की जा सकती है, न इसे उस सीमा तक सफलता सुलभ हो सकी है। भारत में सहकारी आन्दोलन सरकार की प्रेरणा से सन् 1904 में सहकारी समितियाँ अधिनियम के रूप में पारित और प्रस्फुटित हुआ और उसके बाद से ही सहकारी आन्दोलन को भारत सरकार का नैतिक व वित्तीय सतर्थन प्राप्त होता रहा है।

''भारत में सहकारिता एक आन्दोलन नही वरन् एक ऐसी नीति है जो केन्द्रीय सरकार के प्रस्तावों द्वारा निर्मित की जाती है'' – सर होरेस प्लन्केट

अतः सन् 1904 के प्रारम्भ से आज तक, विशेषकर सन् 1919 के पश्चात्, जब से सहकारिता को एक प्रादेशिक विभाग घोषित किया गया, सहकारिता का जो भी विकास हुआ है वह राज्य सहायता से ही हुआ है। सामान्यतः सहकारिता आन्दोलन को नैतिक समर्थन के साथ राज्य–सहायता वैधानिक व वित्तीय कई रुपों में प्राप्त हुई है यथा :–,

1. विशेष सहकारी विधान की रचना।
2. विभिन्न ऋण सहायता।
3. साहूकारी–प्रथा सम्बन्धी अधिनियमों के प्रतिबन्धात्मक प्रावधान।
4. समय–समय पर विशेषज्ञ समितियों की नियुक्ति।
5. राज्य सरकारों की वित्तीय वचनबद्धता।
6. ऋण सहायक अनुदान, उपादान (सब्सिड़ीज)।
7. सरकारी संस्थाओं की अंशपूजी के रुप में वित्तीय सहायता।
8. प्रबन्ध व विशेषज्ञ नियुक्ति में सहायता।
9. ग्रामीण पुननिर्माण एवं नियोजित आर्थिक विकास में नैतिक समर्थन।
10. विशेष रियायतें तथा विशेषाधिकार – यथा आयकर, स्टाम्प कर, पंजीयन शुल्क मुक्ति, निशुल्क प्रेरणा सुविधाएं।

यहां यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि 1919 तक की अवधि में, जिसे राज्य तथा सहकारी आन्दोलन का द्वितीय चरण कहा जा सकता है, पर्याप्त वित्तीय सहायता, दीर्घकालीन साख के रुप में भूमि–बन्धक बैकों (अब भूमि विकास बैंक) राज्य सह ग्राम्य विकास बैंक तथा प्रान्तीय बैंकों द्वारा निर्गमित ऋण–पत्रों (डिबेंचरों) द्वारा प्राप्त हुई। ठीक इसके विपरीत 1919–20 से 1945–46 अर्थात् द्वितीय विश्व युद्ध के अन्त तक सहकारी आन्दोलन ने पूर्णतः स्वतन्त्र रुप से पर्याप्त पूंजी में वृद्धि कर महत्वपूर्ण सफलता अर्जित की। सन् 1946 में रिजर्व बैंक द्वारा की गई टिप्पणी से यह स्पष्ट होता है।

'' आन्दोलन छोटे आकार से प्रारम्भ होकर तेज गति से बड़े आकार का हो गया, और आज वह समाज के बड़े भाग को प्रभावित करता है। यह विकास एक ओर अत्यधिक राज्य सहायता के बिना व दूसरी ओर राज्य हस्तक्षेप से पूर्णरुप से मुक्त होने के कारण सम्भव हो सका है। राज्य सहायता आर्थिक रुप में निश्चय ही थोड़ी हुई है।''

विभागीय ढ़ाँचा

जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 1904 व 1912 के अधिनियमों के अन्तर्गत राज्य सरकारों पर यह दायित्व डाला गया था कि वे इस बात को सुनिश्चित करें कि सहकारी संस्थायें उन क्षेत्रों में या समाज के उन वर्गों के हित में संगठित की जायें जो इन समितियों या संगठित संस्थाओं की आवश्यकताओं और महत्व को समझते हों, जिससे ये संस्थाएं आगे चलकर संगठित होकर आर्थिक इकाइयों के रुप में कार्य करें। परन्तु बाँछित परिणाम सामने न आ सके वरन् अनेक समितियों या सहकारी इकाइयों में अधिकांश के हाथ असफलता ही लगी। यद्यपि सन् 1918 के अधिनियम के अन्तर्गत अनेक ऐसे आवश्यक नियम व उपनियम बनाये गये, जिससे विवादों का निपटारा सरलता से हो सके, किसी उल्झाव या अटकाव की स्थिति का शीघ्रातिशीघ्र निपटारा किया जा सके, परन्तु कोई उत्साहवर्धक परिणाम न निकलने के कारण व बहुत सी सरकारी सहायता राशि का दुरुपयोग होने के परिणामस्वरुप सहकारी सहायता आन्दोलन में विखराव व ठहराव के लक्षण परिलक्षित होने लगे। अस्तु 1912 के अधिनियम के प्रावधानों को फलोत्पादक बनाने के लिये प्रान्तीय सरकारों द्वारा निबन्धकों (रजिस्ट्रारों) और उनके आधीन कर्मचारियों की जनपद स्तर पर नियुक्ति प्रारम्भ की गई। इस प्रकार सहकारिता आन्दोलन में सहकारी विभाग या सरकारी विभाग का जन्म हुआ।

निबन्धक (रजिस्ट्रार) तथा सहकारी विभाग

व्यापक रुप से निबन्धक (रजिस्ट्रार) तथा सहकारी विभागों के कार्यों को दो भागों में विभाजित करते हैं :–

(क) वैधानिक कार्य तथा (ख) विकास एवं प्रवर्तन कार्य

(क) वैधानिक कार्य

समितियों का पंजीयन, उप–नियमों में संशोधन, हिसाब किताब का अंकेक्षण, समितियों की कार्यविधि की जांच, झगड़ों का फैसला तथा समितियों का समापन आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।

(ख) विकास एवं प्रवर्तन कार्य

सरकारी विभाग को विकास तथा प्रवर्तन सम्बन्धी कार्य करने पड़ते हैं। इसके अन्तर्गत किसी समिति के पंजीयनसे पूर्व यह देखना होता है कि स्थापित होने जा रही संस्था व्यावसायिक आदर्शों की पूर्ति करने में सफल होगी या नही, समिति के सफल होने के लिए एवं विकासार्थ समर्थ बनाने के लिये आवश्यक सहायता सुविधाएँ उपलब्ध हैं अथवा नहीं जिससे समिति या संस्था सहकारी सिद्वान्तों को त्यागे बिना संतोषजनक ढ़ंग से कार्य संचालन करने में सक्षम होगी या नहीं।

सहकारी विभाग का ढ़ाँचा या स्वरुप

सभी प्रदेशों में सहकारी विभाग के कर्मचारियों के संगठनात्मक स्वरुप में सहकारिता एक प्रादेशिक विभाग होने के नाते, समानता नहीं पाई जाती है। सहकारी आन्दोलन में तीव्रगति से विकास होने के कारण भी शक्तियों का विकेंद्रीयकरण हुआ है। विभागीय ढ़ाँचा लगभग निम्न प्रकार का है, जिसमें कार्य विस्तार व क्षेत्रानुसार उप या सहायक सहकारी अधिकारी भी रखे जाते हैं। :–
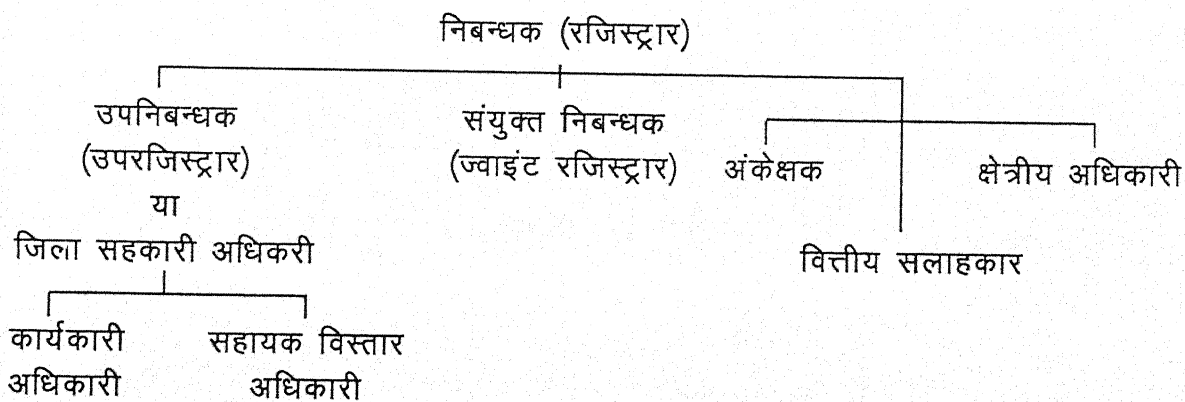
इस प्रकार निबन्धक (रजिस्ट्रार) अब एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण व प्रभावकारी माध्यम है जिसके द्वारा लोकतन्त्रीय सरकारें अपनी उत्कृष्ट सामाजिक तथा अर्थिक आकाँक्षाओं को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत कर सकती हैं। सहायक निबन्धक को सरकारों के आदर्शों का अवशोषण करना तथा एक अधिकारी के नेतृत्व को परामर्श के रुप में देना पड़ता है। साथ ही उसे प्रशासनिक वास्तविकता बनाये रखना तथा लोकप्रिय सरकारों को उचित परामर्श देना पड़ता है।

वस्तुतः सहकारी आन्दोलन की सफलता मूलतः निबन्धक (रजिस्ट्रार) के रुप में एक कुशल व उपयुक्त व्यक्ति के चुनाव पर निर्भर करती है। उत्तर प्रदेश की अपेक्षा पंजाब, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में सहकारी आन्दोलन की अपेक्षाकृत अधिक सफलता का मुख्य कारण यही रहा है कि उन प्रदेशो को पूर्णतया शिक्षित एवं प्रशिक्षित निबन्धकों (रजिस्ट्रारो) की सेवाओं को प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता रहा है।

सहकारी संस्थाओं का ढ़ाँचा

महत्व :

सन् 1945 में ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने कहा था कि ''आज पहले से भी कहीं अधिक, ग्रामीण साख के एक संस्थागत ढ़ाँचे का आधार गांव की सहकारी समिति को ही बनाने के पर्याप्त कारण है। भारत की कृषि साख के पुनर्गठन को स्वयं गांव के अन्दर ही कृषकों के किसी न किसी प्रकार के सहकारी संगठन पर ही आधारित करना चाहिये।''

यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि संस्थागत ग्रामीण साख व्यवस्था को ही क्यों उचित माना गया जबकि हम यही पा रहे हैं कि आज भी संघीय ढ़ांचे का शीर्ष भाग अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता आ रहा है। इस सम्बन्ध में फोर्ड फाउन्डेशन का कथन भी इसी ओर संकेत करता है कि शीर्ष संस्थाओं के अनवरत् प्रयासों के बावजूद ''अनुभव किया गया है कि ऊपर के

लोगों का अनुराग और उत्साह नीचे के लोगों तक नहीं पहुँच पाया है।''

—चेस्टर सी.डेविस

ग्रामीण क्षेत्र के चतुरांगी विकासार्थ, कृषि साख प्रदान करते समय निकटता, जमानत, सुविधा, सुरक्षा, उत्पादकता एवं बचत के मूल सिद्धान्तों को ध्यान में रखना होगा। यह सब तभी सम्भव हो सकेगा जब ग्रामीण–धरा से जुड़ी (ग्रास रुट लेविल) संस्था एवं संगठन हो, और कृषक ही इनके संचालक सदस्य हों, जो अपनी वित्तीय आवश्याकताओं का सही–सही अनुमान लगा सकेंगे, जिससे साख की उत्पादकता बढ़े, बचत की आदत विकसित हो तथा भविष्य में आत्मनिर्भता प्राप्त हो सके।

एफ. एम. निकलसन के अनुसार, '' ....यह साख ही तो है जो इस तरह से ही प्राप्त की जा सकेगी (जब ग्रामीण साख समिति का संगठन सशक्त माध्यम हो).......................................साख को प्रदान करने का ढ़ंग ऐसा हो जो आत्मसहायता एवं परस्परिक सहायता का पाठ पढ़ाये और साख के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को भी विस्तृत करे।''

इस नाते कृषि सहकारी समितियाँ साख के उपरोक्त मूल सिद्धान्तों को पूरा करती हैं।

यह ग्रामीण स्तर की सहकारी संस्था का संगठन ही है जिसमे ऋणी और ऋणदाता दोनों ही निकट व्यक्तिगत सम्पर्क में होते हैं तथा समितियां सदस्यों के बारे में पूर्ण जानकारी रख पाती हैं, अतएव विश्वास बना रहता है। जहां तक जमानत का प्रश्न है समितियां किसानों के व्यक्तिगत चरित्र की जानकारी रखकर ही उन्हें ऋण देती हैं। सुविधा और सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी साख समितियों के संगठन सर्वोपयुक्त कहे जा सकते हैं। सस्ती, समुचित व समय पर साख सुविधा भी कृषि सहकारी ग्रामीण समितियाँ ही सरलता से जुटा सकती हैं और इस प्रकार कृषकों को स्वावलम्बी बनने का पूर्ण

अवसर प्रदान करती हैं। ये सदस्यों को शिक्षित करती हैं, राजनैतिक व सामाजिक चेतना जगाती हैं व सदस्यों का सही मार्गदर्शन करती हैं। इसलिये ही इन ग्रामीण सहकारी समितियाँ का सुदृढ़ संगठनात्मक ढ़ाँचा ही ग्रामीण विकास की आदर्श व्यवस्था है।

इसके साथ–साथ एक अन्य पक्ष को ध्यान रखना चाहिये और वह है ग्राम पंचायत व्यवस्था, जिसकी ओर वर्तमान सरकारें सर्वाधिक ध्यान दे रही हैं। आज ग्राम पंचायतों को ग्राम के सर्वांगीण विकास का माध्यम बनाया जा रहा है तथा समस्त वित्तीय सहायता इन्हीं के माध्यम से ग्राम विकासार्थ दी जा रही है। इससे ग्राम सहकारी समितियों के संगठन को और अधिक मजबूत, विश्वासनीय तथा स्थिर आधार मिल गया है। और इस प्रकार अब ग्रासरुट लेविल से जुड़ी कृषि सहकारी समितियाँ स्वयं स्वतन्त्र, स्थिर व सबल सहकारी संस्थात्मक संगठन में नींव का पत्थर बनकर सहकारिता के पिरमिडाकार संगठन की आधार शिला होगी।

सहकारी साख संस्थाओं के ढ़ाँचे का स्वरुप

सहकारी साख संस्थाओं के ढ़ाँचा स्तूपाकार (पिरामिड) के सदृश्य है जो संघीय व्यवस्था पर आधारित है। सहकारी साख व्यवस्था की आधारशिला गांवो में है, अतः इसके ढ़ाँचे का आधार भी ग्रामीण प्राथमिक समितियाँ ही बनाती है, जो ग्रामीण जनता को प्रत्यक्ष रुप से साख सुविधाएँ उपलब्ध कराती हैं। इन्हीं ग्रामीण प्राथमिक सहकारी साख समितियों पर सम्पूर्ण सहकारी बैंक व्यवस्था संगठित की गई है। प्राथमिक साख समितियों को मिलाकर जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक स्थापित किये गये हैं, जिनका कार्यक्षेत्र एक जनपद होता है। उस जनपद की समस्त प्राथमिक साख समितियाँ केन्द्रीय सहकारी बैंक की अनिवार्य रुप से सदस्य होती हैं। यह केन्द्रीय बैंक जनपद में सहकारी साख के विकास एवं विस्तार के लिए उत्तरदायी होता है। प्रदेश के सभी केन्द्रीय सहकारी बैंकों को मिलाकर प्रदेश स्तर पर एक शीर्ष संस्था जिसे

राज्य या शीर्ष सहकारी बैंक कहते है स्थापित की जाती है। इसे शिखर (ऐपेक्स) बैंक भी कहते हैं। सभी केन्द्रीय बैंक इसके सदस्य होते हैं। राज्य सहकारी बैंक का कार्य सम्पूर्ण राज्य के केन्द्रीय बैंकों के आन्दोलन को दिशा देना एवं उस पर नियंत्रण रखना है।

12 जुलाई 1982 को, राष्ट्रीय कृषि आयोग के सुझाव पर कृषि एवं ग्रामीण विकासार्थ संस्थागत ऋण व्यवस्था समीक्षा समिति 1981 के (क्रेफीकार्ड या शिवरामन समिति) अन्तिरिम प्रतिवेदन की सिफारशों के अनुरुप राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना की गई। इस बैंक का प्रमुख लक्ष्य कृषि, लघु उद्योगों, कुटीर व ग्रामीण उद्योगों, हस्तकला, ग्रामीण शिल्प तथा सम्बन्धित आर्थिक कार्यों के विकास के लिये ऋण उपलब्ध कराना व ग्रामीण क्षेत्रों का एकीकृत विकास कराना है। इससे पूर्व रिजर्व बैंक आफ इण्डिया यह सभी कार्य करता था। आज पूरे देश की सहकारी साख को नाबार्ड ही नेतृत्व प्रदान कर रहा है, और एक प्रकार से जनपद स्तर पर हर प्रकार के कृषि विकास के लिये सर्वोपयुक्त व सर्वस्वीकृत संस्था है। इस प्रकार भारत में सहकारी साख व्यवस्था का अल्पकालीन ढ़ाँचा स्तूपाकार है और इसे एक प्रकार से प्रादेशिक स्तरपर चवर्गीय व्यवस्था ही कहा जायेगा यथा :–

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक
(नाबार्ड)
|
राज्य–स्तरीय सहकारी बैंक
(एपेक्स बैंक)
|
जिला स्तरीय सहकारी बैंक
(केन्द्रीय बैंक)
|
प्राथमिक साख समितियां
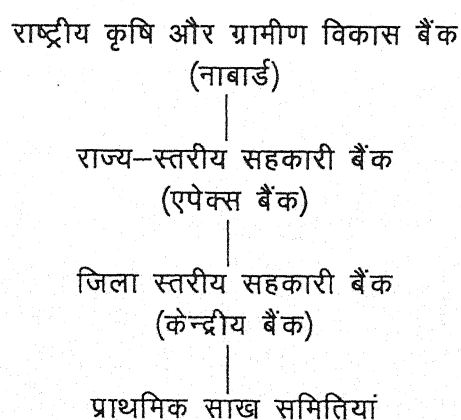
उपर्युक्त ग्रामीण सहकारी साख व्यवस्था के ढ़ाँचे को देखने से ज्ञात होता है कि विभिन्न स्तर पर स्थापित (सहकारी साख) संस्थाएँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि वैधानिक तथा वित्तीय मामलों में

उनका अलग–अनग स्वतंन्त्र अस्तित्व है। प्रत्येक संस्था अपने स्तर तथा क्षेत्र विशेष में कुछ निश्चित उद्देश्यों की आपूर्ति करती है जिसके कारण ही उसे एक स्वतंन्त्र इकाई स्वीकार किया जाता है। परन्तु सामूहिक रुप से ये सभी संस्थाएँ एक ऐसे संगठन का निर्माण करती हैं, जो पारस्परिक सहायता करने तथा साख आन्दोलन में सन्तुलन बनाये रखने के उद्देश्य से बाहरी स्रोतों से ऋण प्राप्त करता हैं। इससे ये संस्थाएँ कृषि साख की पूर्ति करती हैं तथा देय तिथि पर उन ऋणों के वसूल करने की व्यवस्था करती हैं। इस प्रकार सहकारी साख के संघीय ढाँचे की विशेषता यह है कि स्वतन्त्र होते हुये भी विभिन्न संस्थाओं की सम्पूर्ण कड़ी अपनी प्रत्येक इकाई की शक्ति से प्रभावित होती है, और इसीलिये आज यह आवश्यकता बार–बार अनुभव की जा रही है कि अनेक शीर्ष संस्थाओं के होते हुये भी ग्रामीण संस्थागत साख व्यवस्था को ग्रामीण साख सहकारी समितियों पर ही केन्द्रित व आधारित होना चाहिये। तभी हम भारतीय सहकारी आन्दोलन को एक अन्तःप्रेरणा व स्वस्फूर्तिदायी आन्दोलन कह सकेंगे।

तालिका संख्या - २०

भारत में सहकारी साख संस्थाओं का ढ़ाँचा
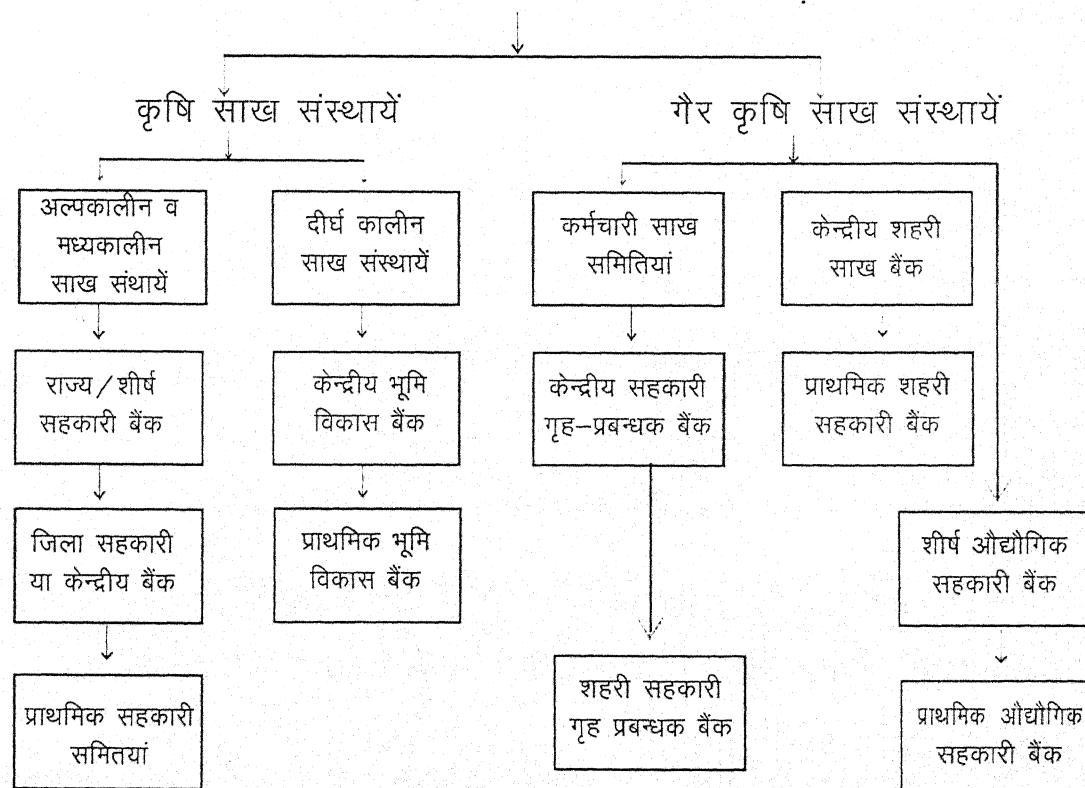
प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियां

"वह संस्था जो कृषिवित्त सम्बन्धी आवश्यक शर्तों को पूरा करती है, सहकारी समिति ही है, और इस बात को लगभग सभी कृषक देशों में स्वीकार किया जाता है।"

– रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की वैधानिक रिपोर्ट

सहकारिता आन्दोलन का इतिहास वास्तव में कृषि साख आन्दोलन का इतिहास ही है क्योंकि सम्पूर्ण ग्रामीण सहकारी साख व्यवस्था प्राथमिक साख समितियों पर आधारित है। यह समिति ही ग्राम–स्तर पर किसानों को साख–सुविधायें प्रदान करती है तथा व्यक्तियों को सेवा प्रदान करती है, समितियों को नहीं। इस प्रकार की समितियों के बारे में हेनरी वोल्फ के विचार निम्नांकित हैं :–

"सबसे नीची सतह पर यह स्थानीय समिति ही अकेली ईंट है जिस पर सम्पूर्ण ढांचे को खड़ा करने का विचार किया गया है। अतः सम्पूर्ण संरचना की सुरक्षा उसी पर निर्भर है।"

ठीक इसी प्रकार के उद्गार टाउनसेंड समिति ने भी प्राथमिक समितियों के महत्व को दर्शाते हुये व्यक्त किये हैं :–

"ये समितियां वह बुनियादी पत्थर है, जिस पर सहकारिता का महल निर्मित हुआ है।"

जैसा कि पूर्ववर्णित तालिका सं0 20 से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण कृषि साख के लिये अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋण उपलब्ध करवाने के लिये ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक साख समितियां, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा राज्य स्तर पर शीर्ष बैंक स्थापित किये गये हैं। इस प्रकार भारत में सहकारी साख ढांचा मुख्य रूप से ग्रामीण व शहरी निर्धन व कमजोर व्यक्तियों

को ऋण उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से ही निर्मित किया गया है जिससे निर्धन जनता स्वावलम्बी बन सके तथा सदस्यों में बचत एवं मित्तव्ययिता की भावना का विकास हो सके। सहकारी ढांचे को देखने से ज्ञात होता है कि विभिन्न स्तर पर ये साख संस्थायें एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, वस्तुतः ये संस्थायें प्रत्येक स्तर पर वैधानिक व वित्तीय मामलों में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हैं। समय समय पर शीर्ष संस्थाओं से वित्तीय सहायता प्राप्त होने के अतिरिक्त ये समितियां बाहरी स्रोतों से भी ऋण प्राप्त करके भी अपने सदस्यों व समितियों को ऋण प्रदान करती हैं।

सहकारी साख समितियों का एक वर्गीकृत ढांचा समितियों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों के अनुसार भी प्रस्तुत किया जा सकता है, क्योंकि जो भी साख समितियों द्वारा प्रदान की जाती है वह निश्चित उद्देश्यों के आपूर्ति के लिये दी जाती है, अतः अलग–अलग उद्देश्यों के कारण अनेक समितियों का स्वरूप या ढांचा ही सर्वथा भिन्न हो जाता है यथा मकान निर्माण व मरम्मत के लिये या फिर अनेक अनुत्पादक कार्यों या स्थानीय घरेलू कृषि पर आधारित कुटीर उद्योगों के विकासार्थ।

अतः विभिन्न उद्योग या कृषि कार्य यथा ट्रेक्टर खरीदने के लिये, पम्पिंग सेट लगवाने के लिये, कुयें खुदवाने के लिये, मजदूरी या लगान चुकता करने के लिये, खाद और बीज क्रय करने के लिये जो ऋण लिया जाता है वह :–

1. **कृषि कार्यों के लिये साख या ऋण** कहलाता है।
2. **इसी प्रकार गैर कृषि कार्यों के लिये साख या ऋण** –: जो मकान बनवाने, बैलगाड़ी या ट्रेक्टर या अन्य यातायात के उपकरणों को सुधारने के लिये लिया जाता है। इसमें ऋण या साख प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं वरन् परोक्ष रूप से कार्यक्षमता बढ़ाने हेतु लिये जाते है अन्यथा समय व अनाज आदि की हानि होती है।

3. **घरेलू व्यय की पूर्ति के लिये** :– यथा विवाह, पुराने ऋणों को चुकाने के लिये, मुकदमों के लिये भी प्रायः ऋण लिया जाता है जिसे अधिकाशतः अनुत्पादक की श्रेणी में रखा जाता है।

4. **अन्य उद्देश्य** :– यथा गहने खरीदने के लिये, चिकित्सा के लिये, साहूकारों या व्यापारियों के भुगतान के लिये।

इसीलिये प्राथमिक साख सहकारी समितियों का एक अन्य ढांचा या स्वरूप उनके साख के वितरण के उद्देश्यों के अनुसार भी प्रस्तुत किया जाता है। यथा :–

उद्देशानुसार सहकारी साख का वर्गीकृत ढांचा
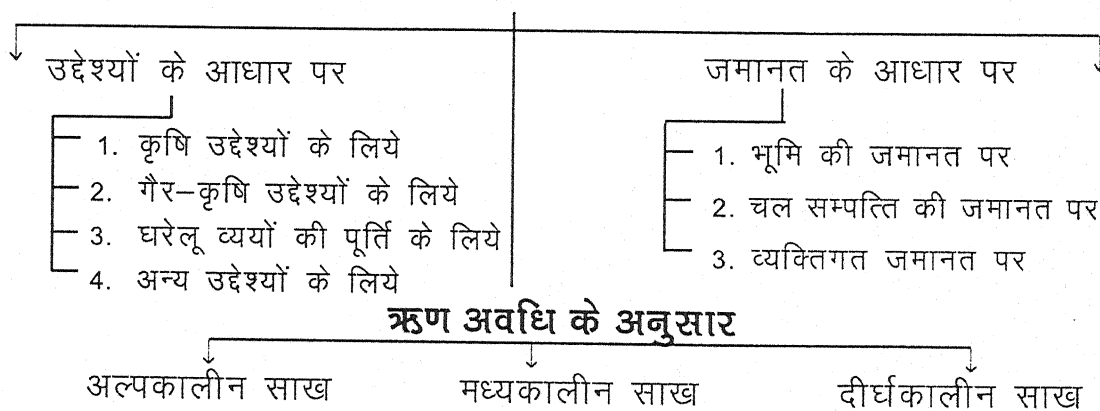
नोट :– अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति की रिपोर्ट के अनुसार :

भारत वर्ष में – 28 प्रतिशत उत्पादन के उद्देश्यों के लिये ऋण
कृषि क्षेत्र में – 50 प्रतिशत गैर उत्पादन कार्यों के लिये ऋण
22 प्रतिशत अनुत्पादक कार्यों के लिये ऋण लिया जाता है।

कृषि साख समितियों के उद्देश्य

प्राथमिक सहकारी साख समितियों का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को अल्पकालीन साख एक वर्ष के लिये व मध्यकालीन साख 1 वर्ष से 5 वर्ष तक के लिये प्रदान करना होता है। इसके अन्तर्गत समितियों द्वारा कृषि में काम आने वाली वस्तुयें जैसे – बीज, खाद, कीटनाशक दवाओं के लिये ऋण दिलाना तथा कृषि उत्पादन की विपणन व्यवस्था करना व फसल बोने से लेकर काटने तक आने वाले सभी खर्चों के लिये ऋण की व्यवस्था करना होता है। इसके साथ–साथ वे दैनिक उपभोग की वस्तुओं की पूर्ति का कार्य भी करती हैं। यह भी आशा की जाती है कि ये समितियों अपने सदस्यों को प्रशिक्षित करने, उचित परामर्श देने तथा सामाजिक कल्याण सम्बन्धी कार्य का उत्तरदायित्व भी निभायेंगी। इन समितियों का मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादन वृद्धि की योजनाओं का क्रियान्वन इस प्रकार करना होता है जिससे अपने सदस्यों के आर्थिक हितों की अभिवृद्धि कर सकें। इन सबके अतिरिक्त ये गॉव में शिक्षा का विकास करने, राजनैतिक चेतना जगाने, सदस्यों को सलाह देने, उनके दायित्व के प्रति सचेत करने व सदस्यों में मितव्ययिता की आदत डालने सम्बन्धी कार्य करती हैं। परन्तु यदि ये समितियां साख की व्यवस्था के अतिरिक्त अन्य कार्य करने लगती हैं तो इनका स्वरूप बदल जाता है और इन्हें बहुउद्देशीय समिति कहा जाने लगता है।

इस सम्बन्ध में डा0 ई0 एम0 हफ के अनुसार ''यदि साख समितियों के कार्यों में विवधता आती है, तो वे अपने उद्देश्य से भटक जायेंगी, अस्तु प्राथमिक साख समितियाँ से निकट भविष्य में सभी कार्यों की आशा करना अव्यवहारिक होगा''।

प्राथमिक सहकारी साख समिति के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुये, 1960 में 'सहकारी साख समिति' ने भी बारह सूत्रीय सुझाव प्रस्तुत करके

यही संकेत दिया था कि एक प्राथमिक साख समिति को कृषि के विकासार्थ ही विविध कार्य करने चाहिये। ऋण देना, उसका उचित प्रयोग उसकी सामयिक वसूली आदि लक्ष्यों को ही प्राथमिकता देनी चाहिये।

कृषि साख समितियों का कार्यक्षेत्र

'एक गॉव एक समिति' का प्रारम्भिक दृष्टिकोंण :-

जैसा कि हमें ज्ञात है कि प्रारम्भ में भारतवर्ष में रेफीशन आदर्श पर एक गाँव एक समिति का सिद्धान्त अपनाकर साख समितियों का गठन किया गया था। इस दृष्टिकोण की विशेषता यह थी कि ऐसा करने से समिति के सदस्य एक दूसरे से व्यक्तिगत रूप से परिचित होंगे, पारस्परिक घनिष्ठता तथा आपसी सहयोग व विश्वास में कार्य करेंगे। एक दूसरे के समीप होने के कारण एक दूसरे की आर्थिक आवश्कताओं व कठिनाइयों से पूर्णतया परिचित होंगे अतः एक दूसरे का मान–सम्मान करते हुये 'एक सबके लिये व सब एक के लिये' की भावना से सहयोग करेंगे। कालान्तर में 1930 के पश्चात अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, द्वितीय भारतीय क्राँग्रेस, एम0 डार्लिंग तथा पंडित नेहरू के कड़े विरोध के होते हुये भी, यह कह कर इस सिद्धान्त को तिलॉजलि दे दी गयी, कि एक गाँव एक समिति का सिद्धान्त बुरी तरह असफल हुआ है तथा कई गाँव मिलकर भी एक समिति बना सकते है यदि उन्हें आवागमन के साधन इस प्रकार सुलभ हों कि सदस्यों को आपस में सम्पर्क करने में कोई कठिनाई न हो। उनका तर्क यह था कि कई गाँव मिलकर एक समिति बनाने से पूंजी की कमी न रहेगी, व्यवसाय बढ़ेगा और सदस्यता भी बढ़ेगी। इसके विपरीत एक समिति एक गाँव के समर्थकों को यह आंशका थी कि यदि कई गाँव एक समिति के कार्यक्षेत्र में रखे गये, तो उनमें ईर्ष्या बढ़ेगी, प्रबन्ध व निरीक्षण करना कठिन हो जायेगा और वे न तो एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी रहेंगे न एक दूसरे की जानकारी ही होगी।

सहकारी साख पर मेहता समिति का मत था ''सहकारिता का पहलू उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि उसकी जीवन–योग्यता का प्रश्न। सहकारी समिति को अपने आपको एक व्यक्तिगत संस्था के रूप में विस्तृत करने का प्रयास नहीं करना चाहियें।''

अन्ततः इसी सन्दर्भ में, 'अखिल भारतीय ग्रामीण साख समीक्षा समिति' ने 1969 में सुझाव दिया कि एक कृषि साख समिति के आंचल में 3000 से अधिक जनसंख्या होने की अनुमति प्रदान की जायें तथा इस सम्बन्ध में कोई सीमा निर्धारित न की जाये। इस सम्बन्ध में यदि परिवहन के साधन संतोषजनक हों तो छः सात मील की दूरी भी किसान को असुविधाजनक न होगी। समिति के अनुसार दो मुख्य तथ्यों पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। समिति का कार्यालय ऐसे स्थान पर होना चाहिये, जिससे उर्वरक आदि का वितरण सरलता से हो सके। दूसरा यह है कि क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत न हो कि किसानों को उचित सुविधायें एवं सेवाओं को प्राप्त करने में कठिनाई हो।

इस सम्बन्ध में मेरा व्यक्तिगत अनुभव, जो कई गाँवों में जाने पर हुआ कि कई गाँव को मिलाकर जहाँ कही भी समिति कार्यरत है वहाँ एक अजीब प्रकार का बिखराव व सदस्यों में तटस्थता की भावना विद्यमान है। इसके विपरीत जहाँ समितियां एक गांव में एक समिति के सिद्धान्त पर बनी है, वहाँ पर इनमें वर्चस्व व व्यक्तिगत प्रभाव बहुत है, जिससे समितियों के अन्य सदस्य निष्क्रिय व सुप्त हैं। लाभ भी गांव के कुछ थोड़े से प्रभावशाली व्यक्तियों तक सिमट कर रह गया है। कुछ सदस्य तो संख्या पूरी करने के लिये हैं और कुछ राजनीतिक स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये, कुछ ग्राम प्रधान या समृद्ध ग्रामीणों के चमचों का काम करते हैं उन्हें समिति से कोई सरोकार नहीं न उसकी कार्यप्रणाली से कुछ भी लेना देना है।

कृषि साख समितियों का संगठन व पंजीयन

ग्रामीण साख समितियों की सदस्यता मात्र निजी व्यक्तियों के लिये ही खुली है। कोई संस्था इसकी सदस्य नहीं हो सकती। समिति की स्थापानार्थ कोई भी दस व्यक्ति मिलकर पंजीयन के लिये आवेदन प्रस्तुत कर सकते हैं परन्तु वे सभी सदस्य :—

1. कार्यक्षेत्र में पड़ने वाले गांव के निवासी हों।
2. एक ही व्यवसाय में संलग्न हों।
3. कम से कम 18 वर्ष की आयु के हों।
4. उनका चरित्र अच्छा हो।
5. वे पागल या अन्य किसी असाध्य रोग या दोष से इस प्रकार पीड़ित न हो जो समिति की ख्याति या कार्य—प्रगति को प्रभावित कर सकें।

साख समिति के पंजीयन हेतु उन कम से कम 10 सदस्यों को निर्धारित प्रपत्र पर सहकारी पंजीयन अधिकारी या उपपंजीयन अधिकारी के पास आवेदन प्रस्तुत करना पड़ता है। यदि पंजीयन अधिकारी या उप—पंजीयन अधिकारी इस बात से संतुष्ट हो जाते हैं कि समिति के उपनियम तथा कार्यकलाप संविधान के विरुद्ध नहीं हैं और समिति सफलतापूर्वक कार्य कर सकेगी, तो वे समिति का पंजीयन कर, समिति को पंजीयन प्रमाण पत्र दे देते हैं।

प्राथमिक कृषि साख समितियो की सदस्यता

प्राथमिक समितियों में खुली सदस्यता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। जो सदस्य उपरोक्त वर्णित आर्हताओं को पूर्ण करते हैं वे समिति के सदस्य बन सकते हैं। समिति की सदस्यता में मूल रूप से कृषक, शिल्पकार व छोटे व्यापारी ही होते हैं। एक समिति में कितने अधिकतम सदस्य हों इस पर मतभेद हैं।

(1) मैकलगन समिति के अनुसार "सदस्य संख्या 100 से अधिक नहीं होना चाहिये, अन्यथा प्रबन्ध संचालन में कठिनाई उत्पन्न हो सकती हैं।"

(2) जबकि सहकारी योजना समिति के विचार में, न्यूनतम सदस्य संख्या 50 होनी चाहिये।

(3) परन्तु ग्राम साख सर्वेक्षण समिति ने बड़े आकार की समितियों के गठन का सुझाव दिया था तथा छोटी अनार्थिक असफल होती समितियों के बड़ी एवं सफल साख समितियों में विलय का प्रस्ताव दिया था। तत्पश्चात्

(4) ग्रामीण साख की स्थायी सलाहकार समिति 1958 की सिफारिशों के अनुसार व मेहता सहकारी साख समिति 1960 के प्रतिवेदन के अनुरूप प्राथमिक सहकारी समितियों के पुनर्गठन का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, जिसका मूल उद्देश्य समितियों को स्वाबलम्बी बनाना था। इसके अतिरिक्त जो निर्बल समितियां थी उनको सुचारू रूप से चलाना था। इसी सम्बन्ध में

(5) 1964 में हैदराबाद में राज्य सहकारी मंत्रियों के सम्मेलन में दुर्बल समितियों को बन्द करने, कई समितियों को मिलाकर एक सशक्त समिति का गठन करने व सहकारी समितियों के पुनर्गठन पर विशेष जोर दिया गया। भारत वर्ष में प्राथमिक साख समितियों में पर्याप्त वृद्धि हुयी हैं

तालिका संख्या - २१

कृषि साख समितियाँ–प्रगति सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ (अखिल भारतीय स्तर पर)

वर्ष	समितियों की संख्या (लाखों में)	सदस्यता (लाखों में)	कार्यशील पूँजी (करोडों में)	परिधि में आये हुये गावों का प्रतिशत	परिधि में आयी प्रतिशत जनसंख्या
1950–51	1.15	51.44	40.96	–	7
1960–61	2.12	170.41	273.92	75.1	24
1968–69	1.68	302.25	746.10	92.0	34
1978–79	.958	530.00	3093.00	93.0	–
1980–81	.95	575.00	3511.00	96.2	–
1991–98	.96	1305.10	992.72	100.00	72

स्रोत :– सहकारिता – बी. एस. माथुर पृष्ठ संख्या 120

जनपद जालौन में प्राथमिक सहकारी समितियों की कार्यशील पूंजी की प्रवृत्ति
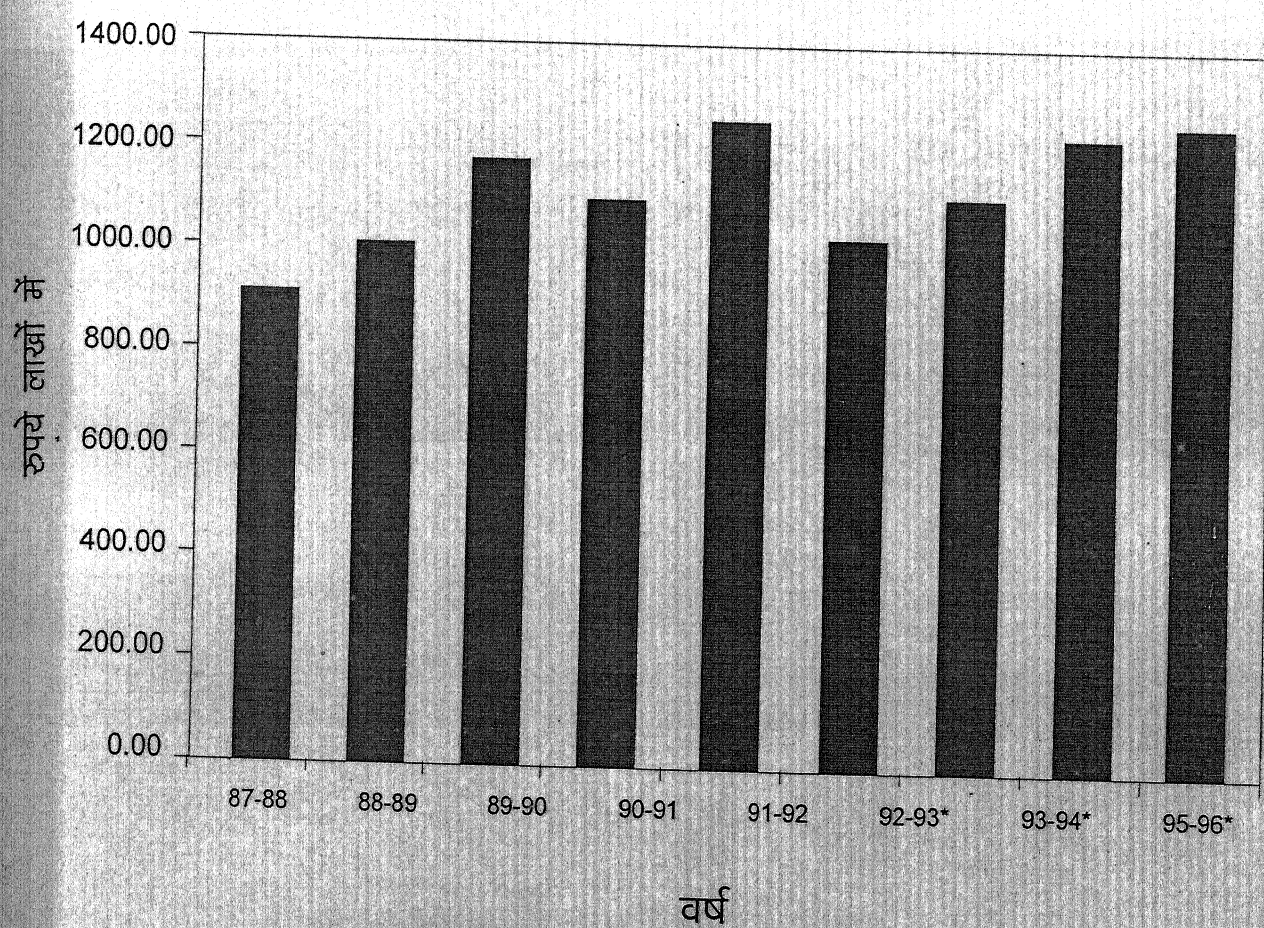
उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि प्रथम योजनान्तर्गत कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। समितियों की संख्या में जहाँ मात्र 39प्रतिशत वृद्धि हुई, सदस्यता में 50प्रतिशत वृद्धि दिखाई दी वहीं कार्यशील पूंजी लगभग दोगुनी हो गयी। साख समितियों की सर्वाधिक प्रगति द्वितीय योजनावधि में हुई जबकि समितियों की संख्या 1.15 लाख से बढ़कर 2.12 लाख हो गयी, सदस्य संख्या भी 15.44 लाख से बढ़ कर 107.41 लाख हो गयी, सहकारिता के परिध में 75 प्रतिशत गाँव आ गये और जनसंख्या भी 7 प्रतिशत से बढ़ कर तिगुनी से अधिक 24 प्रतिशत आ गयी। वर्षानुवर्ष चूंकि सहकारी समितियों में निर्बल समितियों को सबल व सफल साख समितियों के साथ जोड़ दिया गया, इस कारण से संगठन के प्रभाववश समितियों की संख्या में उत्तरोत्तर कमी आ गई,परन्तु ठीक इसके विपरीत सदस्य संख्या व पूंजी में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है व सहकारिता की परिधि में आये गाँव 1997–98 में शत प्रतिशत व लगभग 72 प्रतिशत ग्रामीण जनता सहकारी साख समितियों की सदस्य थी।

किन्तु यहाँ मैं यह जोड़ना चाहूँगां कि ऐसी सूचनायें मिली हैं कि प्राथमिक साख समितियों के कार्यक्षेत्र में अनेक ऐसे गाँव सम्मलित कर लिये गये हैं जिनको ये समितियाँ अपर्याप्त या नगण्य के बराबर सेवायें प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त यद्यपि शतप्रतिशत ग्राम सहकारिता की परिधि में सम्मलित कर लिये गये हैं परन्तु अनेक गाँव सुप्त समितियों के क्षेत्र में आते हैं।

प्राथमिक साख समितियों का दायित्व

प्राथमिक साख समितियों के दायित्व के सम्बन्ध में पर्याप्त मतान्तर रहा है। समय–समय पर गठित की गई समितियों व अध्ययन दलों ने परस्पर विरोधी विचार प्रकट किये गये हैं। अधिकांश का मत सीमित दायित्व के ही पक्ष में झुका दिखाई पड़ता है। यथा

असीमित दायित्व के पक्ष में	सीमित दायित्व के पक्ष में
(1) मैकलगन समिति,	(1) कृषि वित्त(गाडगिल) उपसमिति
(2) कृषि वित्त–उप समिति,	(2) अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति
(3) सहकारी योजना समिति,	(3) अखिल भारतीय ग्रामीण साख समीक्षा समिति,
	(4) सहकारी नीति सम्बन्ध कार्यकारी दल,
	(5) मद्रास सहकारिता समिति,

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने दो प्रकार की समितियाँ गठित करने का सुझाव दिया था। प्रथम कृषि बैंक, जो समिति दायित्व पर गठित किये जाँय तथा अपेक्षाकृत सम्पन्न किसानों को स्थायी सम्पत्ति पर साख प्रदान करें। परन्तु जो निर्धन या भूमिहीन कृषक हों, उनके लिये असीमित दायित्व पर ही साख समितियाँ गठित करना उचित होगा।

असीमित दायित्व का तात्पर्य :

असीमित दायित्व का तात्पर्य यह है कि समिति का प्रत्येक सदस्य, समिति के माध्यम से लिये गये ऋणों के प्रति अपनी पूर्ण जिम्मेदारी स्वीकार करता है। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य यह भी है कि यदि ऋण लेने वाला सदस्य किसी कारण से ऋण चुकाने में असमर्थ हो जाता है तो उस ऋण को समिति के अन्य सदस्यों से सम्मलित रूप से या किसी एक योग्य सदस्य से भी वसूल किया जा सकता है।

इस प्रकार असीमित दायित्व सहकारिता का मूल सिद्धान्त है तथा सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना तथा पारस्परिक सद्भाव व सतर्कता की भावना को बनाये रखता है, ऋण सरलता से सुलभ कराने में जमानत की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं, प्रबन्ध एवं निरीक्षण कार्य को अधिक कुशल बनाने में सहायक होता है और समापन में स्वाभावतः सम्भाव्य दायित्व होने से ऋण दाताओं व समिति के सदस्यों के विश्वास की पात्रता सम्भव बनाता है।

परन्तु ठीक इसके विपरीत, समर्थ व सम्पन्न व्यक्ति इसके सदस्य बनने से हिचकिचाते या दूर ही रहते हैं, अतः पूंजी की कमी प्रायः अनुभव की जाती है। सदस्यों से की गयी यह अपेक्षा कि वे जागरुक रहेगें व सतर्क रहेगें, व्यवहार में देखने में कम ही आती है तथा असीमित दायित्व निश्चय ही समिति के कार्यक्षेत्र के विस्तार में बाधक ही सिद्ध हुआ है।

संक्षेप में असीमित दायित्व से यदि एक ओर सामूहिक दायित्व भाव जागा है, साख क्षमता में वृद्धि सम्भव हुई है, सदस्यों में सतर्कता व सजगता की भावना जागृत हुई है, समितियां विघटित होने से बचाई जा सकी हैं, विनियोजिकों का विश्वास रहा है तथा सुरक्षित कोषों में भी वृद्धि अनुभव की गई हैं वहीं दूसरी ओर सम्पन्न व्यक्तियों के सहयोग से वंचित रहना पड़ा है, असीमित दायित्व निरर्थक प्रतिभूति सिद्ध हुई है, ईर्ष्या की दुरुभावना बढ़ी है, धोखे की सम्भावना अधिक रही है और अपव्यय की सम्भावना साख आन्दोलन के विकास में बाधक सिद्ध हुई है।

इन सभी कारणों से असीमित दायित्व एक श्रेयस्कर भावना व सिद्धान्त होते हुये भी, भारतवर्ष में सीमित दायित्व की समितियां स्थापित करने व असीमित दायित्व की समितियों को सीमित दायित्व की समितियों में परिवर्तित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। पंजाब, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, मेघालय, हिमांचल प्रदेश, नागालैण्ड में असीमित दायित्व वाली समितियां ही अधिकतर पाई जाती हैं जबकि शेष राज्यों में सीमित दायित्व अपनाया गया है। बिहार, जम्मूकाश्मीर, कर्नाटक, मध्यप्रदेश व मणिपुर में शतप्रतिशत सीमित दायित्व वाली साख समितियां हैं।

सीमित दायित्व वाली समितियों की प्रगति :–

वर्ष	संख्या
1950–51	27%
1955–56	41%
1960–61	60%
1965–66	70%
1973–74	77%
1981–82	95%

द्वितीय योजनाकाल में असीमित दायित्व वाली अधिकांश साख समितियाँ को सीमित दायित्व की समितियों में परिवर्तित किया गया। तब से अनार्थिक व हानि पर चल रही समितियों का समापन कर सीमित दायित्व की साख समितियों में ही परिणित कर दिया गया और अब तो रूचि व रूझान सीमित दायित्व की समितियों के ही पक्ष में हो गया है।

प्राथमिक साख समितियों की वित्त व्यवस्था

प्राथमिक कृषि साख समितियों को अपने सदस्यों को ऋण देने, प्रशासनिक व्ययों की पूर्ति तथा अन्य दैनिक कार्यकलापों के कार्यान्वयन हेतु वित्त की आवश्कता पड़ती है। इस हेतु समिति आन्तरिक एवं बाहरी साधनों से धन जुटाती है। एक प्राथमिक साख समिति के वित्तीय स्रोत निम्नांकित होते हैं :–

(1) प्रवेश शुल्क,

(2) अंश पूजी,

(3) सदस्यों तथा गैर सदस्यों की जमायें,

(4) प्राप्त ऋण या उधार ली गई पूँजी:–

(अ) केन्द्रिय सहकारी बैंक से,

जनपद जालौन में प्राथमिक सहकारी समितियों की जमा निधियों की प्रवृत्ति
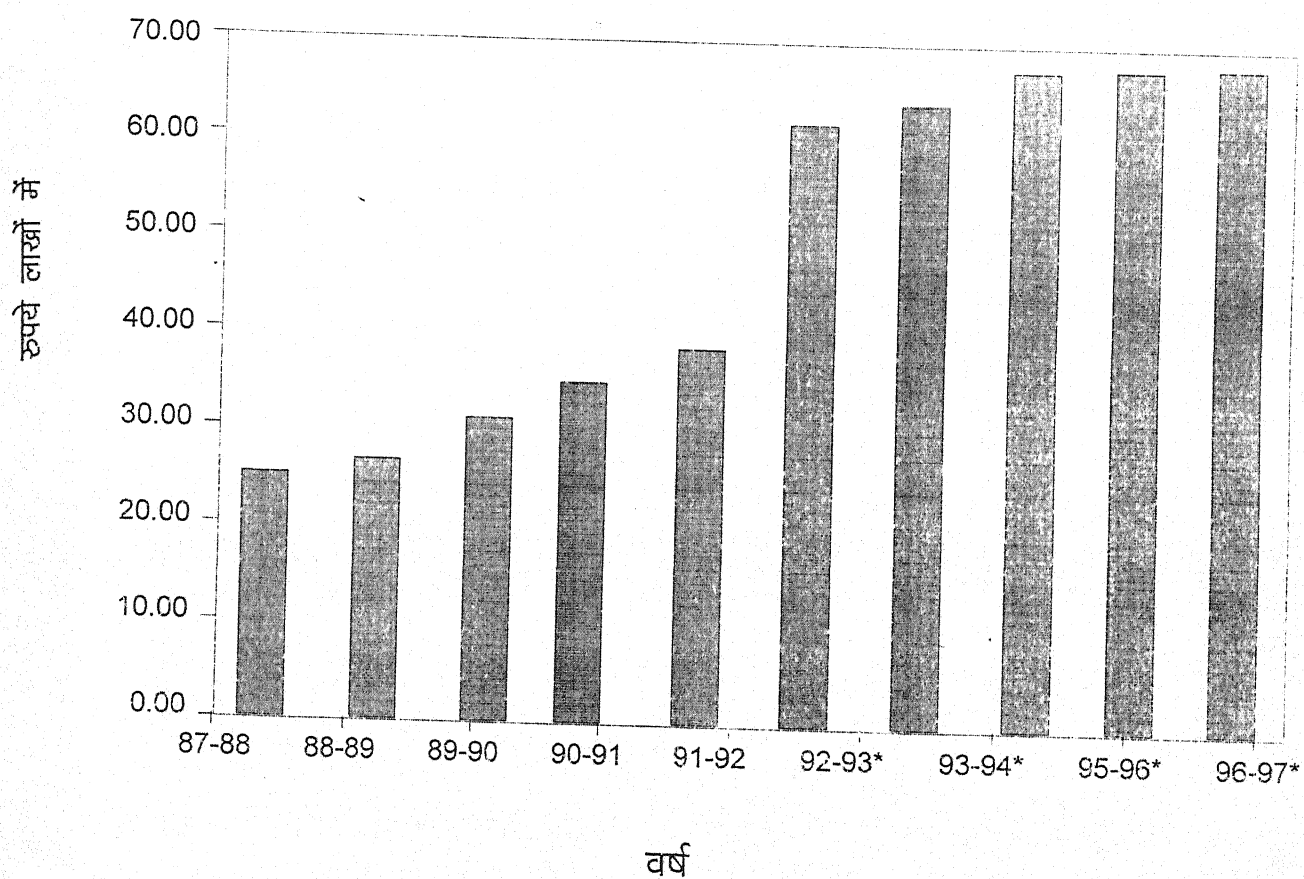
(ब) सरकार से,

(स) अन्य संस्थाओं से,

(5) संचित कोष व,

(6) भेंट तथा अनुदान

तालिका संख्या - २२

अखिल भारतीय स्तर पर कृषि साख समितियाँ—कार्यशील पूँजी के अंग एवं उनकी वृद्धि (करोड़ रुपये में)

वर्ष	अंश पूँजी	सुरक्षित कोष एवं अन्य कोष	जमा	उधार	कुल कार्यशील पूँजी
1950—51	8.40	8.86	4.48	19.21	40.95
1955—56	16.80	12.45	7.05	42.80	79.10
1960—65	57.75	13.80	14.59	183.78	273.92
1965—70	115.32	33.59	34.49	363.15	546.56
1973—74	271.06	82.01	89.27	918.16	1580.53
1978—79	466.43	151.53	216.38	1831.09	3092.66
1979—80	519.61	167.87	249.52	2148.18	3576.00
1994—95	1630.61	—	2867.76	—	15808.63
1997—98	992.72	197.07	3532.65	3972.00	17365.00

स्रोत :— सहकारिता — बी. एस. माथुर पृष्ठ संख्या 128

उपरोक्त तालिका से एक तथ्य स्पष्ट रूप से उजागर होता है कि 1950—51 में अंश पूंजी के अपेक्षाकृत उधार पूंजी में ही कार्यशील पूंजी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जबकि मैकलगन समिति, केन्द्रिय बैंकिंग जांच समिति तथा सहकारिता पर गठित समिति 1960 सभी एकमत से इस बात पर जोर दे रहीं थीं कि अंशपूंजी एकत्रित करने पर अधिक ध्यान देना आवश्यक ही नहीं वरन् हर दृष्टिकोण से लाभदायक भी रहेगा। दूसरी योजना से राज्य सरकार द्वारा अंशपूंजी में योगदान दिया जाने लगा और रिजर्व बैंक से ऋण

जनपद जालौन में प्राथमिक सहकारी समितियों द्वारा वितरित अल्पकालीन ऋणों की प्रवृति
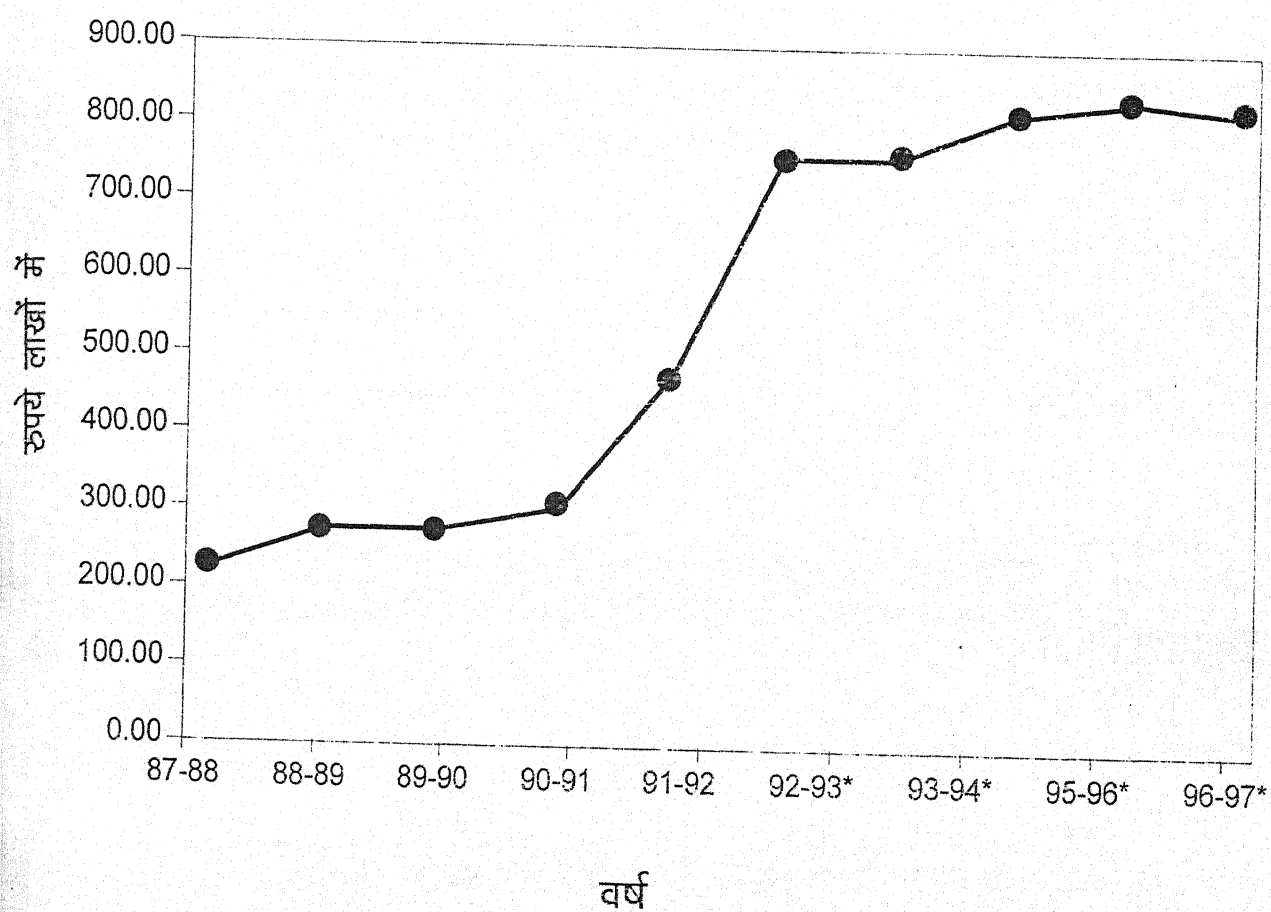
भी मिलने लगा। मेहता समिति के दृष्टिकोण में सरकार द्वारा अंशदान से समिति की ऋण देने की क्षमता बढ़ेगी, साधनों में वृद्धि होगी तथा समितियों की स्थिति सुदृढ़ होगी, सदस्यों में विश्वास की भावना जागृत होगी और समिति ग्रामीण बचतों को आकर्षित कर सकेगी, परन्तु इस सबके लिये प्राथमिक स्तर पर सरकार की भागीदारी अप्रत्यक्ष रूप से होनी चाहिये। कुछ विद्वानों के अनुसार इससे सरकारी हस्तक्षेप बढ़ जायेगा। आज का अनुभव भी इस बढ़े हुये हस्तक्षेप की ओर संकेत करता है। परन्तु मेरे दृष्टिकोण में राज्य की अंश पूंजी में भागीदारी समिति के सदस्यों में विश्वास की भावना जागृत करेगी और राज्य के सहयोग से समितियाँ स्वावलम्बन की ओर बढ़ सकेंगी।

इस प्रकार योजनात्मक अर्थव्यवस्था की नौ सीढ़ियों को पारकर 1950–51 से 1997–98 तक साख समितियों, का जो परिदृश्य उभरता है उसमें समितियों की संख्या में शनैः–शनैः प्रादेशिक स्तर पर वृद्धि हुई है। साथ ही अंश पूंजी में भी वृद्धि हुई है परन्तु उत्तर प्रदेश में यह वृद्धि अन्य कई प्रदेशों की अपेक्षा कम हुई है व सरकारी अनुदान, गैर सदस्यों की पूंजी व उधार पर निर्भरता अधिक बढ़ी है। लगभग यही स्थिति अग्रांकित जनपद जालौन की प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समितियां 31 मार्च 2000 पर दर्शाती हैं जिसमें 1999–2000 में समितियों की संख्या 1997–98 की तुलना में ही नहीं वरन् 1993–94 की तुलना में यथावत 68 रही है, व अंश पूंजी तथा कार्यशील पूंजी तथा उधार विशेषकर असदस्यों से अधिक महत्वपूर्ण रहा हैं और जिस प्रकार अखिल भारतीय स्तर पर 1997–98 में अंश पूंजी में गिरावट आई है उसी प्रकार जनपद स्तर पर भी यह प्रवृत्ति अंशतः देखने को मिलती है।

जनपद जालौन में प्राथमिक सहकारी समितियों द्वारा वितरित मध्यकालीन ऋणों की प्रवृति

वर्ष
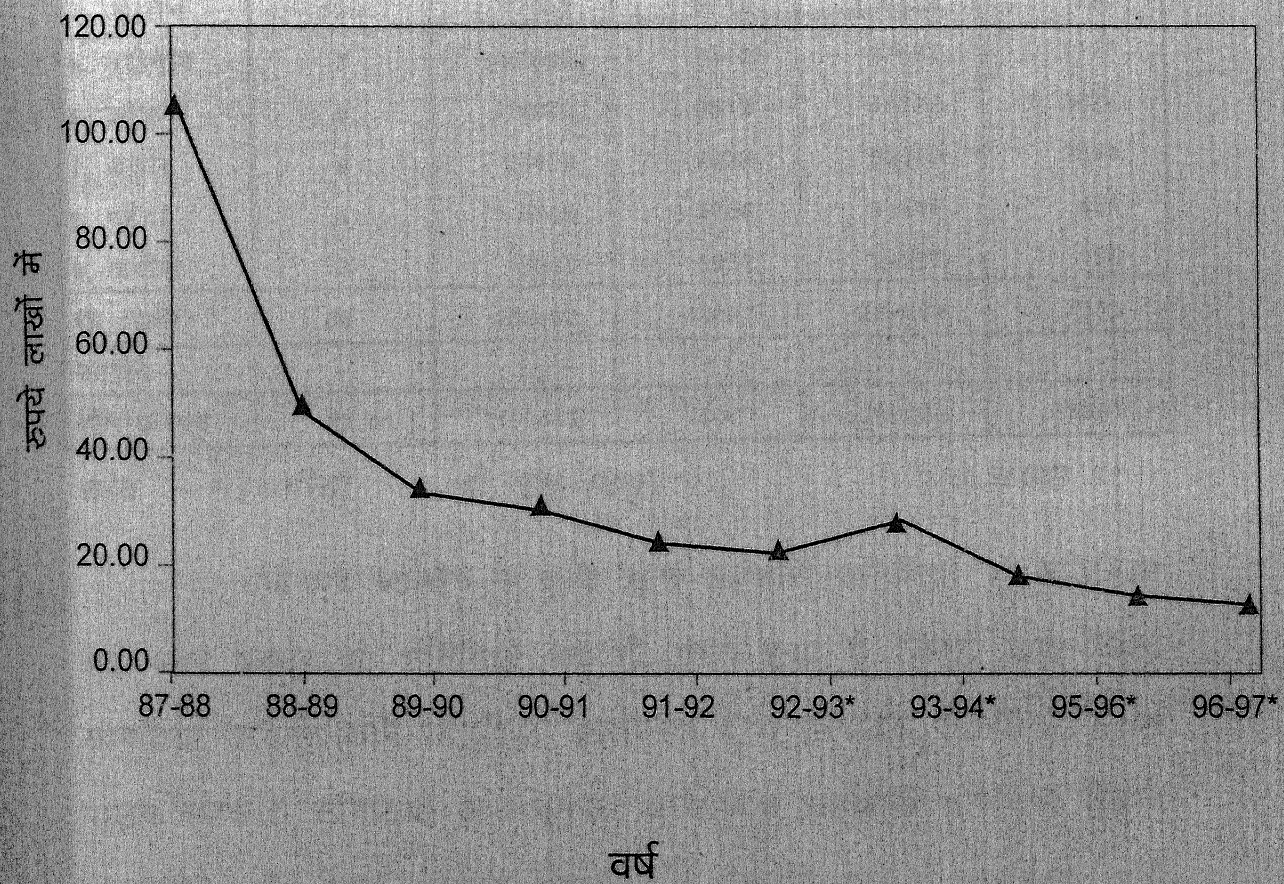
तालिका संख्या- २३

(31 मार्च 2000 पर)

जनपद जालौन में प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समितियों का खण्डवार विकास

वर्ष	संख्या	सदस्यों की संख्या(000रु0)	अंश पूँजी (000रु0)	कार्यशील पूँजी(000रु0)	जमाधनराशि (000रु0)
1997–98	68	154440	39655	256767	9252
1998–99	68	169008	45383	277802	177.60
1999–2000	68	166482	45007	289523	17341
विकास खण्डवार 1999–00					
1. रामपुरा	8	13965	2570	23526	840
2. कुठौंद	9	18535	3192	23302	6055
3. माधौगढ़	11	21236	3726	27234	1025
4. जालौन	12	17082	5742	38429	995
5. नदीगाँव	7	27685	7342	37687	1126
6. कौंच	5	16870	8513	48232	3824
7. डकोर	9	24039	7229	55370	2894
8. महेवा	4	8985	2736	11486	454
9. कदौरा	3	18085	3957	24257	128
योग –: ग्रामीण	68	166482	45007	289523	17341
नगरीय	–	–	–	–	–
योग जनपद	68	166482	45007	289523	17341

स्रोत :– सहकारिता – बी. एस. माथुर पृष्ठ संख्या 81

जनपद जालौन में कृषि ऋण सहकारी समितियों के अतिरिक्त कई अन्य प्रकार की समितियों का भी गठन हुआ है जिनमें क्रय–विक्रय समितियां, संयुक्त कृषि समितियां, प्रारम्भिक दुग्ध उत्पादक समितियाँ, मत्स्य पालन सहकारी समितियाँ तथा बुनकर औद्योगिक सहकारी समितियां विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका विवरण अग्रांकित है। यद्यपि चाहे वे प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समितियां हों या फिर विभिन्न प्रकार की अग्रांकित समितियां ही क्यों न हों वर्ष 1997 से ही नहीं वरन् इससे पहले 1993–94 से ही सभी की संख्या में पूर्णरूपेण स्थिरता दिखाई पड़ती है।

विभिन्न ग्रामींण क्षेत्रों का भ्रमण कर यह अनुभव हुआ कि अनेक अनछुये क्षेत्र ऐसे भी हैं जहां सहकारी ऋण तथा अन्य प्रकार की समितियां स्थापित करने की अति आवश्यकता व सम्भावनायें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं, परन्तु कुछ ग्रामींण क्षेत्र इतने पिछड़े हैं कि उन ग्रामांचलों में विकास की किरण अभी पहुँची ही नहीं। बीहड़, पिछड़े व अनिश्चयता भरे क्षेत्र यदि बाट जोह रहे हैं, तो सरकारी प्रयास एवं सहयता की। उनमें पीढ़ी दर पीढ़ी किसी न किसी प्रकार से उदर पूर्ति के अतिरिक्त कोई अन्य प्रकार की सूझ बूझ नहीं देखने को मिली, वे उसी पिछड़े जीवन के आदी हैं, उनमें शायद नया कुछ कर गुजरने की क्षमता व योग्यता ही नहीं है। ऐसे स्थलों में नये प्रयास करने की प्रबल सम्भावनाऐं हैं। प्रतीक्षा है तो किसी उदार या फिर सरकारी अथवा सहकारी प्रयास की।

तालिका संख्या - २४

जनपद में अन्य सहकारी समितियाँ

(करोड़ रुपये में)

क्रं. सं.	मद	1997–98		1998–99		1999–2000	
		सं0	सदस्यता	सं0	सदस्यता	सं0	सदस्यता
1.	क्रय विक्रय सहकारी समितियाँ	6	25,264	6	25,936	6	25204
2.	संयुक्त कृषि समितियाँ	16	250	16	250	16	250
3.	प्रारम्भिक दुग्ध उत्पा0 समि0	194	13,774	194	13,774	194	13,774
	कार्यशील पूंजी (000रु)		19,85,226		19,85,226		–
4.	मत्स्य सहकारी समिति	22	1249	22	1249	22	1249
	कार्यशील पूंजी (000रु)		1204		1204		–
5.	बुनकर प्रारम्भिक औद्योगिक	33	1500	33	1500	33	1500
	सहकारी समितियाँ		3300		3300		–
	कार्यशील पूंजी (000रु)						
6.	प्रारम्भिकऔद्योगिक	36	306	36	306	36	306
	सहकारी समितियाँ		490		490		–
	कार्यशील पूंजी (000रु)						

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित पृष्ठ संख्या 83–84 तालिका संख्या 33

प्राथमिक कृषि साख समितियों द्वारा ऋण व सम्बद्ध कार्यकलाप

हमारे देश में ऋण पूंजी ही सहकारी समितियों के वित्तीय स्रोतों का मुख्य आधार रही है। समितियां अपने जीवन काल से ही ऋण पर निर्भर रहती रहीं हैं। प्रारम्भिक कृषि साख समितियों की अंश–पूंजी में वृद्धि करने के लिये संघीय सहकारिता विभाग (यूनियन कोआपरेटिव डिपार्टमेन्ट) के अनुसार प्रारम्भ में समिति के सदस्य द्वारा लिये जाने वाले ऋण के 10 प्रतिशत के बराबर धन समिति की अंशपूंजी में दिया जाना चाहिये। दूसरे शब्दों में यदि किसी सदस्य को 100रुपये का ऋण लेना है तो वह 10 रुपये अंशपूंजी के रूप में पहले जमा करें। इसी प्रकार प्रत्येक 100 रुपये के लिये 10 रुपया अंश पूंजी रखना अनिवार्य रूप से स्वीकार किया गया हैं। परन्तु इस निर्धारित अनुपात को सभी राज्यों में व्यवहार में कार्यान्वित नहीं किया गया है। इसको और अधिक व्यवहारिक व सरल बनाने हेतु अंशपूंजी को किश्तों में जमां करने की सुविधा का सुझाव मेहता समिति ने दिया था परन्तु अधिकांश प्रदेशों में इस प्रकार भुगतान की सुविधा सुलभ नहीं है। अस्तु साख समितियों को अपने जीवन काल से ही ऋण पर निर्भर रहना पड़ता है। अधिकांश समितियों की साख अच्छी न होने के कारण उन्हें व्यापारिक बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण नहीं मिल पाते हैं। अतः ये केन्द्रिय सहकारी बैंकों व राज्य सरकारों से प्राप्त ऋणों पर ही निर्भर रहती हैं। जैसा कि पूर्वलिखित तालिकाओं से स्पष्ट हैं कि जहां समितियों की अंशपूंजी में शनैः–शनैः वृद्धि हुई है वहीं समितियों के ऋणों में तेजी से वृद्धि हो रही है।

ऋण सम्बन्धी कार्यकलाप

प्राथमिक कृषि साख समितियां अपने सदस्यों को कृषि एवं गैर कृषि कार्यों के लिये ऋण प्रदान करती हैं। इस पर व्याज की दर कम

रक्खी जाती है ताकि सदस्यों को सस्ती दार पर उचित समय पर समुचित ऋण उपलब्ध हो जाये और वे इसे अपने उत्पादन कार्यों में लगा सकें। ऋण प्रदान करने के लिये समिति सदस्यों की जमानत, चल, अचल सम्पत्तियों तथा व्यक्तिगत रूप में लेती है। सामान्य रूप से कृषि उपकरण क्रय करने व मजदूरी का भुगतान करने के लिये अल्पकालीन ऋण प्रदान किया जाता है जिसे उत्पादक ऋण कहा जाता है। कभी–कभी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये, यथा विवाह, पुराने ऋण चुकाने,श्राद्ध व उपभोग की वस्तुऐं क्रय करने के लिये भी ऋण प्रदान किया जाता है जिसे अनुत्पादक ऋण कहा जाता है।

उत्पादक कार्यों के लिये ऋण से कृषि उत्पादन वृद्धि सम्भव होती है और कृषक सरलता से ऋण के पुर्नभुगतान कर सकने में समर्थ होता है, जबकि गैर–कृषि कार्यों के लिये गये ऋण देने के बारे में दो प्रकार के विचार हैं। कुछ लोगों का मत है कि अनुत्पादक कार्यों के लिये ऋण देने से फिजूल खर्ची बढ़ेगी, पुनर्भुगतान की सम्भावनायें क्षीण होंगी, उत्तरदायित्वहीनता को प्रोत्साहन मिलेगा और यह संकमण अन्य सदस्यों को भी प्रभावित करेगा। अस्तु अनुत्पादक ऋणों को हतोत्साहित किया जाना चाहिये। ठीक इसके विपरीत कुछ विचारकों का मत है कि यदि गैर–कृषि कार्यों के लिये ऋण न दिये गये, तो स्वभावतः ग्रामीण कृषक या भूमिहीन महाजन या साहूकार से ऋण ले लेगें, जहाँ उनका शोषण प्रारम्भ हो जायेगा। अतः ग्रामीणों को कृषि एवं गैर–कृषि दोनों के लिये ऋण देना चाहिये, यदि उन्हें साहूकारों या महाजनों के चंगुल से बचाना है तो। हाँ इतना अवश्य ध्यान रक्खा जाये व परख लिया जाय कि ऋण सदस्यों की क्षमता के अनुरुप हों तथा उन पर ऋण का अनावश्यक बोझ न पड़े। इस प्रकार प्राथमिक सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों को अल्पकालीन एवं मध्यकालीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ऋण प्रदान कराती हैं।

ऋण नीति -

समिति की ऋण नीति इस प्रकार की होनी चाहिये जिससे जिन सदस्यों को वास्तव में आवश्यकता है। उन्हें सस्ते व पर्याप्त ऋण समय पर सुलभ हो सकें, परन्तु साथ में यह भी देखना होगा कि धन सुरक्षित रहे। इसके लिये ऋण के सदुपयोग पर सदैव समिति को ध्यान रखना होगा, तथा विश्वसनीय जमानत भी लेनी होगी, जिससे ऋणों का पुर्नभुगतान सरलता से सम्भव होगा। ऐसा भी व्यवहारिक होगा यदि ऋण की अदायिगी किश्तों में सदस्य द्वारा की जाती है इस बात का भी ध्यान रखा जाय कि जब तक पूर्व–ऋण चुकता न हो जाये तब तक दूसरा ऋण न दिया जाय।

ऐसा भी देखने में आया है कि प्रायः ऋण जिस उद्देश्य को लेकर लिया गया है उस पर खर्च नहीं किया जाता है। योजना आयोग के एक संगठन के अनुसार 28% ऋण का भाग निश्चित उद्देश्यों पर व्यय नहीं किया जाता तथा 23% गैर कृषि कार्यो पर व्यय कर दिया जाता है। इस प्रकार मात्र 50% के करीब ही वांछित उद्देश्यों की पूर्ति में लगाया जाता है। कृषि साख समितियों को जो भी ऋण कार्यशील पूंजी के लिये राज्य सहकारी बैकों, व्यापारिक बैकों, अन्य स्त्रोतों से प्राप्त होता है उसमें सर्वाधिक केन्द्रीय सहकारी बैंक अर्थात् जिला सहकारी बैंक से प्राप्त होता है। वित्तीय कठिनाइयों के साथ ही उपरोक्त बाहरी स्त्रोतों से ऋण लेने की व्यवस्था की जाती है। इससे समितियों को अपने वित्तीय साधन बढ़ाने में पर्याप्त सहायता सुलभ हो जाती है। सन् 1950–51 में इन समितियों द्वारा ऋण की मात्रा मात्र 19 करोड़ रुपये थी जो 1983–84 में बढ़कर 3164 करोड़ रुपये हो गई थी। एक अनुमान के आधार पर 1959–60 में अखिल भारतीय स्तर पर कुल सदस्य संख्या, तथा उधार लेने वाले सदस्यों की संख्या व उनका पारस्परिक अनुपात यह दर्शाता है कि इन समितियों के सदस्यों की एक बड़ी संख्या सहकारी वित्त का लाभ नहीं ले रही है।

तालिका संख्या-२५

कृषि साख समितियों से उधार लेने वाले सदस्यों का अनुपात

वर्ष	कुल सदस्य (हजारों में)	उधार लेने वाले सदस्य (हजारों में)	उधार लेने वाले सदस्यों का कुल सदस्यों से प्रतिशत
1959–60	14,423	8,530	57
1965–66	25,824	10,749	42
1973–74	34,956	13,038	37
1979–80	54,836	19,720	36
1997–98	74,316	39,670	47.2

स्त्रोत – पूर्वोलिखित पृष्ठ संख्या 137

उपर्युक्त तालिका सं0 25 का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश कृषक न केवल सहकारिता के क्षेत्र से बाहर हो गये हैं वरन् जो कृषक नये सदस्य बने भी हैं, उन्होंने सहकारी साख का पूर्ण लाभ नही उठाया है। इसका मूल कारण यह हैं, कि अधिकांश प्राथमिक साख समितियां आर्थिक दृष्टिकोण से सक्षम नहीं हो पाई हैं और उनके पास जो भी साधन हैं वह बढ़ती मांग की तुलना में अपेक्षाकृत कम हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से राज्यों में सदस्य समय से ऋण अदा नहीं कर पाये हैं अतः उन सदस्यों को ऋण देना बन्द कर दिया गया है। कहीं–कहीं पर अपर्याप्त जमानत होने के कारण भी ऋण वितरित नहीं किया जा सका है। इसके अतिरिक्त कृषि साख समितियों की एक बड़ी संख्या निष्क्रिय पड़ी हुई है।

इसी प्रकार की प्रवृत्ति जनपद की प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियों में भी देखने का मिली है, जहाँ उधार की कुल राशि, प्रति सदस्य एवं प्रति समिति की राशि में तेजी से वृद्धि हुई है। ऋण का लगभग एक चौथाई भाग अनुसूचित जाति के सदस्यों को अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋण के रुप में वितरित किया गया है। यद्यपि दिये गये ऋणों की राशि में वर्षानुवर्ष वृद्धि अनुभव की गई, तथापि वृद्धि की दर में निरन्तर उतार चढ़ाव होते रहे हैं।

अग्राकिंत तालिका में अल्पकालीन ऋण जो जनपद के विकास खण्ड़ों में वितरित किया गया है, त्रिवर्षीय स्थिति को स्पष्ट करता है।

तालिका संख्या-२६

जनपद जालौन में विकास खण्डवार
प्रारम्भिक कृषि ऋण समितियों का ऋण वितिरण (अल्पकालीन)

वर्ष	वर्ष में वितरित ऋण (000 रु0 में)
1997–98	13,46,17
1998–99	13,7,302
1999–2000	14,6,813
ऋण विवरण विकास खण्डवार – (1999–2000)	
1. रामपुरा	6,536
2. कुठौंन्द	8,900
3. माधौगढ़	20,846
4. जालौन	14,801
5. नदीगाँव	26,864
6. कोंच	24,083
7. डकोर	29,524
8. महेबा	2,895
9. कदौरा	12,364
योग ग्रामीण	**146813**
नगरीय	–
कुलयोग	**146813**

स्त्रोत– पूर्वोलिखित पृष्ठ संख्या तालिका संख्या 32

सर्वेक्षण के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख क्षेत्रीय सहकारी समितियों के अध्यक्षों तथा सचिवों से गहन वर्ता करने का अवसर प्राप्त हुआ तथा विषद विचार–विमर्श द्वारा कुछ लाभकारी अनुभव भी प्राप्त हुये हैं। वे समितियाँ जिनसे सर्वेक्षण सम्बन्धी जानकारी मिली निम्नलिखित हैं –

1. क्षेत्रीय सहकारी समिति लि. दिरावटी, जनपद जालौन,
   सविच, बरजोर सिंह, अध्यक्ष बृज कुमार सिंह पटेल।
2. क्षेत्रीय सहकारी समिति लि. तीतरा–खलीलपुर, जनपद जालौन,
   सचिव, विजय कुमार अग्रवाल, अध्यक्ष महेन्द्र सिंह परिहार।

3. क्षेत्रीय सहकारी समिति लि. इटौरा, जनपद जालौन,
सचिव पुरुषोत्तम दास गुप्ता, अध्यक्ष ध्रुवराम।

4. क्षेत्रीय सहकारी समिति लि. एट जनपद जालौन,
सचिव, रामकुमार त्रिपाठी, अध्यक्ष दीनानाथ निरंजन।

5. मड़ोरा क्षेत्रीय सहकारी समिति लि. पाठकपुरा उरई, जनपद जालौन,
सचिव, वीरेन्द्र कुमार पटैरिया, अध्यक्ष इन्द्रपाल सिंह राजपूत

6. क्षेत्रीय सहकार समिति लि. कदौरा, जनपद जालौन,
सचिव भोगीलाल, अध्यक्ष अनवर खाँ।

7. क्षेत्रीय सहकार समिति लि. रुरा सिरसा, जनपद जालौन,
सचिव रामनरेश दोहरे, अध्यक्ष जगराम सिंह।

8. क्षेत्रीय सहकार समिति लि. कुसमरा, जनपद जालौन,
सचिव विश्राम सिंह, अध्यक्ष श्रीमती विमलादेवी।

9. किसान सेवा सहकारी समिति लि. कुसमिलिया, जनपद जालौन,
प्रबन्ध निदेशक श्यामानारायण पाण्डेय, अध्यक्ष प्रदीप कुमार।

10. किसान सेवा सहकारी समिति लि. कैथेरी, जनपद जालौन,
सचिव दिनेश कुमार मिश्रा, अध्यक्ष अखिलेश प्रताप सिंह।

11. किसान सेवा सहकारी समिति लि. पिरौंना, जनपद जालौन,
प्रबन्धक निदेशक शान्ति प्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष देवकीशरण।

12. जुझारापुरा किसान सेवा सहकारी समिति लि. कोंच, जनपद जालौन,
सचिव राजाराम यादव, अध्यक्ष प्रतिपाल सिंह गुर्जर।

13. क्षेत्रीय सहकारी समिति लि. नदीगाँव, जनपद जालौन,
सचिव विश्राम सिंह, अपर जिला सहकारी अधिकारी अशोककुमार अवस्थी।

14. क्षेत्रीय सहकारी समिति लि. जैसारीकलां, जनपद जालौन,
सचिव हरचरण, अध्यक्ष राम शंकर त्रिपाठी।

15. क्षेत्रीय सहकारी समिति लि. कुकरगाँव, जनपद जालौन,

सचिव रामजी यादव, अध्यक्ष लक्ष्मणदास शिवहरे।

मेरे इन समितियों के सचिव, अध्यक्ष या प्रबन्धकों से मिलने के अनुभव बहुत सुखद नहीं रहें। एक तो प्रायः ये लोग समिति मेंअधिकतर अनुपस्थित मिले। मुझसे मिलने पर कुछ भी बताने में झिझक व मेरे प्रति संशय की भावना भी दिखी। लाख समझाने पर भी वे आसानी से कुछ बताने को तैयार न थे। निश्चित ही इनमें मुझे कहीं न कहीं दाल में काला नजर आया क्योंकि यदि सचिव, अध्यक्ष व प्रबन्धक मिलकर अपने स्वार्थ की पूर्ति कर रहे हैं तो उसी प्रकार शक यथार्थ में बदल जाता है जैसा कि अवध सहकारी बैंक के इन्हीं पदाधिकारियों ने निवेशक एवं कर्मचारियों से जुड़े महत्वपूर्ण दस्तावेजों को गायब कर दिया है। इस सम्बन्ध में विनियोजकों की ओर से उनके अध्यक्ष सहकारिता मंत्री व निबन्धक से मिले हैं तथा ज्ञापन देकर तीनों आरोपियों के खिलाफ कार्यवाही करने की मांग की है।

(दैनिक जागरण10/11/2002पृष्ठ 5)

ब्याज दर

सहकारी साख समितियों का उद्देश्य अपने सदस्यों को सस्ती साख सुविधायें उपलब्ध करवाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ब्याजदर कम होनी चाहिये। यदि ब्याज दर ऊँची रक्खी जाती है तो फिर समितियों और साहूकारों में अन्तर ही नहीं रह जायेगा और ब्याज दर ऊँची होने पर सदस्यों का शोषण होने लगेगा। यदि ब्याज दर नीची या बहुत कम हो तो ऋणों के दुरुपयोग की सम्भावना बढ़ जायेगी। ऐसे में समिति के सदस्य कम ब्याज दर पर ऋण लेकर उसे ऊँची दर पर अन्य व्यक्तियों को देने लगेगें। प्रायः जो ब्याज दर रहती है वह 10% से लेकर 13% के बीच रहती है, जबकि विभिन्न समितियों ने विभिन्न संस्थाओं के लिये निम्नाँकित ब्याज दरें रखने का सुझाव

दिया है –

1. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया – 2% वार्षिक
2. शीर्ष या राज्य सहकारी बैंक – 3% वार्षिक
3. केन्द्रीय सहकारी बैंक – 4% तथा वार्षिक
4. प्राथमिक साख समितियाँ – 6% वार्षिक

इसी सम्बन्ध में केन्द्रीय बैंकिग समिति का सुझाव था कि कृषि साख बहुत मंहगी नहीं होनी चाहियें, जब कि मैकलगन समिति के अनुसार, जब तक साख समिति पर्याप्त सुरक्षित कोष न बना ले ब्याज की दर में अनावश्यक कमी करना अनुचित होगा। इसी संदर्भ में गाडगिल समिति का विचार है कि वे समितियाँ जिनकी ब्याज दर ऊँची है उनको सरकारी सहायता मिलनी चाहिये, ताकि वे ब्याज दर नीची रख सके। इन सभी सुझावों से भिन्न मेहता समिति का सुझाव कि ब्याज दर का अन्तर इतना होना चाहिये कि समितियाँ अपना प्रबन्ध व्यय निकाल सकें तथा डूबते ऋणों के लिये प्रावधान कर सकें।

इस सम्बन्ध में विभिन्न सहकारी समितियों से सम्पर्क करने पर मेरे समझ में यह आया कि ब्याज की दर जो भी हो, ऊँची या नीची दोनों का महत्व अलग–अलग है। अन्तर यदि पड़ता है तो सदस्यों, अध्यक्ष व सचिवों की इच्छा और नियत से। दोनों दशाओं में समिति की सफलता का आधार मात्र ब्याज की दर नहीं है, वरन् यह सदस्यों की नेकनियती, लगन और समिति को नियमों के अनुरुप चलाने व उसे सफल बनाने के सार्थक और पारदर्शी प्रयत्नों पर अधिक निर्भर करती है। वैसे वर्तमान में चर्चित व ली जाने वाली 10% से 13% प्रतिशत के दरें निश्चित रुप से अधिक हैं। ये 6% से अधिक से अधिक 10% ही होनी चाहिये। इस प्रकार की इच्छा समितियों के अनेक सदस्यों की रही है। इसी सम्बन्ध में एक सुज्ञात तथ्य यह भी कि जनपद में चल रही अनेक समितियों की दशा अतिदुर्बल है, अस्तु सस्ती साख सुलभ कराने के जोश में

समिति के साथ–साथ अन्य सम्बद्ध सहकारी संस्थाओं के स्थायित्व एवं सुदृढ़ता को खतरे में न डाल दे। इसी संदर्भ में प्रो0 डी0 आर0 गाडगिल ने तो यहाँ तक आगाह किया है'' इस समय पर ब्याज दर में कमी करने का कोई भी प्रस्ताव अनुचित व असामयिक होगा और दुर्बल वर्गों को तथाकथित सस्ती साख से कोई आर्थिक लाभ न पहुँचेगा।''

इसी सन्दर्भ में नाबार्ड ने 25000 रु0 तक के लघुऋणों की ब्याज दर में 0.25 प्रतिशत की कटौती करने का निर्णय किया है। यह कटौती 11 नवम्बर 2002 से लागू हो जायेगी तथा इसके बाद से इन ऋणों पर ब्याज की दर 6.75%: रहेगी। यह कटौती रिजर्व बैंक द्वारा बैक दर में चौथाई प्रतिशत की कटौती ध्यान में रखकर की गई है। इसके अनुसार अब वाणिज्य बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों तथा सहकारी बैंको द्वारा सिंचाई, स्वयं–सहायतासमूह स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वराज योजना आदि के लिये दिये जाने वाले सभी ऋणों के लिये ब्याज दर 6.75% होगी। इसी प्रकार बैकों द्वारा कृषि मशीनीकरण, शीत् भण्डार, ग्रामीण गोदाम तथा कृषि व्यवसाय केन्द्र की स्थापना के लिये ऋण की ब्याज दर घटाकर 8.5% से 7.75% कर दी गई। इससे ग्रामीण क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा मिलेगा।

ऋण की प्रतिभूति (सिक्योरिटी फोर लोन)

सहकारिता का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि किसी भी सदस्य को साख या ऋण प्रदान करते समय वैयक्तिक प्रतिभूति ही लेनी चाहिये। ऋणी सदस्य के प्रतिभुओं (स्योरटीज़) को वैयक्तिक प्रतिभूति भी स्वीकारा जा सकता है पर सामन्यतया यह अनुभव हुआ कि अधिकांश ऋण भूमि सम्पत्ति के आधार पर ही दिये जाते रहे हैं, परिणामतः सीमान्त भूमि कृषक व भूमिहीन कृषक इस प्रकार के ऋण से वंचित रह गये हैं और अधिकतर ऋण या साख का लाभ बड़े कृषकों को ही जाता रहा है। इस सम्बन्ध में नियुक्त सहकारी

साख समिति और अखिल भारतीय साख समीक्षा समिति की 1969 की सिफारिशें लागू नहीं की गई, और कहीं कहीं 200 रु0 को छोड़कर 500 रु0 तक के ऋण पर भूमि प्रतिभूति ही लेने की प्रवृत्ति है, जब कि समीक्षा समिति ने सुझाव दिया था कि किसी भी किसान को या ग्रामीण को जो समिति का सदस्य है या बनना चाहता है, उसे एक निश्चित स्थापित पैमाने के आधार पर ही पूर्ण उत्पादक साख देने से इन्कार नहीं करना चाहिये गशर्ते वह वैयक्तिक प्रतिभूति प्रस्तुत कर सके।

ऋणों का पुनर्भगतान

कृषि साख समितियों द्वारा दिये गये ऋणों का पुनर्भुतान होना सहकारिता आन्दोलन की सफलता के लिये अति महत्वपूर्ण है, अन्यथा समिति के वित्तीय साधन समाप्त हों जायेगे और समिति को बन्द करना पड़ जायेगा। अतः ऋणों के नियमित भुगतान पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिये। इसके लिये देय तिथि ऐसी निर्धारित की जानी चाहिये, ताकि कृषक फसल बेचने के साथ ही ऋण का भुगतान कर सके। यदि ऋण वसूली को फसल से नही जोड़ा गया, तो अधिक सम्भावना है कि कृषक उपज से प्राप्त धन को अन्य कार्यों में खर्च कर देगा, और फिर ऋण का भुगतान न हो पायेगा। ऋण की वसूली में अकाल, अतिवृष्टि व अन्य कारणों से फसल नष्ट हो जाने पर ऋण के भुगतान में विलम्ब हो सकता है या ऋण सरल किश्तों में लिया जा सकता है परन्तु ऐसी दशा (या प्राकृतिक आपदा) में कृषक को ऋण वसूली के लिये बाध्य नहीं किया जाना चाहिये।

इस सम्बन्ध में एक तथ्य और स्मरण रखना चाहिये, कि पूर्व ऋण के भुगतान हुऐ बिना दुबारा ऋण नहीं दिया जाना चाहिये। प्रायः यह भी देखने में आया है कि कुछ समितियाँ आन्तरिक दबाब या प्रभाव में आकर खातों में पुराने ऋण का भुगतान दिखाकर नया ऋण प्रदान कर देती हैं। इस प्रवृति पर

अंकुश लगाना अति आवश्यक है अन्यथा या तो अतिदेय (ओवरड्यूज) ऋणों की समस्या खड़ी हो जायेगी या फिर समिति बंद हो जायेगी, और सहकारिता के मूल सिद्धान्तों का हनन होगा तथा ''सहकारिता को वित्तीय एवं शैक्षणिक दृष्टि से एक भ्रम ही समझा जायेगा।''

अतिदेय (ओवरड्यूज)

हमारे देश में शीर्ष स्तर पर, प्रादेशिक स्तर पर या फिर जनपद स्तर व ग्रामीण क्षेत्रों में जो भी सहकारी संस्थायें कार्यरत हैं उन सभी में कहीं–कहीं थोड़ी और कहीं–कहीं गम्भीर स्तर पर अतिदेय की समस्या देखने को मिलती है। ग्रामीण स्तर पर कृषक ऋण ले तो लेते हैं किन्तु उनके पुनर्भुगतान में लापरवाही बरतते हैं और यह प्रवृत्ति वर्षानुवर्ष हर जगह बढ़ती ही जा रही है। यद्यपि केन्द्रीय बैंकों में स्थायीकरण व्यवस्थाओं का प्रावधान है फिर भी अतिदेय तेजी से बढ़ते चले गये हैं। अखिल भारतीय ग्रामीण साख समीक्षा समिति ने अनेक राज्यों में बढ़ते हुये अतिदेयों से उत्पन्न गम्भीर एवं नियंत्रण से बाहर जाती स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित किया है। समस्या की गम्भीरता इस तथ्य से प्रकट है कि देश के कई भागों में सहकारी साख की सम्पूर्ण संरचना इन दीर्घ अतिदेयों के कारण जड़ हो गई है। यथा '' अहमदाबाद (गुजरात) का माधवपुरा मर्केन्टाइल कोआपरेटिव बैंक, हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) के कृषि बैंक तथा लखनऊ उत्तर प्रदेश का अवध सहकारी बैंक कई ऐसे बैंक हैं जिन पर संकट के आदल छाये हुये हैं। इनके निवेशक हैरान और परेशान हैं। सबसे बड़ा मामला इस वक्त माधवपुरा सहकारी बैंक का है। इस बैंक में 12 अरब रुपये से अधिक रुपया लोगों का जमां है, जो फँस गया है।'' (सहकारिता विशेषांक अक्टूबर–नवम्बर 2002 पृष्ठ संख्या 70) उत्तर प्रदेश के 50 केन्द्रीय सहकारी बैकों में से लगभग 30 केन्द्रीय सहकारी बैंकों की हालत अति असंतोषजनक है जिस पर रिजर्व बैंक आफॅ इण्डिया की सख्त कार्यवाही

की तलवार लटक रही है। गोण्डा सहकारी बैंक इसी प्रकार के अतिदेयों का शिकार होने के कारण बन्द पड़ा है। जो भी शाखायें घाटे पर चल रही है, रिजर्व बैंक उनके साथ कड़ाई कर रहा है ताकि वित्तीय अनुशासन बना रहें, साथ–साथ निवेशकों का भरोसा बना रहे। इसके लिये यह भी नितान्त आवश्यक है कि सहकारी बैंकों में पारदर्शिता बनी रहे। देश के विकास में केन्द्रीय सहकारी बैंकों का विशेष योगदान है। ये सहकारी बैंक ही हैं जो प्राथमिक साख समितियों के माध्यम से देश के कृषकों को 80% ऋण दिलवा रहे हैं, राष्ट्रीयकृत बैंक तो 20% से 30% ही ऋण उपलब्ध करा रहे हैं, वह भी सीमान्त या लधुकृषकों को नहीं वरन् बड़े किसानों को जबकि वास्तविक साख सहायता के हकदार सीमान्त व लधुकृषक ही हैं न कि बड़े किसान। अतिदेय की यही अंसंतोषजनक स्थिति अखिल भारतीय स्तर पर भी देखने को मिलती है।

तालिका नम्बर-२७

प्राथमिक कृषि साख समितियों की वर्तमान स्थिति 1997

1.	कुल संख्या	67,201
3.	निष्क्रिय समितियाँ	840
4.	सदस्यों की संख्या	99,200
5.	कार्यशील पूंजी	18,212 करोड़ रु0
6.	स्वाधिकृत निधियां	2,638 करोड़ रु0
7.	जमायें	7000 करोड़ रु0
8.	अग्रिम :–	
	1. अल्पकालीन ऋण	
	2. मध्यकालीन ऋण	3,720 करोड़ रु0
9.	बकाया ऋण :–	
	अल्पकालीन	3,212 करोड़ रु0
	दीर्धकालीन / मध्यकालीन	3,000 करोड़ रु0
10.	अतिदेय :–	
	अल्पकालीन	2,910 करोड़ रु0
	मध्य / दीर्धकालीन	900 करोड़ रु0

स्त्रोत – पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 163*

लाभ विवरण

सहकारी समितियां अधिनियम के अनुसार प्रत्येक समिति अपने लाभ का 25% भाग संचित कोष में रखने के पश्चात् शेष लाभ को सदस्यों द्वारा किये गये कार्यकलापों के आधार पर सदस्यों में वितरित कर देती है। असीमित दायित्व वाली समितियाँ लाभ का वितरण नहीं कर सकती हैं। इन समितियों को लाभ वितरण से पूर्व राज्य सरकार से अनुमति लेनी होती है। सरकारी अधिनियम के अनुसार रजिस्ट्रार की पूर्व अनुमति से अपने लाभ का 25% भाग सुरक्षित कोष में रखने के पश्चात् 10% भाग जनहित कार्यों में लगा सकती हैं।

सहकारी समितियों का प्रबन्ध

सहकारी समितियों का प्रबन्ध प्रजातांन्त्रिक आधार पर तथा 'एक व्यक्ति एक मत' के सिद्धांन्त पर आधारित है। समितियों के प्रबन्ध संचालन हेतु

(अ) सामान्य सभा तथा (ब) प्रबन्ध समिति का गठन किया जाता है।

(अ) सामान्य सभा -:

सामान्य सभा समिति के प्रबन्ध की सर्वोच्च संस्था है। समिति का प्रत्येक सदस्य अनिवार्यता इसका सदस्य होता है। इसकी वर्ष में कम से कम एक बैठक आवश्यक होती है। इसमें नीति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं। सामान्य सभा में समिति के उपनियमों में संशोधन, पदाधिकारियों का चुनाव, वार्षिक खातों पर विचार, लाभ वितरण का आधार निश्चित करना, बाहरी ऋणों की सीमायें निर्धारित करना, ब्याज की दरों का निर्धारण, नये सदस्यों के प्रवेश की अनुमति, ऋणों की वापसी की अवधि तथा अंकेक्षण व समय–समय पर गठित कार्यदल, कमीशन या कमेटियों के सुझावों पर विचार करना आदि कार्य किये जाते हैं।

(ब) प्रबन्ध समिति -:

समिति के सभी सदस्य तो नित्य नहीं मिल सकते, अस्तु दिन प्रतिदिन के कार्यों के निपटाने के लिये 5 से 9 सदस्यों वाली एक समिति का गठन किया जाता है। इसका चयन सामान्य सभा में किया जाता है। यह समिति कुशलता, ईमानदारी व योग्यता से साख समिति का संचालन करती है। अस्तु इस समिति में योग्य व्यक्ति ही होना चाहिये। प्रबन्ध समिति में एक अध्यक्ष या सभापति, एक सचिव व एक कोषाध्यक्ष होता है। कहीं कहीं उप सभापति, संयुक्त सचिव की भी नियुक्ति की जाती है। इन सभी प्रबन्ध समितियों में सचिव पूर्णकालिक वैतनिक कर्मचारी होता है।

मेरा व्यक्तिगत अनुभव

प्रायः साख समितियाँ सरकारी नीति के अन्तर्गत बनाई जाती हैं अतः ये कहने को सहकारी समितियाँ होती हैं परन्तु सरकारी कार्यालय की तरह कार्य करती हैं। ग्रामींण लोगों में शिक्षा का आभाव होता है, उनके अपने अधिकार व मिलने वाली सुविधाओं की उन्हें सही जानकारी ही नहीं होती एवं उनमें स्व–प्रेरणा का सर्वथा आभाव दिखाई देता है। जब कोई सहकारिता विभाग का इन्सपेक्टर गाँव में जाता हैं व उन्हें समझाता है कि अमुक–अमुक प्रकार से उन्हें मौद्रिक लाभ धर बैठे मिल जायेगा, तो फिर इन्सपेक्टर के ही प्रयास से प्रायः समिति का गठन हो जाता है। इन्सपेक्टर के ऊपर बैठे सहकारिता अधिकारी के आदेशानुसार सब कुछ किया जाता है। इस प्रकार कागजी खानापूरी अधिक और सहकारिता की भावनां से प्रेरित समिति का निर्माण कम ही देखने को मिलता है। कहीं–कहीं गाँव के दंबग या प्रभावशाली लोग इस प्रकार की समितियों का गठन अपने स्वार्थ सिद्ध के लिये करते हैं और वे ही प्रबन्ध समिति के सभापति या सचिव बन जाते हैं या फिर उनके

रिश्तेदार या लग्गू–भग्गू समिति के सदस्य बना लिये जाते हैं। इस प्रकार सहकारिता अधिकारी भी खुश कि उनका समिति बनाने का निर्धारित लक्ष्य व दायित्व पूरा हो गया और दूसरी ओर गाँव के सबल व प्रभावशाली व्यक्तियों का भी काम पूरा हो जाता है और 'हर्रा लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाय' की कहावत अक्सर सहकारी साख समितियों के निर्माण में देखने को मिल जाती है। साथ–साथ चुनावी दाँव पेंच के चक्कर में अशिक्षित, निर्धन, बेसहारा लोगों को सिर्फ मतदान के समय प्रस्तुत कर नियमावली के नियमों को पूरा करने का नाटक पूरा किया जाता है।

समितियों का अंकेक्षण, पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण

सहकारी साख आन्दोलन के स्वस्थ एवं स्वाभाविक विकासार्थ पर्याप्त अंकेक्षण की व्यवस्था अति आवश्यक है। सहकारी साख समितियों का अंकेक्षण का कार्य राज्य के निबन्धक, सहकारी समितियों द्वारा या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। इसकी अनिवार्यता इसलिये और अधिक बढ़ जाती है क्योंकि समितियों के अधिकांश सदस्य अशिक्षित व समिति के कार्यकलापों से अनभिज्ञ होते हैं। उन लोगों के सामने अनेकानेक ऐसी समस्यायें आती रहती हैं जिन्हें सुलझाना आसान नहीं होता है। रूपये के लेन देन में लालच की सम्भावनायें अधिक रहती हैं, अतः समिति के पदाधिकारियों द्वारा हिसाब किताब में गड़बड़ी करने की सम्भावनाओं को रोकने के लिये अंकेक्षण या संप्रेक्षण नितान्त आवश्यक है, जो प्रतिवर्ष संवैधानिक दायित्व को निर्वाह करने हेतु निबन्धक को या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति को करना पड़ता है। परन्तु अनुभव यही संकेत देता है कि सहकारी आन्दोलन के विकासार्थ अंकेक्षण का महत्व होते हुये सहकारी अंकेक्षण की स्थिति संतोषजनक नहीं रहीं है। अंकेक्षकों या संप्रेक्षकों की संख्या कम होने के कारण वह जटिल व तकनीकी कार्यों को सही ढंग से इसलिये भी करने में असमर्थ रहे, क्योंकि

समिति के पदाधिकारी नियमावली की कार्यविधि से प्रशिक्षित न होने के कारण मौद्रिक खाते व उनका लेखा जोखा सही ढंग से प्रस्तुत नहीं कर सके। इन सभी स्थितियों के कारण प्रायः बहुत सी समितियों का वार्षिक अंकेक्षण ही नही हो पाता जबकि निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अंकेक्षण व संप्रेक्षण न केवल कुशल, वरन् वह तत्कालिक भी होना चाहिये।

उपर्युक्त सभी तथ्य और तर्क का सारांश व निष्कर्ष यही निकलता है कि सहकारिता आन्दोलन ने जो भी प्रगति की है तथा उसके ढाँचे में जो भी कमियाँ रही हैं इनके कारण प्रगति में अनेक अवरोध उत्पन्न हुये हैं और जो जागरुकता ग्रामीणों में आनी चाहिये वह आशा के अनुरुप नहीं आयी है। आन्दोलन 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' की कथनी को आज भी पूर्णतया चरितार्थ करता है। सरकार की ओर से अगणित धनराशि उँड़ेली गई और उड़ेली जा रही है, बृहत पैमाने पर सहकारिता विभाग हजारों अधिकारियों व कर्मचारियों की अमूल्य सेवायें तथा उनको आवश्यक निर्देशन अग्रसारित कर रहा है। समय–समय पर कार्यदल, समितियाँ व आयोग गठित किये जा रहे हैं जो पर होने वाली प्रगति का अवलोकन कर भावी सफलता हेतु सुझाव प्रस्तुत कर रहे हैं परन्तु 'ढाक के तीन पात' की स्थिति ही अन्ततः दिखलायी दे रही है। मैंने अनेक पुस्तकीय सुझाव प्रस्तुत न कर भूतकाल से हटकर कुछ मौलिक सुझाव प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, जिससे कृषि साख समितियों का जो ढाँचा या स्वरूप है वह छिन्न–भिन्न व विदीर्ण न होकर सुव्यविस्थत व संयमित गति से विकसित हो तथा सफलता का नया अध्याय ज़ोड़ा जा सके।

सर्वप्रथम कृषि साख समितियाँ की ऋण–नीति में अमूल–चूल परिवर्तन व सुधार इस प्रकार किये जायं कि छोटे किसानों व कमजोर वर्गों के लिये लचीली ऋण नीति से उन्हें पर्याप्त ऋण मिल सकें। किसानों को प्रायः इनकी जरुरत पर ऋण नहीं मिल पाता क्योंकि समिति के पदाधिकारी की सोच

यह होती है कि गरीबों को ऋण देने से रकम डूब जाने का अंदेशा रहता हैं और जमानत के अभाव में इन लोगों को ऋण नहीं मिल पाता। इसलिये सरकार को डूबते ऋण के लिये कोष बनाना चाहिये या इस मद में विशेष सहायता प्रदान करनी चाहिये। इससे समिति के कार्यकलापों पर भी विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा, और भूमिहीन, बेरोजगार व छोटे किसानों को ऋण उस कोष में से मिल सकेगा।

इस ऋण कोष योजना को सफल बनाने हेतु –:

1. फसल ऋण प्रणाली को कठोरता से लागू किया जाना चाहिये।
2. ऋण देने की प्रक्रिया सरल, बोधगम्य तथा कम से कम समय लगने वाली होनी चाहिये।
3. ऋण देने की औपचाकरतिाओं को कम किया जाना चाहिये।
4. मौसम की अनुकूलता के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिये।
5. अधिकतर ऋण कृषि–सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओं के रूप में दिया जाना चाहिये व थोड़ी सी नकद रकम भी देनी चाहिये।
6. सदस्यों की आवश्यकताओं का एक पूर्वानुमान होना चाहिये।
7. सदस्यों के अधिकतम वित्त–सीमा का निर्धारण करते समय उनकी पुनर्भुगतान क्षमता को ध्यान रखना चाहिये।
8. ऋण के उचित उपयोग की जाँच होनी चाहिये।
9. यथासम्भव वे समितियाँ जो सुचारु रूप से सफल कार्य संचालन कर रही हैं उनको ग्रामींण बैंकों के रुप में विकसित करना चाहिये। इससे समितियों को विभिन्न प्रकार की जमायें आकर्षित करने में सफलता मिलेगी तथा वे निर्धन वर्ग के कृषकों व ग्रामीणों को ऋण सम्बन्धी सुविधायें सुलभ करा सकेंगीं। ऐसी समितियों को नाबार्ड के नियंत्रण में कार्य करना चाहिये।

10. प्राथमिक समितियों को अतिदेय ऋणों की बढ़ी हुई मात्रा को नियंत्रित करने के लिये विशेष ध्यान देना चाहिये।

11. हानि पर चलने वाली समितियों को तुरन्त ही विघटित कर उनका पुनर्गठन कर देना चाहिये।

12. ग्रामींण क्षेत्र में बैकों की शाखा–विस्तार की नीति का अनुसरण ऋण वितरण कार्य में गति बढ़ाने में सहायक होगा।

13. एक और महत्वपूर्ण सुझाव उत्पादन–साख की मंजूरी का हो सकता है, जिसके अन्तर्गत समिति के सदस्य की उत्पादन क्षमता को ध्यान में रखकर ऋण प्राप्त करने का अधिकार स्वतः मिल जाये व उसे आवेदन आदि की जटिल प्रक्रिया से न गुजरना पड़े। ऐसा अधिकार वर्षानुवर्ष दिया जा सकता है। यह अधिकार उसे पिछले वर्ष की साख–सीमा के 75% के आधार पर पुनः दूसरी वर्ष दिया जा सकता है। इसी के साथ –साथ जो समिति इस प्रकार का अधिकार अपने सदस्यों को देती है उसे भी केन्द्रीय बैंक से उतनी साख स्वतः प्राप्त हो जानी चाहिये।

जिला सहकारी बैंक या केन्द्रीय सहकारी बैंक

''सहकारी साख के ढ़ाँचे में केन्द्रीय सहकारी बैंकों, (जिन्हें हम जिला सहकारी बैंक के नाम से भी जानते हैं), की स्थिति परम महत्व की है। ये राज्य सहकारी बैंक और आधार स्तरीय प्राथमिक कृषि समितियों के मध्य महत्वपूर्ण सम्पर्क कड़ी के रुप में कार्य करतें हैं।''

–अखिल भारतीय ग्रामींण साख सर्वेक्षण समिति

केन्द्रीय बैंक से तात्पर्य -:

एक निर्दिष्ट क्षेत्र में पड़ने वाली सहकारी प्राथमिक समितियाँ जब एक केन्द्रीय समिति के रुप में आपस में सम्बद्ध हो जाती है तो उसे केन्द्रीय बैंक कहते है। आजकल जिला सहकारी बैंक का प्रयोग भी केन्द्रीय सहकारी बैंक के पर्याय के रुप में किया जाने लगा है, क्योंकि केन्द्रीय बैंक की परिधि एक जिला और उसके अन्तर्गत कार्यरत सभी प्राथमिक सहकारी समितियाँ होती हैं। केन्द्रीय बैंक को हम 'बैकिग संघ' के नाम से भी सम्बोधित करते हैं. अन्तर इतना है कि केन्द्रीय बैंक शब्द का प्रयोग तब किया जाता है जब बैंक की सदस्यता सिर्फ समितियों तक ही सीमित न हो वरन् इसमें व्यक्तिगत सदस्यता भी हो, जैसा कि जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई है, जो शोध का विषय भी है। इसे 'बैंकिग संघ' की संज्ञा तब प्रदान की जाती है जब सिर्फ प्राथमिक समितियां ही इसकी सदस्य हों और व्यक्तिगत सदस्य न हों।

जैसा कि प्रारम्भिक पृष्ठों में वर्णित किया जा चुका है कि हमारे देश के प्रायः सभी राज्यों में सहकारी आन्दोलन का ढाँचा स्तूपाकार या पिरामिडाकार है। इस ढ़ाँचे में शीर्ष स्तर पर प्रदेश में राज्य–स्तर बैंक या शीर्ष बैंक, जनपद स्तर पर केन्द्रीय बैंक या जिला–स्तर बैंक हैं तथा ग्रामींण स्तर पर प्राथमिक ग्रामींण सहकारी समितियाँ कार्यरत हैं। इस प्रकार सहकारी व्यवस्था के संघीय ढ़ाँचे में केन्द्रीय बैंकों की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। ये

केन्द्रीय बैंक शीर्ष या राज्य बैंकों के एक ओर तथा प्राथमिक ग्रामीण साख समितियों के दूसरी ओर बीच में मध्यस्थ की महत्वपूर्ण भूमिका या कड़ी का काम करते हैं।

हमारे देश में प्राथमिक सहकारी साख समितियों की दशा संतोषजनक नहीं है, वित्तीय दृष्टि से वे सुदृढ़ नहीं हैं। इनके साधन इतने कम हैं, व आवश्यकतायें इतनी अधिक है कि ये अपने पैरों पर खड़े होने में असमर्थ हैं। अतः इन समितियों की व इनसे सम्बद्ध सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने, वित्तीय साधन उपलब्ध कराने व तकनीकी सहायता एवं दिशा–निर्देशन करने का कार्य ये केन्द्रीय बैंक ही करते हैं। केन्द्रीय बैंक ही इन प्राथमिक समितियों के संघ हैं। ये कार्यदायित्व के रुप में वित्तीय साधनों को गतिशीलता प्रदान करते है और अतिरिक्त धन को अन्य आवश्यकता वाली समितियों में वितरित करने में सहायक का कार्य करते हैं।

केन्द्रीय सरकारी बैकों का उद्गम एवं विकास

भारत में सबसे पहला केन्द्रीय बैंक राजस्थान में अजमेर शहर में स्थापित किया गया। यद्यपि इससे पूर्व उत्तर प्रदेश में 1906 में एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना एक प्राथमिक समिति के रुप में हुई तथापि बिहार और मध्यप्रदेश में वास्तविक केन्द्रीय बैंक की स्थापना हुई। तत्पश्चात 1912 में सहकारी समिति अधिनियम संशोधित किया गया और प्राथमिक समितियों की वित्त व्यवस्था के लिये केन्द्रीय बैंकों के पंजीकरण की व्यवस्था की गई। इस अधिनियिम के पश्चात् ही 1918 से द्वितीय विश्व युद्ध तक सहकारी साख व्यवस्था में कई उतार–चढ़ाव के साथ पर्याप्त वृद्धि व व्यापक विकास निम्नाकिंत प्रकार से हुआ। –:

सन्	केन्द्रीय सहकारी बैकों की संख्या	सदस्यता	कार्यशील पूंजी
1919–20	233	1.22 लाख	6.63 करोड़ रु0
1929–30	558	1.91 लाख	30.90 करोड़ रु0
1936–37	61185 हजार		–

योजनाकाल

सहकारी बैंकिंग व्यवस्था ने द्वितीय विश्वयुद्ध काल (1939–1945) में पर्याप्त प्रगति की थी, फिर भी प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ होने के पूर्व कई राज्यों में इन बैकों की पूंजी का ढ़ाँचा बहुत ही दुर्बल था। बम्बई व मद्रास को छोड़कर अन्य केन्द्रीय बैंकों की औसत पूंजी 50,000 रु0 से भी कम थी। रक्षित कोष एक लाख रुपये से कम था व निजी पूंजी 30 लाख रुपये से भी कम थी। इन बैंकों की ऋण सम्बन्धी क्रियायें अत्याधिक असंतोषजनक थीं। यथा –

(अ) व्यक्तिगत सदस्यों को प्राथमिक समितियों की अपेक्षा अधिक अनुपात में ऋण देना।

(ब) कुछ बैकों द्वारा व्यापार किया जाना।

(स) बहुत बड़ी मात्रा में अपर्याप्त तथा संदिग्ध ऋण देना।

(द) कई बैंकों में अधिभार ऋणों का प्रतिशत अधिक होना।

(ह) अयोग्य व अकुशल कर्मचारी।

अतः केन्द्रीय बैंकों के संगठन के इस दुर्बल एवं असंतोषजनक ढ़ाँचे को देखकर अखिल भारतीय ग्रामींण साख सर्वेक्षण समिति ने राज्यों को केन्द्रीय सहकारी बैंकों के अभिनवीकरण व सुदृढ़ीकरण का सुझाव दिया था। इस सुझाव के आधार पर प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में केन्द्रीय सहकारी बैंकों के पुनर्गठन व एकीकरण की नीति अपनाई गई व द्वितीय योजनाकाल में इसका कड़ाई से पालन किया गया तथा 'एक जिला एक केन्द्रीय बैंक' की स्थापना का प्रयास किया गया। जिन जिलों में एक से अधिक केन्द्रीय बैंक थे उन्हें मिलाकर एक मजबूत केन्द्रीय बैंक स्थापित किया गया। जहाँ किसी बैंक का कार्यक्षेत्र एक से अधिक जनपदों में था उसे एक जिले तक सीमित कर दिया गया और अन्य जिलों में भी नये केन्द्रीय बैंक स्थापित किये गये। इस नीति के कार्यान्वयन के फलस्वरुप केन्द्रीय बैकों की संख्या 1950–51 में 505 से घटकर 1997 में 363 रह गई, जैसा कि अग्रान्कित तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या- २८
केन्द्रीय बैंको की प्रगति

विवरण / वर्ष	1950–51	1960–61	1980–81	1991–92	1997–98
1. केन्द्रीय बैंको की संख्या	505	380	337	351	363
2. सदस्यता (लाखों में)	2.07	3.87	2.75	8.5	9.8
3. अंश–पूंजी (करोड़ों में)	4	38	388.43	900.00	928.25
4. जमा पर प्राप्तधन(करोड़ोंमें)	37	111	2770.00	11,010.00	22,209.00
5. कार्यशीलपूंजी (करोड़ों में)	56	300	4572	20,115	37,311

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित पृष्ठ 199

नोट –: विभिन्न पुस्तकों में तुलना करने पर यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि इस तालिका में दिये हुये समंकों में अन्तर है। अतः मध्यम मार्ग अपनाया गया है। फिर भी प्रवृति एक सी पाई गई कि योजनांकाल में केन्द्रीय बैंकों ने बहुमुखी विकास किया है। पुनर्गठन की प्रक्रिया के कारण बैकों की संख्या में कमी अवश्य आई है, परन्तु 1997–98 से पुनः संख्या में वृद्धि होने के चिह्न स्पष्ट नज़र आते हैं। इसके विपरीत सदस्यता, कार्यशील पूंजी व अंशपूंजी में पर्याप्त वृद्धि हुई है विशेषकर सन् 1980–81 के बाद। इसी प्रकार जमा पर धन प्राप्ति मे भी वृद्धि दृष्टिगोचर होती है।

इसी सम्बन्ध में इन बैकों द्वारा निम्नाँकित धनराशि के ऋण जारी किये गये। यथा –:

सन् 1981–82 4059 करोड़ रु0 के ऋणजारी किये।

सन् 1991–92 14226 करोड़ रु0 के ऋणजारी किये।

ये निश्चय ही प्रगति के सूचक हैं परन्तु एक चिन्तनीय पक्ष यह भी रहा है कि इस अवधि में दिये गये ऋणों की वसूली संतोषजनक न होने के कारण बकाया ऋण जो कि सन् 1991–92 में 12,593 करोड़ रु0 थे, 1994–95 की अल्पावधि में बढ़कर 20,354 करोड़ रु0 हो गये तथा अवधिपार ऋणों की राशि 3402 करोड़ रुपये से बढ़कर 5099 करोड़ रु0 हो गई। यही प्रवृति जनपद जालौन के वार्षिक लेखा–जोखा विवरण में भी देखने को मिलती है।

ऐसा लगता है कि कोई भी केन्द्रीय बैंक इससे अछूता नहीं रह सका है इसीकारण प्रदेश के 31 बैंक आर्थिक संकट से गुजर रहे हैं।

केन्द्रीय बैंक के प्रकार -:

मैकलगन समिति के अनुसार केन्द्रीय बैंक तीन प्रकार के हैं। 1. व्यक्तिगत सदस्यता वाले बैंक। 2. समितियों की सदस्यता वाले बैंक या बैंकिग संघ और 3. मिश्रित बैंक, जिनके सदस्य व्यक्तिगत व समितियों दोनों से होते हैं।

केन्द्रीय बैंक के उद्देश्य एवं कार्य

उद्देश्य -:

केन्द्रीय सहकारी बैंक जिन्हें जिला सहकारी बैंक के नाम से भी जाना जाता है, भारतीय सहकारी व्यवस्था के ढ़ाँचे का मध्य भाग हैं। ये प्राथमिक साख समितियों व शीर्ष बैंक या राज्य सहकारी बैंक के मध्यस्थ का कार्य सम्पन्न करते हैं। इनका प्रधान कार्य प्राथमिक साख समितियों एवं सदस्यों को साख सुविधायें सुलभ करवाना होता है। इस हेतु ये प्राथमिक साख समितियों के अतिरिक्त धन या कार्यशील पूंजी को जमा करते हैं तथा इसी जमाराशि को उन समितियों को ऋण के रुप में देते हैं जिनको अतिरिक्त धन की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक पूंजी को एक ओर से लेकर दूसरी ओर जहाँ इसकी कमी है, प्रदान कर संतुलन का कार्य करते हैं तथा वित्तीय साधनों को गतिशीलता प्रदान करते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक अपने जनपद में सहकारी आन्दोलन के विकास के लिये उत्तरदायी होते हैं। इसी संदर्भ में केन्द्रीय बैंक साख तथा अन्य सहकारी कार्यक्रमों के मध्य समन्वय भी स्थापित करतें हैं। इस सबके साथ–साथ चूंकि बैंक का दायित्व जनपद के सहकारिता विकास से जुड़ा होता है इसलिये यह बैंक कृषि सहकारी समितियों, विपणन समितियों के क्रय–विक्रय कार्यों को तथा अन्य ग्रामीण समितियों को जो ग्राम विकास कार्य से जुड़ी हैं, कार्यशील व्ययों की पूर्ति के लिये ऋण

प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त ये बैंक मुद्रा बाजार से भी बराबर सम्पर्क रखते हैं तथा साख समितियों को मुद्रा बाजार से सम्पर्क स्थापित कराने में सहायक होते हैं। अन्ततः जे. एम. लॉड के मतानुसार, ''जिला सहकारी बैकों की स्थापना के पीछे अधारभूत विचार यह है कि प्राथमिक सहकारी समिति (जो कि ग्रामींण आवश्यकताओं के सन्दर्भ में कृषकों द्वारा संचालित की जाती है और जिसका मुद्रा बाजार से कोई सम्पर्क नहीं है) तथा शीर्ष सहकारी बैंक (जो कि मुख्यतया राज्य स्तर पर संचालित किये जाते हैं और इनका ग्रामीण क्षेत्रों से कोई धनिष्ट सम्पर्क नही होता) के मध्य एक विश्वासनीय व स्थाई मध्यस्थ का होना आवश्यक है।''

केन्द्रीय सहकारी बैक के कार्य

मेरे विचार में एक केन्द्रीय सहकारी बैंक को एक मित्र, एक दार्शनिक व एक पथ प्रदर्शक का कार्य करना चाहिये। एक मित्र होने के नाते उसे आर्थिक कठिनाइयों या वित्तीय संकटों में आवश्यक वित्त जुटाकर सहायता करनी चाहिये, एक दार्शनिक के नाते उसे बैंक सम्बन्धी मुद्रा या ऋण के लेन–देन के सिद्धान्त से परिचित कराना तथा उनका कड़ाई से पालन कराने के लिये प्रतिबद्ध होना चाहिये तथा एक पथ प्रदर्शक के नाते सही मार्ग का अर्थात् उचित–अनुचित का ज्ञान कराना चाहिये। सामान्यतया एक जिला सहकारी बैंक के निम्नलिखित कार्य हैं –:

1. धन जमा करना एवं उधार देना।
2. वित्तीय सन्तुलन के रुप में कार्य करना।
3. सदस्यों में मितव्ययता की भावनां का विकास करना।
4. प्राथमिक समितियों को अपने रक्षित कोषों के सुरक्षित विनियोग की सुविधा प्रदान करना।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में मूल बैंकिग सेवाओं का विस्तार करना।

6. सदस्यों को अन्य बैकिंग सुविधायें सुलभ कराना।
7. जन विश्वास उत्पन्न कर स्थानीय जमाओं को आकर्षित करना।
8. प्राथमिक समितियों व सदस्यों को प्रबन्ध में सहयोग व कार्य संचालन का निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण करने में सहायता देना।
9. पथ प्रदर्शन करना व सदस्यों को सहकारी सिद्धान्तों की जानकारी देते रहना।
10. द्वितीय स्तर पर जनपद में सहकारी आन्दोलन का विस्तार करना।

इन प्रधान कार्यों के अतिरिक्त लगभग सभी केन्द्रीय सहकारी बैंक विभिन्न प्रकार की जमायें स्वीकार करने, चैक व हुण्डियों का संग्रह करने, ड्राफ्ट व हुण्डी लिखने, बहुमूल्य वस्तुओं की सुरक्षार्थ लाकर्स की सुविधा देने, प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय करने, स्थायी जमाओं की जमानत पर ऋण देने, प्राथमिक सहकारी समितियों से निरन्तर निकट सम्पर्क बनायें रखने, नीतिसम्बन्धी विषयों पर दिशा निदेश प्रदान करने, सदस्य समितियों की कठिनाइयों का पता लगाकर उन्हें हल करने का प्रयास और अन्ततः यदि कोई विशेष आपातकाल परिस्थिति जैसी स्थिति उभर रही हो तो प्राथमिक समितियों की वित्तीय पूर्ति के लिये बाहरी स्त्रोतों से भी ऋण प्रदान करने के भी कार्य करते हैं।

केन्द्रीय सहकारी बैंकों की सदस्यता

भारतवर्ष के अधिकांश बैंकों की भाँति जालौन जिला सहकारी बैंक भी एक मिश्रित प्रकार का बैंक है। प्राथमिक समितियों के अतिरिक्त व्यक्ति भी इसके सदस्य हैं। इसके क्षेत्र में पंजीकृत सभी प्राथमिक समितियाँ एवं निर्धारित योग्यता वाले व्यक्ति इनके सदस्य होते हैं। साख समितियों के अतिरिक्त विपणन समितियाँ, उपभोक्ता भण्डार, औद्योगिक समितियाँ, शहरी साख समितियाँ आदि इन बैकों की सदस्य होती हैं। व्यक्तिगत सदस्यों में सार्वजनिक सेवा करने वाले और स्थानीय प्रभाव रखने वाले व्यक्ति भी सम्मलित होते हैं लेकिन यह संख्या सीमित होती है। केन्द्रीय बैकों में व्यक्तिगत

सदस्यता के विषय में पर्याप्त समय तक सहकारी विशेषज्ञों में मतान्तर रहा है।

(अ) मैकलेगन समिति –

केवल प्राथमिक समितियों को ही सदस्य बनाने के पक्ष में रही। उसके मतानुसार व्यक्तियों को सदस्यता नहीं दी जानी चाहिये।

(ब) केन्द्रीय बैंकिग जाँच समिति –

व्यक्तिगत सदस्यता प्रदान करने के विचार को समर्थन किया है।

(स) अखिल भारतीय साख सर्वेक्षण समिति–

केन्द्रीय बैंक की सदस्यता व्यक्तियों को तब तक ही प्रदान की जानी चाहिये, जब तक कि गाँवों में सहकारी संगठन स्थापित न हो जाय।

(द) मेहता समिति –

केन्द्रीय बैकों द्वारा व्यक्तियों को अधिक सदस्य बनाने के विचार का विरोध किया है।

आधुनिक प्रवृत्ति -

केन्द्रीय बैकों में व्यक्तियों की सदस्यता कम से कम रखने की है या फिर समिति रखने की है। सन् 1955–56 में व्यक्तिगत सदस्यता 1.44 लाख थी जो सन् 1979–80 में घटकर 77,134 ही रह गई, जबकि सहकारी समितियों की संख्या 1.50 लाख से बढ़कर 2 लाख हो गई। वर्तमान समय में केन्द्रीय सहकारी बैकों में 74 प्रतिशत से अधिक सदस्यता समितियों की ही है। व्यक्तिगत सदस्यों की संख्या कम करने के लिये उनके अधिकारों को सीमित कर दिया गया है तथा प्रबन्ध मण्डल में भी उनकी संख्या को निश्चित कर दिया गया है।

शाखा बैंकिग

केन्द्रीय सहकारी बैकों के कार्यालय जिला मुख्यालयों में स्थापित किये गये हैं। प्रस्तुत शोध के केन्द्र जालौंन जिला सहकारी बैंक लि0 में भी जिला मुख्यालय उरई में स्थित है। एक जिले में अनेक प्राथमिक समितियाँ कार्यरत होती हैं। इनके कार्यकलापों में उत्तरोत्तर वृद्धि होने के फलस्वरूप यह अनुभव किया जाने लगा है कि केन्द्रीय बैंक समितियों की समस्याओं का शीघ्र समाधान प्रस्तुत करने में असफल रहे हैं। अतः ग्राम स्तर व पर, विकास खण्डों के स्तर पर केन्द्रीय बैकों की शाखायें खोली जाने लगी हैं। इससे त्वरित लाभ यह होगा कि सम्बन्धित तहसील या विकास खण्ड स्तर पर प्राथमिक समितियों की ऋण सम्बन्धी समस्याओं और क्रियाओं को निपटाने का कार्य कार्यालय द्वारा शीध्र पूराकर लिया जायेगा व अनावश्यक विलम्ब न होगा। इसके साथ–साथ ये शाखायें ग्राम स्तर पर बचतों को आकर्षित करने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकती हैं। अधिकांश राज्यों में शाखा विस्तार कार्यक्रम अपनाया जा चुका है। परिणामतः केन्द्रीय बैकों की शाखाओं की संख्या जो 1950–51 में मात्र 759 थी बढ़कर 1997–98 में 11802 हो गयी है। उल्लेखनीय है कि जलौंन जिला सहकारी बैक की भी इस समय विभिन्न तहसील एवं विकास खण्ड स्तर पर 19 शाखायें कार्यरत हैं।

केन्द्रीय सहकारी बैंक की कार्यशील पूंजी

बैंक की कार्यशील पूंजी के निम्नलिखित स्त्रोत हैं –:

1. अंश–पूंजी
2. संचित तथा अन्य कोष
3. जमायें (अ) सदस्यों से (ब) गैर सदस्यों से
4. प्राप्त ऋण –:

(अ) राज्य सहकारी बैंक से,

(ब) राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) से

(स) सरकार से एवं

(द) सरकार से अनुदान स्वरूप

(१) अंश पूंजी -:

केन्द्रीय सहकारी बैंक के प्रत्येक सदस्य (समिति व निजी व्यक्ति) को बैंक के अंश क्रय करने होते हैं। इन अंशों का मूल्य प्रति अंश 50 रु0 से 100 रु0 तक रखा जाता है। प्रत्येक प्राथमिक समिति द्वारा क्रय किये गये अंशो के अनुपात में ही ऋण दिया जाता है। अस्तु जो समिति अधिक ऋण लेना चाहती है उसे अनिवार्यतः उतने ही अधिक अंश लेने पड़ते हैं। इससे केन्द्रीय बैकों को अपनी अंश–पूंजी में वृद्धि करने का लाभ मिलता है। केन्द्रीय बैंकों के वित्तीय साधनों में वृद्धि करने व जनता में बैंक के प्रति विश्वास उत्पन्न करने के उद्देश्य से राज्य सरकारें भी इनके अंश खरीदती हैं।

(२) संचित एवं अन्य कोष -:

एक केन्द्रीय बैंक को अनिवार्यतः निम्नलिखित कोष बनाने पड़ते हैं –:

(अ) वैद्यानिक कोष

(ब) अप्राप्य ऋण तथा सन्दिग्ध ऋण कोष

(स) कृषि साख स्थायीकरण कोष

(द) अन्य कोष

इन विभिन्न कोषों के निर्माण से बैंक को यह लाभ होता है कि जहाँ एक ओर बैंक इनके द्वारा प्राथमिक सदस्य समितियों को अधिक ऋण सुविधायें प्रदान कर सकता है तो दूसरी और अप्राप्य ऋणों को अपलिखित कर सकता है।

प्रत्येक केन्द्रीय बैंक को प्रतिवर्ष अपने लाभ का निश्चित प्रतिशत भाग वैद्यानिक कोष में रखना पड़ता है। आवश्यकता पड़ने पर इस कोष का

प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतया इन कोषों का प्रयोग आकस्मिक हानियों की पूर्ति के लिये किया जाता है। केन्द्रीय बैकों के समक्ष ऋणों के पुनर्भुगतान की एक विकराल समस्या भी प्रायः रहती है। अतः अप्राप्य ऋण एवं सन्दिग्ध कोष का निर्माण इन ऋणों को अपलिखित करने के उद्देश्य से ही किया जाता है।

वर्तमान समय में केन्द्रीय बैंकों की अंशपूंजी में राज्य सरकारों का योगदान भी बढ़ता जा रहा है। राज्यों को इनकी अंश पूंजी में भाग लेने से केन्द्रीय बैकों की वित्तीय स्थिति में सुधार आता है, साथ–साथ जनता का इन केन्द्रीय बैकों के प्रति विश्वास भी जागृत होता है। राज्यों को केन्द्रीय बैंक की अंश–पूंजी में भाग लेने के उद्देश्य से वित्त प्रदानार्थ रिजर्व बैंक द्वारा राष्ट्रीय कृषि साख स्थिरीकरण कोष की स्थापना की गई थी। अब यह कार्य नाबार्ड कर रहा है। वस्तुतः ऐसे ही कोषों की विभिन्न स्तरों पर सहकारी साख संस्थाओं द्वारा भी स्थापना की जानी चाहिये जिससे आवश्यकता पड़ने पर प्राथमिक सहकारी समितियों के अल्पकालीन ऋण को दीर्घकालीन ऋण में परिवर्तित किया जा सके।

केन्द्रीय बैकों के पास अन्य निजीकोष भी होते है। इन कोषों में अंशपूंजी तथा अन्य कोषों को सम्मलित किया जाता है। विगत वर्षों में ऐसे निजी कोषों में पर्याप्त वृद्धि हुई है जिनके आधार पर केन्द्रीय बैकों की ऋण लेने की क्षमता में वृद्धि हुई है।

(३) जमायें -:

केन्द्रीय सहकारी बैंक सदस्यों और गैर सदस्यों दोनों की जमायें स्वीकार करते हैं। इस प्रकार ये ग्रामींण क्षेत्रों में मितव्ययता और बचत की आदत डालकर जमायें आकर्षित करने का प्रयास करते हैं। इसके लिये विभिन्न प्रकार के खाते खोले जाते हैं तथा उन पर ब्याज दिया जाता है। केन्द्रीय बैकों

में इन जमाओं का अत्यधिक महत्व है। कुछ राज्यों में केन्द्रीय बैकों की जमाओं में वृद्धि करने के लिये सरकार एवं अर्ध–सरकारी संस्थाओं को अपने अतिरिक्त कोषों को केन्द्रीय बैकों में जमा करने के आदेश दिये गये हैं। परन्तु ऐसा अनुभव किया गया है कि अनेक केन्द्रीय बैकों की प्रबन्ध व्यवस्था सुदृढ़ न होने के कारण वे इस प्रकार की पूंजी को आकर्षित करने में असमर्थ रहे हैं। केन्द्रीय बैकों में जमायें बढ़ाने के लिये निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं –

1. व्यापारिक महत्व के क्षेत्रों में अपने कार्यालय स्थापित करें।
2. व्यापारिक बैकों की भाँति ही सेवायें प्रदान करें।
3. ग्राहकों के प्रति सेवा के स्तर में सुधार करें।
4. शाखाओं के विस्तार की निश्चित योजनायें बनाये।
5. अनावश्यक औपचारिकताओं को समाप्त करें।
6. व्यापारिक बैकों के समान ब्याज दर रखें।
7. अपने ग्राहकों को, चेक, प्रतिभूतियाँ, ब्याज, पेन्शन आदि प्रपत्रों पर निःशुल्क सेवा प्रदान करें।
8. अपने कर्मचारियों एवं अधिकारियों को जनसम्पर्क कार्यों का प्रशिक्षण प्रदान करें।
9. स्थानीय शिक्षा संस्थाओं व निकायों की जमायें स्वीकारें।
10. जमाओं को आकर्षित करने के लिये विशेष अभियान चलायें।

(४) ऋण या उधार लेना -:

केन्द्रीय सहकारी बैकों को अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न संस्थाओं जैसे शीर्ष सहकारी बैंक, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, अन्य सहकारी बैकों व व्यापारिक बैकों आदि से ऋण लेना पड़ते हैं। ऋणों का इन केन्द्रीय सहकारी बैकों की कार्यशील पूंजी में अति महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि उपरोक्त वर्णित साधनों व कोषों से इन्हें पर्याप्त वित्त

सुलभ नहीं हो पाता है। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजना काल में इनमें बहुत वृद्धि हुई। सन् 1955–56 में 22 करोड़ रुपये से बढ़कर 1997–98 में यह धनराशि 1800 से 2000 करोड़ रुपये हो गयी।

केन्द्रीय बैकों के ऋण लेने की सीमां इनके निजी कोषों से सम्बद्ध की गई है, जिससे यदि यह बैंक अधिक ऋण लेना चाहते हैं तो इन्हें अपने निजी कोषों के वृद्धि के प्रयास करनें पड़ें। समय–समय पर इनकी ऋण सीमा बढ़ायी जाती है। अन्य संस्थाओं के साथ–साथ जब नाबार्ड केन्द्रीय सहकारी बैकों को ऋण देता है तो यह ऋण शीर्ष बैकों के माध्यम से दिया जाता है। शीर्ष बैंक इस ऋण को केन्द्रीय सहकारी बैकों को देते हैं। जिन राज्यों में शीर्ष बैकों की वित्तीय दशा संतोषजनक नहीं है, वहाँ केन्द्रीय सहकारी बैक रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के द्वारा बनाई गई योजनां के अनुसार 'अ' 'ब' 'स' श्रेणी के केन्द्रीय सहकारी बैक, रिजर्व बैंक या नाबार्ड से सीधे–सीधे ऋण प्राप्त कर सकते हैं परन्तु 'द' श्रेणी के बैकों के लिये राज्य सरकार से जमानत ली जाती है। कहीं कहीं केन्द्रीय सहकारी बैंक व्यापारिक बैंकों से भी ऋण लेते हैं। बैकों में बढ़ते अतिदेयों पर अंकुश लगाने के लिये नाबार्ड द्वारा ऋण को अतिदेय ऋणों से भी सम्बद्ध किया गया है।

(५) ऋण देना -:

भारत वर्ष में मिश्रित स्वरुप वाले बैंक, अर्थात् केन्द्रीय सहकारी बैंक के सदस्य प्राथमिक समितियाँ तथा व्यक्तिगत सदस्य भी हैं जिनकी संख्या बहुत है। अतः ये बैंक प्राथमिक समितियों व व्यक्तियों दोनों को ऋण प्रदान करते हैं। सामान्यतया ये बैंक कृषि साख समितियों के लिये ही वित्त व्यवस्था का कार्य करते हैं। इन समितियों से प्रतिज्ञां–पत्र लिखवा कर ऋण दिया जाता है। प्राथमिक साख समिति को ऋण देते समय तीन प्रमुख बातों का ध्यान रक्खा जाता है –:

(1) समिति की प्रबन्ध व्यवस्था संतोषजनक है।

(2) समिति दिये हुये ऋण का उचित प्रयोग करेगी।

(3) समिति से ऋण वसूली सरलता से हो सकेगी।

जिन समितियों की आर्थिक दशा अच्छी है उनको बैकों द्वारा नकद साख की सुविधा भी प्रदान की जाती है। केन्द्रीय बैंक प्राथमिक समितियों को अल्पकालीन व मध्यकालीन दोनों प्रकार के ऋण प्रदान करते हैं।

अल्पकालीन ऋण देने की प्रक्रिया

1. निर्धारित प्रपत्र पर ऋण के लिये आवेदन करना।
2. इस आवेदन पत्र के साथ सामान्य सभा या प्रबन्ध समिति के ऋण लेने के प्रस्ताव की प्रतिलिप भेजना, जिसमें ऋण राशि अथवा साख सीमा का भी उल्लेख होता है।
3. एक निर्धारित प्रपत्र समिति के प्रत्येक सदस्य की सम्पत्त्यिों के सम्बन्ध मे प्रस्तुत किया जाता है।
4. प्रथम बार ऋण के लिये आवेदन करने पर समिति के उपनियमों की सही प्रमाणित प्रतिलिपियाँ भेजना।
5. समिति की वित्तीय स्थिति का विवरण देना पड़ता है।
6. फसल ऋण की दशा में प्रत्येक सदस्य द्वारा बोये गये क्षेत्र व फसलों का भी विवरण प्रस्तुत करना होता है।

समिति का आवेदन–पत्र सामान्यतया उसके सचिव या पर्यवेक्षक द्वारा तैयार किया जाता है। यह आवेदन पत्र सहायक रजिस्ट्रार या पर्यवेक्षक (जैसी भी व्यवस्था हो) को भेजा जाता है जो अपनी सिफारिश के साथ इसे केन्द्रीय सहकारी बैंक को अग्रसारित कर देता है। बैंक आवश्यक कार्यवाही के पश्चात् इसे संचालक मण्डल के समक्ष प्रस्तुत करता है। संचालक मण्डल द्वारा स्वीकृति मिल जाने पर समिति को ऋण मिल जाता है। 'अ' तथा 'ब' वर्ग की

ऋण समितियों को ऋण लेने में कोई जमानत नही देनी पड़ती न ही किसी से सिफारिश की आवश्यकता ही होती है। किन्तु 'स' वर्ग की समितियों को ऋण लेने के लिये रजिस्ट्रार या उसके द्वारा अधिकृत किसी अन्य व्यक्ति की सिफारिश व अनुमति लेनी पड़ती है।

(६) ऋण की अवधि एवं उद्देश्य -:

केन्द्रीय सहकारी बैंक अल्पकालीन एवं मध्यकालीन दोनों प्रकार के ऋण प्रदान करते हैं। परन्तु अधिकाँश ऋण अल्पकालीन होते हैं जो मौसमी कृषि कार्यो, कृषि उपकरणों के खरीदने, फसलों का विपणन करने, कृषि उपज का विधायन अर्थात् निकाई सफाई आदि करने तथा उपभोग आवश्कताओं को पूरा करने के लिये दिये जाते हैं। इसके साथ–साथ छोटे मोटे कुटीर उद्योग आदि के लिये औद्योगिक ऋण भी दिये जाते हैं।

(७) ब्याज दर -:

केन्द्रीय बैंक ऋणों के उद्देश्य के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण करते हैं। केन्द्रीय बैंक शीर्ष बैकों से ऋण प्राप्त करते हैं और उन्हें ब्याज देते हैं। जब ये बैंक समितियों को ऋण देते हैं तो जो ब्याज इन्हें शीर्ष संस्थाओं को ऋण प्राप्त करने के लिये देना पड़ता है उससे थोड़ा अधिक ब्याज लेते हैं जिसे 'मार्जिन मनी' कहते हैं। सामान्यरूप से 'मार्जिन मनी' की दर 1प्रतिशत से 3प्रतिशत तक होती है।

(८) योजनावधि में केन्द्रीय सहकारी बैकों की ऋण क्रियायें - :

योजनाकाल में केन्द्रीय सहकारी बैकों की ऋण सम्बन्धी क्रियाओं की महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि प्रथम योजनांकाल में नये ऋणों की मात्रा में पर्याप्त कमी आई परन्तु तत्पश्चात् नये ऋणों में अत्यधिक वृद्धि 1997–98 की नवीं योजना तक देखी गई। इसकी एक अन्य विशेषता यह भी रही कि यद्यपि रिजर्व बैंक विरोध करता रहा फिर भी व्यक्तिगत ऋण, समितियों को

दिये जाने वाले ऋणों से अधिक रहे। इसी प्रकार बकाया ऋण एवं अवधि पार ऋणों की राशि में निरन्तर वृद्धि होती रही, जो निश्चय ही चिन्ताजनक विषय है जैसा कि निम्नाँकित तालिका से स्पष्ट होता है –:

तालिका संख्या - २९

केन्द्रीय सहकारी बैकों की ऋण क्रियायें

वर्ष	कुल अग्रिम (करोड़ रु0)	बकाया ऋण (करोड़ रु0)	अवधिपार ऋण (करोड़ रु0)	अवधिपार ऋणों का प्रतिशत
1950–51	82	34	3	0.9
1960–61	351	218	27	12.0
1973–74	1,249	1,163	376	32.0
1980–81	3,211	2,987	940	31.6
1991–92	14,226	12,593	3,402	27.0
1994–95	20,534	20,354	5,099	24.9
1997–98	21.848	22,251	5,110	22.9

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 165+209*

(९) उद्देश्य जिनके लिये ऋण लिये गये -

अग्राँकित तालिका में केन्द्रीय सहकारी बैकों के द्वारा दिये गये ऋणों का वर्गीकरण उनके उद्देश्यों के अनुसार दर्शाया गया है –:

तालिका संख्या - ३०

उद्देश्य के आधार पर ऋणों का वर्गीकरण (करोड़ रु0)

विवरण	1965–66	1981–82	1997–98
1. मौसमी कृषि कार्य	311	1,745,28	1841.20
2. कृषि उपकरणों का क्रय	14	4.15	6.12
3. फसलों का विपणन	74	391.95	402.96
4. कृषि उपज का विधायन	25	289.98	402.96
5. उपभोग ऋण	22	77.29	291.98
6. औद्योगिक एवं अन्य उद्देश्य	166	1,254.54	1,361.54
कुल योग–	**642**	**3,763.19**	**3,978.20**

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 209+210*

(१०) केन्द्रीय सहकारी बैकों द्वारा निरीक्षण एवं जाँच -:

केन्द्रीय सहकारी बैंक, प्राथमिक सहकारी साख समितियों को जो ऋण प्रदान करते हैं उनका निरीक्षण व जाँच का काम भी करते हैं। मूलतः इसका उद्देश्य जिले में सहकारी आन्दोलन का विकास करना होता है। अस्तु निरीक्षण व जाँच द्वारा प्राथमिक समितियों की कमजोरियों व कमियों का पता लगाकर उन्हें दूर करने के लिये आवश्यक सुझाव देने का कार्य भी केन्द्रीय बैंक करते हैं। इस सम्बन्ध में मेहता समित तथा अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति व भारत सरकार के समुदायिक विकास एवं सहकारिता मंत्रालय द्वारा निम्नाँकित सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं –:

1. प्राथमिक सहकारी समितियों के कार्यों के निरीक्षण का दायित्व केन्द्रीय सहकारी बैंक पर ही होना चाहिये।
2. 20 प्राथमिक समितियों पर एक निरीक्षक होना चाहिये।
3. यदि कोई संस्था किसी अन्य संस्था से निरीक्षण व जाँच का कार्य करा रही हो तो उसे केन्द्रीय बैंक को सौंप देना चाहिये।
4. यदि कोई बैंक उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार निरीक्षक नियुक्त करने में अपने को असमर्थ पा रहा हो तो राज्य सरकार ऐसे में सहायता दे सकती है।

(११) प्रबन्ध -:

केन्द्रीय सहकारी बैकों का प्रबन्ध संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। इसमें 12 से 15 तक सदस्य होते हैं। इन सदस्यों का चुनाव साधारण सभा में 'एक सदस्य एक वोट' के आधार पर किया जाता है। संचालक–मण्डल में प्राथमिक समितियों एवं व्यक्तियों दोनों का प्रतिनिधित्व होता है। चूंकि संचालक मण्डल में व्यक्तिगत सदस्यों की संख्या अधिक होती है अतः समितियों के लिये यह हानिकारक हो सकती है।

चूंकि राज्य सरकारें केन्द्रीय बैकों की अंशपूंजी में भाग लेती हैं, अतः ये अपने हितों की सुरक्षार्थ अपने प्रतिनिधि के रुप में संचालकों की नियुक्ति करती हैं। इसका लाभ यह होता है कि एक ओर सरकार के हितों की रक्षा होती है तो दूसरी ओर सहकारी आन्दोलन के विकास के लिये उचित मार्ग प्रशस्त होता है।

संचालक मण्डल की बैठक प्रत्येक माह में होती है। इसके सभी सदस्य अवैतनिक होते हैं। संचालक मण्डल, समिति के कार्यों को कुशलता पूर्वक व शीध्रता से निपटाने के लिये 'कार्यकारी समिति' का गठन करता है। इस समिति की बैठक प्रत्येक सप्ताह होती है। बैंक की सर्वोच्च संस्था साधारण सभा होती है।

प्रायः इस व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह है कि कुशल व अनुभवी तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों व अधिकारियों की सदैव कमी रहती है। इस सम्बन्ध में सरकार की एक योजनां लम्बति है जिसके अनुसार चार उच्च अधिकारियों की नियुक्ति की जायेगी यथा (1) प्रबन्धक, (2) कार्यवाहक अधिकारी, (3) प्रधान लेखपाल और (4) विपणन समितियों की देखभाल करने क लिये अधिकारी। इस सम्बन्ध में शीर्ष बैकों का यह दायित्व होगा कि वे केन्द्रीय सहकारी बैकों को प्रशिक्षित व अनुभवी कर्मचारी उपलब्ध करायें। यदि किसी बैंक के लिये वित्तीय कठिनाइयों के कारण ऐसा सम्भव नहीं हों पा रहा है तो उसे सरकार वित्तीय सहायता प्रदान करेगी।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय सहकारी बैकों द्वारा सराहनीय प्रगति की गई है। बैकों के निजी कोषों में पर्याप्त वृद्धि हुई है, उन्होंने निजी व्यक्तियों से अपना व्यवसाय काफी कम कर लिया है तथा अब उनका ध्यान समितियों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं कों पूरा करने की ओर आकर्षित हुआ है। परन्तु अनेक स्तर पर इन बैकों की स्थिति संतोषजनक नही

रही है यथा कम वसूली, भारी अतिदेय, अकुशल प्रबन्ध एवं अप्रशिक्षित कर्मचारी व निरीक्षकगण, दूषित ऋण नीतियाँ तथा डूबे हुये एवं संदिग्ध ऋणों के लिये अपर्याप्त कोष।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनान्तर्गत केन्द्रीय बैकों से अपेक्षा की गयी है कि वे पर्याप्त मात्रा में सस्ती, समायिक व समुचित साख की पूर्ति करेंगे और यह भी आशा की गई है कि अपने कार्यकलापो से सम्बन्धित त्रुटियों को दूर करेगें एवं एक ऐसी आदर्श धुरी का कार्य करेगें जिस पर समस्त जनपद का सहकारी आन्दोलन चक्राकार होगा।

शीर्ष या राज्य सहकारी बैंक

स्वाभावतः सहकारी आन्दोलन का सम्पूर्ण ढाँचा संघीय प्रकृति का है। राज्य सहकारी संगठन के संघीय ढ़ाचे में राज्य सहकारी बैकों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। अखिल भारतीय शीर्ष संस्था के अभाव में शीर्ष या राज्य सहकारी बैंक ही सहकारी आन्दोलन की सर्वोच्च संस्था हैं। वर्तमान में हमारे देश के प्रत्येक राज्य में लगभग एक शीर्ष बैंक है। शीर्ष बैंक शब्द का प्रयोग 1915 में सर्वप्रथम मैकलगन समिति द्वारा प्रयोग में लाया गया था। समिति ने यह अनुभव किया था कि देश में केन्द्रीय सहकारी बैंक प्राथमिक सहकारी समितियों को पर्याप्त सहायता कर रहे हैं, फिर भी इन दोनों की वित्तीय क्रियाओं व अन्य क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने के लिये किसी विशेष संस्था की स्थापना की जानी चाहिये, अस्तु शीर्ष सहकारी बैकों या राज्य सहकारी बैकों की स्थापना की गई। इस प्रकार राज्य में प्राथमिक सहकारी समितियाँ सहकारी साख आन्दोलन के ढाँचे की सबसे नीचे की कड़ी हैं, केन्द्रीय बैंक इस आन्दोलन का मध्य भाग और राज्य सहकारी बैंक शीर्ष भाग है। ये शीर्ष बैंक छोटी तथा बिखरी हुई प्राथमिक समितियों और मुद्रा बाजार के बीच कड़ी का काम करते हैं। रिजर्व बैंक तथा नावार्ड द्वारा प्रदत्त अल्पकालीन तथा मध्कालीन ऋणों को प्राथमिक सहकारी साख समितियों तक पहुँचाने में राज्य सहकारी बैंक का प्रमुख हाथ रहता है और सहकारी ढ़ाचे का पूर्ण स्वरूप इसी शीर्ष बैंक द्वारा, नियमन, नियंत्रण, पर्यवेक्षण, निरीक्षण एवं पथप्रदर्शन द्वारा पूर्ण होता है और इसीलिये राज्य सहकारी बैंक को सहकारी आन्दोलन का मित्र, प्रेरक तथा पथप्रदर्शक कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के अनुसार "राज्य सहकारी बैंक राज्य के सहकारी आन्दोलन की शिखर शाखा है। वह आन्दोलन को न केवल व्यवहारिक मुद्रा बाजार से वरन् मौसमी एवं आपातकालीन आवश्यकताओं के

लिये साख के एक संभाव्य स्त्रोत के रुप में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया से जोड़ता भी है।''

शीर्ष बैंक की स्थापना की आवश्यकता पर मैकलगन समिति ने निम्न बातों का उल्लेख किया है –:

1. केन्द्रीय सहकारी बैकों के कार्यो पर नियंत्रण व समन्वय स्थापित करने के लिये।
2. केन्द्रीय सहकारी बैकों की धीमी प्रगति को गति प्रदान करने हेतु।
3. केन्द्रीय सहकारी बैंकों के कार्यों में सुधार करकेइन बैंको के प्रति जनविश्वास व समर्थन को बढ़ाने हेतु।
4. केन्द्रीय सहकारी बैकों के आपसी लेन देन पर नियंत्रण करने के लिये।
5. केन्द्रीय सहकारी बैकों की कार्यप्रणाली में एकरूपता लाने के लिये।
6. सहकारी आन्दोलन व मुद्रा बाजार में समन्वय स्थापित करने के लिये।
7. केन्द्रीय सहकारी बैंकों की अतिरिक्त जमाराशियों का हस्तान्तरण करने के लिये।

उपर्युक्त उद्देश्यों व आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये शीर्ष बैंक सर्वप्रथम मुम्बई व चेन्नई में स्थापित किये गये, तत्पश्चात् अन्य सभी राज्यों में इनकी स्थापना हुयी।

शीर्ष सहकारी बैकों की सदस्यता

शीर्ष सहकारी बैकों के कार्य समान होते हुये भी इनका संगठन सभी राज्यों में समान नहीं है। संगठन के आधार पर शीर्ष बैकों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

9. केन्द्रीय बैंक द्वारा स्थापित शीर्ष बैंक –:

प्राथमिक साख समितियाँ तथा केन्द्रीय बैंक ही इन शीर्ष बैकों के सदस्य होते हैं यथा पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल में।

२. मिश्रित प्रकार के बैंक -:

इन बैंकों की सदस्यता सहकारी साख समितियों के अतिरिक्त व्यक्तिगत सदस्यों के लिये भी खुली रहती है। यथा तमिलनाडु, बिहार, असम, मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र में।

शीर्ष बैकों का प्रबन्ध व्यवस्था

१. साधारण सभा -

शीर्ष बैकों में भी अन्य बैकों की भाँति साधारण सभा में सर्वोच्च सत्ता निहित रहती है। साधारण सभा की बैठक वर्ष में एक बार होती है। इसमें संचालक–मण्डल कें सदस्यों का चुनाव, वार्षिक खातों पर विचार विमर्श एवं उनकी स्वीकृति तथा संविधान के अनुसार लाभों का नियोजन व वितरण सम्बन्धी कार्य किये जाते हैं। नीति सम्बन्धी निर्णय साधारण सभा में लिये जाते हैं। इन निर्णयों को कार्यरुप में परिणित करने के लिये ही संचालक मण्डल का गठन किया जाता है।

२. संचालक मण्डल -:

संचालक मण्डल का गठन प्रबन्ध सम्बन्धी सभी कार्यों के सुचारु रुप से संचालनार्थ किया जाता है। शीर्ष बैकों के संचालक मण्डल के गठन की प्रक्रिया विभिन्न राज्यों में अलग अलग प्रकार की है। तमिलनाडु और आन्ध्रप्रदेश में संचालक मण्डल में केन्द्रीय बैंक के प्रतिनिधि तथा सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य सम्मलित होते हैं जबकि उ0 प्र0 व असम में केन्द्रीय बैकों का प्रतिनिधित्व कम है। जम्मू कश्मीर में शीर्ष बैकों का प्रबन्ध प्राथमिक सहकारी समितियाँ के हाथ में है। यद्यपि वर्तमान में व्यक्तिगत सदस्यों की संख्या में कमी आयी है फिर भी अधिकांश बैकों में व्यक्तिगत संचालकों की संख्या हमेशा से अधिक ही रही है।

३. प्रबन्ध समिति -:

राज्य सहकारी बैकों के दैनिक कार्य संचालन के लिये प्रबन्ध समिति का गठन किया है जिसके अधिकार बैंक के उपनियमों के अन्तर्गत निर्धारित किये जाते हैं। इस समिति में 5 से 9 सदस्य होते हैं।

४. महाप्रबन्धक -

बैंक के कर्मचारियों में सर्वोच्च अधिकारी महाप्रबन्धक कहलाता है, जिसकी स्थिति बैक के प्रबन्ध कार्य में अति महत्वपूर्ण मानी जाती है।

शीर्ष सहकारी बैकों के कार्य

शीर्ष सहकारी बैकों का उद्देश्य मूलरुप से राज्य में कार्यरत सहकारी संस्थाओं के एक संतुलन केन्द्र, समाशोधन गृह तथा वित्तीय संस्था के रुप में कार्य करना हैं। संक्षेप में इन बैकों के प्रमुख कार्य निम्नवत् हैं –:

1. सहकारी वित्त व्यवस्था में संतुलन स्थापित करना।
2. मुद्रा बाजार व रिजर्व बैंक व अन्य सहकारी बैकों का आपस में सम्पर्क स्थापित करना।
3. समस्त सहकारी आन्दोलन के लिये साख–नीति निर्धारित करना तथा उसके कार्यान्वन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना।
4. सहकारी आन्दोलन की साख व्यवस्था को सही दिशा प्रदान करना।
5. केन्द्रीय सहकारी बैकों के कार्यो पर नियंत्रण रखना।
6. राज्य सहकारी आन्दोलन व राष्ट्रीय सहकारी आन्दोलन में समन्वय व सम्बन्ध स्थापित करना।
7. कुछ राज्यों में उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन के प्रसार में सहायता देना।
8. व्यापारिक बैकों की भॉति साधारण बैंकिग कार्य करना।

कार्यशील पूंजी के स्त्रोत

शीर्ष सहकारी बैकों की कार्यशील पूंजी के निम्नांकित स्त्रोत होते हैं –:

1. अंशपूंजी
2. रक्षित कोष
3. सदस्यों तथा गैर सदस्यों से प्राप्त धनराशि या निक्षेप
4. नाबार्ड, रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, राज्य सरकार तथा अन्य संस्थाओं से प्राप्त ऋण। विगत वर्षों में शीर्ष बैंकों की कार्यशील पूंजी में उल्लेखलीय वृद्धि हुई है।

तालिका संख्या - ३१

(करोड़ो में)

वर्ष	1951–52	1960–61	1980–81	1991–92	1997–98
कार्यशील पूंजी	36.72	256.09	274.90	13349	21278

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ 180*

योजनांकाल से पूर्व 30 जून 1950 को शीर्ष बैकों की स्थिति व योजनान्तर्गत मार्च 1997 की तुलनात्मक स्थिति निम्नांकित हैं –:

	30 जून 1950 को	मार्च 1997 को
संख्या	14	28
कार्यशील पूंजी	30.45 करोड़ रु0	21430 करोड़ रु0
अंशपूंजी	1.35 करोड़ रु0	2190 करोड़ रु0
जमायें	–	1300 करोड़ रु0
वितरित किये गये ऋण	42 करोड़ रु0	19,000 करोड़ रु0
बकाया ऋण	78 करोड़ रु0	13,921 करोड़ रु0
अतिदेय	2 करोड़ रु0	1171 करोड़ रु0
शाखायें	80	779
अतिदेय ऋणों का %	12.0 %	8.2 %

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 225 व 181*

उपर्युक्त तालिका से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अधिकांश बैंक 1950–51 में आर्थिक साधनों की दृष्टि से दुर्बल थे। कुछ बैकों की ऋण सम्बन्धी क्रियायें दोषपूर्ण थी। इसका मूल कारण बैकों द्वारा व्यापारियों एवं निजी व्यक्तियों को ऋण देना था तथा ये प्राथमिक समितियों को प्राथमिकता नही देते थे। सैद्धान्तिक उल्लंघन करते हुये अल्पकालीन कोषों से पर्याप्त मात्रा

में दीर्घकालीन ऋण दे दिये गये थे। अवधिपार ऋणों की स्थिति और भी भयानक थी। यथा पश्चिम बंगाल में शीर्ष सहकारी बैक की अवधिपार ऋणों की रकम कुल शेष ऋणों की रकम के 51% के बराबर थी।

राज्य सहकारी बैंक कृषि कार्यों तथा उपज के विपणन के लिये अल्पकालीन ऋण देते हैं जबकि पशुओं व यंत्रों के क्रय के लिये तथा कुओं आदि के लिये मध्यकालीन ऋण देते हैं। इनकी ब्याज दर अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग है परन्तु प्रायः यह 6% से लेकर 13% तक रहती हैं। 1997–98 में राज्य सहकारी बैकों ने कुल 17,000 करोड़ रु0 के अल्पकालीन व 2478 करोड़ रु0 के मध्यकालीन ऋण प्रदान किये।

1 नवम्बर 1956 में शीर्ष सहकारी बैकों के पुनर्गठन का कार्य प्रारम्भ किया गया, जिसके अन्तर्गत कई राज्य या शीर्ष बैकों को केन्द्रीय बैकों में परिवर्तित कर दिया गया। अनेक बैंकों की शाखाओं को धीरे–धीरे बन्द करके इन शाखाओं के व्यवसाय को केन्द्रीय बैकों को हस्तान्तरित कर दिया गया। ग्रामींण साख समीक्षा समिति ने सुझाव दिया कि जिन क्षेत्रों में केन्द्रीय बैंक कृषि साख समितियों का ऋण देने में असमर्थ थे वहाँ शीर्ष बैंक अपनी शाखा खोले और जब तक केन्द्रीय बैक का पुनर्गठन न हो जाय तब तक योग्य समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान करें।

शीर्ष बैकों को ऋण प्रदान करने वाली संस्थाओं में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया व नाबार्ड का सर्वाधिक योगदान है। रिजर्व बैक व नाबार्ड शीर्ष बैकों को (सामान्य बैकों की तुलना में) 2% कम पर अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण प्रदान करते हैं।

यदि राज्य सहकारी बैकों की सर्वागींण प्रगति पर एक समेकित दृष्टिकोण से देखा जाय तो इनकी प्रगति को संतोषजनक कहा जा सकता है।

इन बैकों की पूंजी, जमायें, निजी कोष व लाभार्जन में वृद्धि हुई है तथा रिजर्व बैक ऑफ इण्डिया व नाबार्ड इनकी प्रगति से संतुष्ट हैं। एक ओर जहां इनके लाभों में वृद्धि हुई है वही दूसरी और प्रबन्ध व्ययों में भी वृद्धि हुई है परन्तु यह व्यय आशानुरूप ही रहे हैं। अपवाद स्वरुप एकाध बैकों को घाटा हुआ है जबकि अधिकांश ने लाभांश घोषित किया है। वर्तमान में ये बैंक साख के अतिरिक्त अन्तर्देशीय विनिमय व्यापार, पारस्परिक प्रबन्धित कार्यक्रम (म्यूचुअल अरेन्जमेंन्ट स्कीम), चैकों का भुगतान, ड्राफ्ट लिखने तथा एजेन्सी सम्बन्धी कार्य भी करने लगे हैं परन्तु इतनी सफलता मिलने पर भी इन बैकों में कुछ असंतोषजनक स्थितियाँ व कुछ प्रमुख समस्यायें हैं, जो निम्नांकित हैं –

१. व्यक्तिगत ऋण

व्यक्तिगत ऋणों की अधिकता तथा प्राथमिक सहकारी साख समितियों के हितों की उपेक्षा या प्राथमिकता न देना।

२. किताबी समायोजन -

कई बैंक जब कोई ऋण की समय सीमा पार होती है, झूठी वसूली दिखाकर दूसरा ऋण दे देते हैं या फिर पुराने ऋण का नवीनीकरण कर देते हैं। ऐसे सभी कार्यो से कुछ निहित स्वार्थी व्यक्तियों को लाभ होता रहता है, जबकि वास्तव में संस्था को हानि उठानी पड़ती है।

३. अनियोजित विनियोग -

अपनी पूंजी का विनियोजन करते समय बैकों को वापसी की सुरक्षा, तरलता व लाभदायकता का ध्यान रखना चाहिये। शीर्ष बैंक इस नीति का पालन नहीं करते व रिजर्व बैंक के निर्देशों के विपरीत ये अन्य सहकारी बैकों में या लाभप्रद सम्भव मदों में विनियोजन हैं जैसा गोण्डा सहकारी बैंक में घटित हुआ है।

४. बढ़ते हुये अवधिपार ऋण -

राज्य सहकारी बैकों में अति असंतोषजनक व आपत्तिजनक स्थिति बढ़ते हुये अवधिपार ऋणों की भी है। उत्तर–प्रदेश के 51 केन्द्रीय बैकों में से 30 बैकों के साथ यह गम्भीर समस्या बनकर उभरी है। इसके निवारणार्थ सतत सचेष्ट प्रयास किये जाने चाहिये।

५. जमाओं में अपर्याप्त वृद्धि -

अनेक शीर्ष बैंक अपनी अकार्यकुशलता के कारण जमाओं में पर्याप्त वृद्धि आकर्षित करने में सफल नहीं हो पाये हैं। उत्तर–प्रदेश के अधिकांश बैकों की यही स्थिति रही है।

६. मध्यकालीन ऋणों की अपर्याप्ता -

राज्य सहकारी बैंक मध्यकालीन ऋण देनें की उचित व्यवस्था नही कर पायें हैं जबकि नाबार्ड मध्यावधि ऋण सुविधाओं में पर्याप्त मदद करता है। इसका प्रमुख कारण समुचित जानकारी का अभाव रहा है। इसके लिये कोई निश्चित कार्यक्रम भी नहीं बनाया गया है।

७. प्रबन्ध में दोष -

कुछ शीर्ष बैंक इसलिये भी सफल नहीं हो पाये क्योंकि उनके संचालक मण्डल में योग्य, अनुभवी व प्रशिक्षित व्यक्तियों एवं कर्मचारियों की कमी रही है, जिससे जो भी कार्यरत व्यक्ति हैं वे पूर्ण दिलचस्पी के साथ कार्य नही करते और न अपनी जिम्मेदारी को ही समझते हैं।

८. ऋण नीति के दोष -

शीर्ष बैकों की ऋण नीति कुछ राज्यों में दोषपूर्ण रही है जैसे असम में चाय के बागानों में अत्यधिक विनियोजन करने व अधिक ऋण या साख की आवश्यकता थी जो उन्हें नहीं मिल पाये। इससे बैंक में वित्तीय संकट उत्पन्न होता है व विश्वासनीयता में भी बट्टा लगता है।

९. निरीक्षण व अंकेक्षण की शिथिल व्यवस्था -

शीर्ष बैकों का दायित्व है के वे ग्रामीण साख व्यवस्था का सफल संचालन करने के लिये सतर्क रहें किन्तु अनेक शीर्ष बैंक इस दायित्ववहन में शिथिल रहे हैं। कहीं–कहीं शीर्ष बैकों के पास पर्याप्त निरीक्षकों की कमी रही है।

१०. राज्य सहकारी बैंक तथा व्यापारिक बैंक के मध्य समन्वय -

प्रायः ऋण देने के मामले में ऐसा अनुभव किया गया है कि व्यापारिक बैंक अधिक चातुर्यपूर्ण ढंग से ऋण वितरण में सफल रहे हैं जबकि स्पर्धा में राज्य सहकारी बैंकों को असहाय सा रहना पड़ा है। अस्तु आवश्यकता इस बात की है कि राज्य सहकारी बैंक व व्यापारिक बैंक के बीच स्वस्थ्य व अनुकूल वातावरण बने व एक दूसरे के साथ में समन्वय की नीति अपनायें।

राज्य सहकारी बैकों के ढ़ाँचें के पुनर्गठन सम्बन्धी सुझाव

राज्य सहकारी बैकों के दोषपूर्ण स्वरुप में सुधार के लिये अखिल भारतीय ग्रामींण साख समीक्षा समिति व अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति द्वारा अनेक महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये हैं, जिससे राज्य सहकारी बैकों का पुनर्गठन हो सके तथा बैंक के कार्यकलापों में आशातीत प्रगति हो सके। (संक्षेप में) ये सुझाव निम्नांकित हैं –:

1. संचालक मण्डल का पुनर्गठन करना।
2. रिजर्व बैंक के एक निरीक्षक की नियुक्ति जो कि संचालक मण्डल की बैठकों में भाग ले व राज्य में सहकारी साख सुविधाओं के विस्तार के सम्बन्ध में अपने सुझाव दे।
3. मुख्य प्रबन्धक अधिकारी की नियुक्ति व चुनाव–ऐसे अधिकारी का चुनाव बहुत ही सावधानी से किया जाना चाहिये और यदि किसी के स्थान पर नियुक्ति होना हो तो उसके प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जानी चाहिये।
4. राज्य का अंशपूंजी में अतिरिक्त योगदान – ऐसे शीर्ष बैंक जिनकी

कार्यकुशलता संतोषजनक न हो, राज्य सरकार को इनकी अंशपूजी में अधिक से अधिक अशंदान करना चाहिये, जिससे बैंक अपने सदस्यों को ऋण दे सकें।

5. इसके अतिरिक्त कर्मचारियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि तथा उनका प्रशिक्षण,
6. उचित कर्मचारी संवर्ग का निर्माण,
7. राज्य सरकारों द्वारा विशेष अनुदान देना,
8. मध्यावधि ऋणों के लिये नियोजित प्रबन्ध करना एवं
9. शाखायें खोलने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
10. अन्ततः शीर्ष बैंक को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि केन्द्रीय बैंक द्वारा तैयार की गई सारणी प्राथमिक साख समितियों की आवश्यकताओं के अनुरुप हो। इसके लिये रिजर्व बैंक शीर्ष सहकारी बैकों को एक बार में दो वर्ष के लिये मध्यावधि ऋण सीमा की स्वीकृति प्रदान कर सकता है।

राज्य सहकारी बैकों में सहकारी उधार के सबसे असंतोषजनक पहलू अवधि–पार ऋण रहे हैं। रिजर्व बैंक के अध्ययन दल ने 1974 में ही अपने प्रतिवेदन में स्पष्ट कहा था ''सहकारी समितियों में बकाया ऋण के विद्यमान होने के कारण मनोबल का अभाव और कृषकों में अनुशासन का अभाव, उचित कार्यवायी करने में ढील तथा दोष पूर्ण नीति रही है।'' हाल ही के वर्षों में किसान संगठित होकर यह मांग करने लगे हैं कि उनके शेष ऋण माफ किये जायें। ऐसा करना एक आवाँछनीय कार्य होगा। वास्तव में बिलम्बित ऋणों की वसूली ही सहकारिता के विकास में गम्भीर रुकावट है। अन्ततः, विश्लेषण में सहकारी समितियों के निष्पादन की सबसे बड़ी कमजोरी व बुराईयों की जड़ प्रबन्ध तन्त्र में निहित है। इस ओर विशेष ध्यान नही दिया

गया है। अतः कोई प्रगति नहीं हुयी है। अस्तु शीर्ष बैकों को केन्द्रीय बैकों तथा प्राथमिक सहकारी समितियों के प्रबन्धतन्त्र पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना चाहिये।

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)

कृषि सम्बन्धी अनेकानेक कार्य सम्पादन हेतु यथा बीज, खाद, यन्त्र– क्रय या मालगुजारी का भुगतान, फसलों की सिंचाई, खेतों की जुताई, बुआई, कटाई, निकाई जैसी वर्षानुवर्ष होने वाली क्रियाओं के लिये कृषि वित्त या साख की आवश्यकता ग्रामीण, कस्बाई व शहरी (आस पास के) क्षेत्रों में बसे कृषि पर आश्रित व्यक्तियों को सदैव से रही है, जिसकी आपूर्ति, साहूकारों द्वारा, सहकारी संस्थाओं के माध्यम से, व्यापारिक बैंक व अग्रणी बैंक योजना के माध्यम से, भूमि विकास बैकों द्वारा, भारतीय स्टेट बैंक द्वारा, क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों द्वारा, सरकार तथा रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग द्वारा की जाती रही है। रिजर्व बैंक ने 1935 से आरम्भ होने के समय से कृषि उधार में गहरी रुचि दिखाई है तथा इस हेतु राज्य स्तर पर सहकारी बैकों तथा भूमि विकास बैंकों के माध्यम से अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घ कालीन साख की व्यवस्था करता रहा है, साथ ही कृषि पुर्नवित्त निगम (एग्रीकल्चर रिफाइनेन्स कार्पोरेशन) एवं बाद में कृषि पुर्नवित्त एवं विकास निगम (ए.आर.डी.सी.) की स्थापना कर ग्राम विकास योजनाओं, विशेषकर सावधि उधार की सुविधाओं का विस्तार किया है। इतना सब होते हुये भी ग्रामीणों को ऋण–ग्रस्तता से मुक्ति दिलाने हेतु व कृषि वित्त की बढ़ती आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तथा उधार संस्थानों की सहायतार्थ व मार्गदर्शन हेतु एक शिखर–स्तर की संस्था की अनिवार्यता का अनुभव किया जाता रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु मार्च 1979 में कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिये संस्थागत ऋण व्यवस्था समीक्षा समिति श्री वी. शिवरामन की अध्यक्षता में गठित की गई जिसने कृषि पुर्नवित्त एवं विकास निगम को ग्रामीण साख व वित्त व्यवस्था के लिये असफल मानते हुये राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना का सुझाव दिया। 1981 में सरकार ने राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास अधिनियिम पारित किया।

अस्तु नाबार्ड की स्थापना जुलाई 1982 में हुई, जिससे कि नाबार्ड कृषि पुर्नवित्त व विकास के कार्य एवं क्षेत्रीय ग्राम बैकों सम्बन्धी पुनर्वित्त के कार्यो का भार सम्भाल सके।

रिजर्व बैंक के अनुसार –: ''राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, लघु उद्योगों, कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों, हस्तशिल्पों एवं अन्य ग्रामीण कलाओं तथा अन्य संक्रित आर्थिक क्रियाओं कें उत्थान के लिये दिये जाने वाले ऋण की नीति, योजना तथा क्रियात्मक पहलुओं के सम्बन्ध में शीर्ष संगठन होगा।''

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) का स्वरूप

नाबार्ड का रिजर्व बैंक से सीधा सम्बन्ध है, और इसके लिये रिजर्व बैंक ने इसकी अंश–पूंजी में आधे के बराबर का योगदान दिया है और शेष आधा भाग भारत सरकार द्वारा प्रदान किया गया है। रिजर्व बैक को नाबार्ड के निदेशक मण्डल में अपने तीन केन्द्रीय बोर्ड के निदेशकों को मनोनीत करने का और एक अपने उप–गवर्नर को नाबार्ड का अध्यक्ष नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है।

नाबार्ड का प्रधान कार्यालय मुम्बई में है। इसके 20 क्षेत्रीय कार्यालय हैं। ये कार्यालय अहमदाबाद, भोपाल, मुम्बई, कोलकता, गौहाटी, चण्डीगढ़, हैदराबाद, चेन्नई, नईदिल्ली, बंगलौर, भुवनेश्वर, पटना, जयपुर, श्रीनगर, त्रिवेन्द्रम, अगरतला, जम्मू, पणजी, शिमला तथा लखनऊ में हैं। इसके अतिरिक्त लखनऊ में ग्रामीण विकास बैंक संस्थान या (बर्ड) भी स्थापित किया गया है।

नाबार्ड के प्रमुख कार्य

1. क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों, राज्य सहकारी बैकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं को रिजर्व बैंक की अनुमति से 18 महीने से कम अवधि के लिये अल्पकालीन

ऋण देना।

2. राज्य सहकारी बैकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को 18 महीने से 7 वर्ष के लिये मध्यकालीन ऋण देना।
3. राज्य भूमि विकास बैकों, व्यापारिक बैकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों, राज्य सहकारी बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं को पुर्नवित सहायता देना।
4. कृषि एवं ग्रामीण विकास से सम्बन्धित संस्थाओं की अंशपूंजी में योगदान देना या इन संस्थाओं में विनियोग करना।
5. राज्य सरकार को 20 वर्ष की अवधि के लिये ऋण देना जिससे कि वे सहकारी साख समितियों की अंशपूंजी मे योगदान कर सकें।
6. यह बैंक कुटीर, लधु एवं ग्रामीण उद्योगों, ग्रामीण शिल्पकारों एवं अन्य सहायक आर्थिक क्रियाओं के लिये सभी प्रकार की साख के लिये पुर्नवित्त उपलब्ध करवाकर कृषि एवं ग्रामीण विकास को गति देगा।
8. सहकारी बैकों तथा ग्रामीण सहकारी बैकों का निरीक्षण करना।
9. ऋण देने या ऋण प्रपत्र क्रय करने के केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार अथवा रिजर्व बैक आफ इण्डिया के प्रतिनिधि के रुप में कार्य करना।
10. ग्रामीण बैंकिंग एवं कृषि व ग्रामीण विकास के सम्बन्ध में अनुसन्धान को प्रोत्साहित करना।
11. बैकों, राज्य सरकारों तथा अन्य संस्थाओं के कर्मचारियों को मानव संसाधन तथा संस्थागत क्षमताओं को बढ़ाने के लिये प्रशिक्षण देना।
12. सहकारी एवं ग्रामीण बैकों को अपनी शाखायें स्थापित करने या स्थान बदलने के लिये नाबार्ड के माध्यम से रिजर्व बैंक को आवेदन करने में सहायता देना।

प्रबन्ध

नाबार्ड प्रबन्ध तन्त्र में 13 संचालक सदस्य, 1 प्रबन्ध निदेशक व 1 अध्यक्ष होता है। संचालक मण्डल में विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों को भी सम्मलित किया जाता है। संचालक मण्डल में 2 सदस्य ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विशेषज्ञ के रूप में चुने जाते हैं, इसके अतिरिक्त 2 सदस्य राज्य सहकारी बैकों का अनुभव रखने वाले, 3 सदस्य रिजर्व बैंक के संचालक मण्डल से, 1 सदस्य व्यापारिक बैंक का अनुभवी व्यक्ति होता है। साथ–साथ केन्द्रीय सरकार के 3 सदस्य एवं 2 सदस्य राज्य सरकार के अधिकारी होते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त 28 व्यक्तियों की नियुक्ति राष्ट्रीय बैंक अधिनियिम 1961 की धारा 6 (1) के अन्तर्गत की जाती है।

संचालक मण्डल के अध्यक्ष एवं प्रबन्ध संचालक का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है जबकि संचालक मण्डल के अन्य सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष का होता है। दैनिक कार्य–संचालन के लिये एक कार्यकारी समिति (एग्जीक्यूटिव कमेटी) होती है। यह समिति संचालक मण्डल के निर्देशानुसार कार्य करती है।

इसके अतिरिक्त एक सलाहकार परिषद का भी गठन किया जाता है। यह परिषद संचालक मण्डल को विभिन्न विषयों पर अपनी राय देती है। यह परिषद कृषि साख मण्डल की भाँति ही कार्य करती है।

नाबार्ड में प्रबन्ध निदेशक के अतिरिक्त 1 महानिदेशक, 3 मुख्य प्रबन्धक तथा 11 महाप्रबन्धक भी होते हैं। विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों के संचालन के लिये नाबार्ड द्वारा 32 उप–महाप्रबन्धकों की भी नियुक्ति की जाती है। आवाश्यकतानुसार नाबार्ड उप–कार्यालय भी खोल सकता है।

नाबार्ड के वित्तीय स्त्रोत -:

1. अंशपूंजी

2. प्रारक्षित निधियाँ और अधिशेष

3. राष्ट्रीय ग्रामीण ऋण (दीर्घकालीन) कोष

4. राष्ट्रीय ग्रामीण ऋण (स्थिरीकरण) कोष

5. जमा राशियाँ

6. बाण्ड और डिबेन्चर

7. उधार

   क. भारत सरकार से उधार

   ख. भारतीय रिजर्व बैंक से उधार

8. अन्य स्त्रोत

तालिका संख्या-३२

नाबार्ड की निधियों के स्त्रोत (राशि करोड़ रुपयों में)

निधियों के स्त्रोत	1995	1996	1997	1998
1. पूंजी	330	500	500	500
2. प्रारक्षित निधियां व अधिशेष	1,232	1,738	2,280	2,731
3. राष्ट्रीय ग्रामीण ऋण (दीर्घकालीन) कोष	7,934	8,185	8636	9187
4. राष्ट्रीय ग्रामीण ऋण (स्थिरीकरण) कोष	838	840	842	943
5. जमायें	126	102	1,392	2,399
6. बाण्ड व डिवेन्चर	1,000	1,045	1,245	13,703
7. उधार				
अ. भारत सरकार से ऋण	1,297	1,294	1,170	1,059
ब. रिजर्व बैंक से ऋण	4,864	5,411	4,765	4,971
8. अन्य देयतायें	438	493	1,241	अप्राप्य
योग	17,991	19,608	22,071	25,207

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ 431 व 461*

नाबार्ड के ऋण कार्यक्रम

नाबार्ड द्वारा 12 जुलाई 1982 से कार्य प्रारम्भ करने के साथ–साथ ग्रामीण विकास के लिये ऋण सहायता तथा कृषि क्षेत्र में ऐसी पूंजीगत

परिसम्पतियों के सृजन पर बल दिया गया, जो कि तेजी से उत्पादन बढ़ाने की क्षमता रखती हों तथा शीर्ष संस्था होने के नाते कृषि एवं ग्रामीण विकास के समस्त कार्यक्रमों को समन्वित ढंग से संचालित करने का दायित्व का निर्वाहन करते हुये ऋण देने, सहकारी चीनी मिलों के लिये कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करने के लिये, हथकरधा बुनकर समितियों, औद्योगिक सहकारी समितियों, ग्रामीण कारीगरों आदि के लिये सहकारी बैकों व अन्य संस्थाओं के माध्यम से अल्पकालीन ऋण प्रदान किया जाता है। इसके साथ ही यह क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों व भूमि विकास बैकों तथा अन्य बैकों को पुर्नवित्त सुविधायें भी प्रदान कर रहा है।

अल्पकालीन ऋण

1983–84 में नाबार्ड ने मौसमी कृषि परिचालनार्थ 275 मध्यवर्ती सहकारी बैकों की ओर से 20 शीर्ष सहकारी बैकों को 1245 करोड़ रु0 की कुल ऋण सीमायें स्स्वीकृत की थी, जो कि 1982–83 की स्वीकृत निधियाँ 1120 करोड़ रु0 से 11% अधिक थी। 1986–87 में कृषि परिचालनों के लिये ऋण देने के हेतु 1425 करोड़ रु0 की ऋण सीमायें स्वीकृत की गई। नाबार्ड की यह नीति है कि खरीफ और रवी की फसलों के लिये अलग–अलग ऋण प्रदान किये जायें। 1982–83 में 10 राज्य सहकारी बैकों को रवी परिचालनों के लिये 154 करोड़ रु0 की ऋण सीमायें स्वीकृत की गई। यह उल्लेखनीय है कि ऋण सीमाओं में से केवल 64.5 % का ही उपयोग किया जा सका। इसका प्रमुख कारण इसी वर्ष में अतिदेयों में वृद्धि हुई, जिसके परिणामस्वरूप प्राथमिक ऋण समितियों के सदस्यों में नया ऋण लेने की पात्रता नहीं रही। फसलों के विपणन करने के लिये 1983–84 में 21 करोड़ रु0 की सीमा स्वीकृत की गई। इस कार्य के लिये आहरणों (विदड्राल) की राशि 60 करोड़ रु0 थी। 1986–87 में फसलों के विपणन हेतु 42 करोड़ रु0 की ऋण सीमायें स्वीकृत की गई।

नाबार्ड ने 1983 में उर्वरकों के वितरण के लिये 25 करोड़ रु0 स्वीकृत किये जबकि यह राशि 1992 में मात्र 12 करोड़ रु0 थी। इस 25 करोड़ रु0 में से मात्र 8 करोड़ रु0 का उपयोग राज्य सहकारी बैकों द्वारा किया गया। 1986–87 उर्वरकों के प्रयोग के लिये 38 करोड़ रु0 की सीमाये स्वीकृत की गयीं जबकि क्षेत्रीय बुनकर औद्योगिक सहकारी संगठनों के लिये 7 करोड़ रु0 तथा ग्रामीण कारीगरों के लिये 4 करोड़ रु0 की सीमायें स्वीकृत की गईं।

तालिका संख्या - ३३

1992–93	मौसमी कृषि कार्यों के लिये	3803 करोड़ रु0 ऋण सीमा
1993–94	मौसमी कृषि कार्यों के लिये	4060 करोड़ रु0 ऋण सीमा
1995–96	राज्य सहकारी बैकों को व क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को	5580 करोड़ रु0 की ऋण स्वीकृति
1996–97	लघु व सीमान्त कृषकों को अल्पकालीन ऋण	6132 करोड़ रु0 की ऋण स्वीकृति
1997–98	मौसमी कृषि परियोजनाओं के लिये राज्य सहकारी बैकों को अल्पावधि ऋण	5085,24करोड़रु0 की ऋण स्वीकृति
1997–98	बुनकरों के लिये राज्य सहकारी बैकों को ऋण	743 करोड़ रु0 की ऋण स्वीकृत
1997–98	क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को अल्पावधि सीमाओं में समग्र रुप से	743 करोड़ रु0 की ऋण स्वीकृत

स्त्रोत –: पूर्वो लिखित *पृष्ठ 484 व 433*

तालिका संख्या - ३४

नाबार्ड द्वारा कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं के आधार पर एजेन्सीवार ऋण

एजेन्सी / वर्ष	1992–93	1993–94	1994–95	1995–96	1996–97
1. सहकारी संस्थायें	9,378	10,117	9,406	10,479	12,479
2. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	831	977	1,083	1,381	1,921
3. वाणिज्य बैंक	4,960	5,400	8,255	10,172	14,253
कुलयोग	**15,169**	**16,494**	**18,744**	**22,032**	**28,653**

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठसंख्या 433*

छोटे कृषकों को ऋण -:

नाबार्ड योजनाबद्ध ऋण के अन्तर्गत लघु कृषकों को दिये जाने वाले ऋणों के सम्बन्ध में तत्काल अदायगी, लम्बी परिपक्वता अवधि पर रियायती ब्याजदर जैसी सुविधायें प्रदान करता है। छोटे कृषकों को 1983–84 में लघु सिंचाई और भूमि विकासार्थ 238.8 करोड़ रु0 तथा विभेदीकृत प्रयोजनार्थ 279.5 करोड़ रु0 वितरित किये गये जो कि कुल वितरण का 79% हैं।

राज्य सरकारों को ऋण -:

नाबार्ड राज्य सरकारों को भी ऋण देता है, जिसका उद्देश्य राज्य साझेदारी को प्रोत्साहन देना होता है। साथ–साथ इससे सहकारी ऋण संस्थाओं का पूंजीगत आधार मजबूत होता है। इस उद्देश्य हेतु –:

1982–83 में राज्य सरकारों को 13 करोड़ रु0 दिये गये।

1983–84 में राज्य सरकारों को 11 करोड़ रु0 दिये गये।

1986–87 में राज्य सरकारों को 14 करोड़ रु0 दिये गये।

1997–98 में राज्य सरकारों को 150 करोड़ रु0 स्वीकृत किये गये।

ऋण प्राधिकरण योजना -:

इस योजना के अन्तर्गत नाबार्ड राज्य सहकारी बैंक और केन्द्रीय सहकारी बैंक, सहकारी विपणन, विधायन, उपभोक्ता भण्डारों की अंशपूंजी में हिस्सा लेने, नकद ऋण सुविधायें प्रदान करने तथा थोक पूंजी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये ऋण व अग्रिम स्वीकृत करने के लिये रिजर्व बैंक से पूर्व अधिकार प्राप्त कर लेती है।

अन्यकार्य -:

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक बैकों, राज्य सरकारों और अन्य सम्बन्धित कर्मचारियों को प्रशिक्षण देता है। 1997–98 में 1502 कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया गया। नाबार्ड की एक विकास वालन्टियरवाहनी योजना है

जिसके तहत संस्थागत ऋण के ग्रामीण ऋणकर्ताओं को ''ऋण के माध्यम से विकास'' के सिद्धान्तों के विषय में जानकारी दी जाती है।

नाबार्ड की कार्य प्रगति

नाबार्ड अपने सम्पूर्ण कार्यकलापों को सुचारुरूप से संचालित करके अपने दायित्व का पूर्णरूपेण निर्वाह करने की दिशा में उत्तरोत्तर संतोषजनक ढंग से प्रगति कर रहा है। यही कारण है कि सन् 1997–98 में नाबार्ड को 383.56 करोड़ रुपये का लाभ हुआ जिसे राष्ट्रीय ग्रामीण ऋण (दीर्घावधि परिचालन) निधि, राष्ट्रीय ग्रामीण ऋण (स्थिरीकरण) निधि तथा विकास निधि में हस्ताँतरित कर दिया गया। नाबार्ड ने वित्तीय सहायता के रुप में –:

1993–94 में 3,990 करोड़ रु0 के ऋण स्वीकार किये।

1994–95 में 4,034 करोड़ रु0 के ऋण स्वीकार किये।

1995–96 में 8,800 करोड़ रु0 के ऋण 17400 परियोजनाओं में

1997–98 में 10,300 करोड़ रु0 के ऋण 19000 परियोजनाओं में लगाये।

ये ऋण बैंक दर से 3% नीची रियायती दर पर दिये गये। नये 20 सूत्रीय कार्यक्रमों के अन्तर्गत कमजोर वर्गो की ऋण उपलब्धि को सुनिश्चित करने के लिये नाबार्ड ने बैकों को यह सुझाव दिया कि वे अल्पकालीन ऋणों का एक निश्चित प्रतिशत छोटे व सीमान्त कृषकों एवं आर्थिकरुप से कमजोर वर्गों को उपलब्ध करायें।

मार्च 1997 तक नाबार्ड तथा कृषि पुर्नवित्त एवं विकास निगम ने कुल 1,50,000 परियोजनाओं को स्वीकृत प्रदान कर 47600 करोड़ रु0 के ऋण छोटी सिंचाई, भूमि विकास, फार्म यन्त्रीकरण, बागवानी, मुर्गीपालन, सुअर पालन, मत्स्यपालन, दुग्धशालाओं के विकास एवं संग्रहण आदि उद्देश्यों के लिये प्रदान किये।

विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का उद्देश्य लिये आर्थिक कार्यकलापों के लिये पर्याप्त ऋण प्रवाह सुनिश्चित करना नाबार्ड का प्रमुख उद्देश्य होने के नाते, नाबार्ड द्वारा 2002–03 के वित्तीय वर्ष में बैकों व राज्य सरकार को 2268 करोड़ रु0 की सहायता प्रदान की गयी। इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यापारिक बैकों, ग्रामीण और सहकारी बैंकों को 1176 करोड़ रु0 की पुर्नवित्त सहायता दी गई।

नाबार्ड के महाप्रबन्धक ने यह भी स्पष्ट किया कि नावार्ड ने वर्ष 2003–04 की कुल दोहन योग्य ऋण सम्मायता 14938 करोड़ रु0 आंकी है। उनके अनुसार ग्रामीण विकास के साथ–साथ अवस्थापना सुविधाओं के अन्तर्गत सड़क, पुल, सिंचाई जैसी आधारभूत सुविधाओं के सृजनार्थ राज्य सरकारों को ऋण सहायता बराबर दी जा रही है। इसके साथ ही नाबार्ड ने सहकारी ऋण संस्थाओं की अंश पूंजी में अंशदान के लिये इस वर्ष दो करोड़ रु0 की सहायता दी है।

महा प्रबन्धक ने यह भी बतलाया कि इस वर्ष फार्म जल प्रबन्धन के अन्तर्गत 22.5 करोड़ रु0 व्यय किये गये। इससे कृषकों को टयूबवेल, जल प्रबन्धन आदि के लिये सहायता प्रदान की जाती है। बैंक ने विकासात्मक कार्यो पर अत्याधिक ध्यान दिया है यथा –:

1. 38128 स्वयं सहायता समूहों को प्रवर्तित करके 20582 समूहों को ऋण दिया है।
2. गैर सरकारी संस्थाओं को 56 लाख रुपये का अनुदान प्रदान किया है।
3. किसानों को स्वैच्छिक विकास वाहनी के गठन के लिये प्रोत्साहित किया है।
4. वाटर शेड परियोजनाओं को 32 लाख रुपये का अनुदान प्रदान किया है।

स्त्रोत –: दैनिक जागरण, दिनांक 1 अप्रैल 2003 पृष्ठ संख्या 11

नाबार्ड बैंकिग की दृष्टि से पिछड़े राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तराँचल, राजस्थान, उड़ीसा आदि को अधिक सहायता दे रहा है तथा कृषि क्षेत्र में विनियोग वृद्धि का प्रयास कर रहा है। नाबार्ड ने सहकारी समितियों के पुनर्गठन के लिये मार्गदर्शी सिद्धांन्त बनायें हैं। यह सहकारी समितियों के समन्वय पर बल दे रहा है। रिजर्व बैक के सुझाव को ध्यान में रखकर यह अल्पकालीन व मध्यकालीन साख में भी समन्वय का प्रयास कर रहा है नाबार्ड ने 127 कमजोर केन्द्रीय बैकों की पहचान की है और उनकी पुनः स्थापना का कार्य किया है। यह भूमि विकास बैकों की प्रबन्ध व्यवस्था को सुधारने में भी योगदान दे रहा है। इस प्रकार नाबार्ड कृषि एवं ग्रामीण साख व्यवस्था को सुदृढ़ करके कृषि एवं ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन सहकारी साख का ढाचा (स्वरूप)

कृषि प्रधान होने के कारण उत्तर प्रदेश में सहकारिता आन्दोलन मुख्य रूप से ग्रामीण विकासोन्मुखी आन्दोलन के रूप में संचालित हैं। कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी, कृषि के विकास व कृषकों की आय में वृद्धि करने हेतु कृषि एवं सम्बन्धित कार्यो के लिये अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण उपलब्ध कराने के लिये त्रिस्तरीय सहकारी ढ़ांचे का गठन किया गया है जिसका उल्लेख पिछले अध्यायों में पृष्ठांकित है। परन्तु वर्तमान में कृषि व कृषकों की आवश्यकताओं में आमूल–चूल परिर्वतन आया है, अस्तु मध्यकालीन व दीर्घकालीन साख की उपलब्धता का महत्व और अधिक बढ़ गया है जिससे 2 वर्ष से 5 वर्ष तक के मध्यकालीन ऋण व 5वर्ष से 15,20वर्ष की अवधि के ऋणों की आवश्यकता अधिक होने लगी है। कृषकों के जीवन में नये दृष्टिकोंण का विकास हो, नये–नये प्रयोग कृषि में किये जा सकें, और इस हेतु कई प्रकार के ऋण जैसे, गोबर गैस संयत्र लगाने के लिये, स्माल रोड–ट्रन्सपोर्ट योजनान्तर्गत् वाहन क्रय हेतु, ट्रेक्ट्रर क्रय हेतु व अन्य नवीनतम कृषि यन्त्र क्रय हेतु जैसे विनोअर, हरवेस्टर, थ्रेशर आदि तथा तकनीकी उच्च शिक्षा आदि के लिये ऐसे दीर्घावधि ऋण की आवश्यकता एक प्रकार से अनिवार्यता बन गई है। इस बढ़ती आवश्यकता को लधु स्तर पर राज्य सहकारी बैंक पूरा तो करते हैं परन्तु यह अपर्याप्त ही रहती हैं। प्रमुख रूप से तीन संस्थायें ही ऐसी हैं जो इस उद्देश्य हेतु कार्यरत हैं। (1) राज्य सहकारी बैंक (2) राष्ट्रीय कृषि व ग्रामीण विकास बैंक और (3) भूमि विकास बैंक या राज्य सहकारी कृषि व ग्राम्य विकास बैंक। अस्तु यदि हम मध्यकालीन ऋण व दीर्घकालीन ऋण के वर्तमान ढ़ाचे के स्वरूप को जानना चाहें, तो वह यद्यपि एक दूसरे से पूर्णतयां भिन्न व अलग अलग हैं, परन्तु उन्हें सम्मलित रूप से निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है–

मध्यकालीन व दीर्घकालीन सहकारी साख का स्वरूप
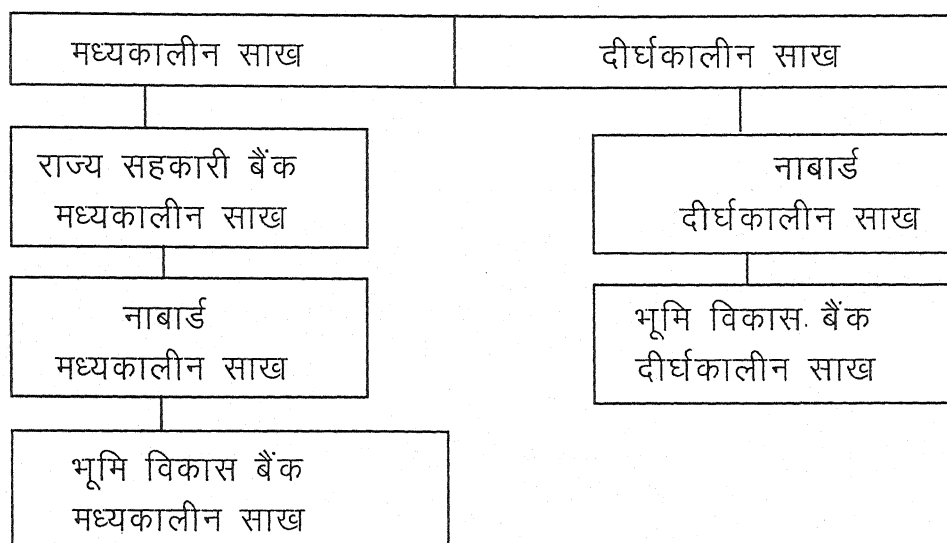
राज्य सहकारी बैंक तथा मध्यकालीन ऋण व्यवस्था

केन्द्रीय सहकारी बैंकों की अशातीत प्रगति न से प्राथमिक सहकारी साख समितियों के लिये मध्यकालीन ऋण व्यवस्था व्यवस्थिति रूप से सम्भव न हो सकी। मध्यकालीन ऋण 1वर्ष से 3–5वर्ष तक की अवधि के लिये कृषकों को दिये जाते हैं, जिनसे वे अपनी कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। अस्तु मध्यकालीन ऋण का दायित्व राज्य सहकारी बैंकों पर किसी हद तक पड़ रहा हैं।

राज्य सहकारी बैकों को अपनी मध्यकालीन ऋण नीति तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये, कि नीति अपेक्षाकृत छोटी व कम महत्व की होते हुये भी किसानों की आवश्यकताओं के अनुरुप हो। ये केन्द्रीय सहकारी बैकों के मध्यकालीन ऋण हेतु एक उचित समेकिंत सारणी तैयार कर रिजर्व बैंक को भेजे। केन्द्रीय बैकों को उस सारणी या नियोजन के अनुसार ही कार्य करना चाहिये। शीर्ष सहकारी बैंक को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि केन्द्रीय सहकारी बैक के सहयोग से तैयार सारणी प्राथमिक साख समितियों की आवश्यकताओं के अनुरुप हो। रिजर्व बैंक/नाबार्ड शीर्ष सहकारी बैकों को

एक बार में दो वर्ष के लिये मध्यावधि ऋण सीमा की स्वीकृति प्रदान कर सकता है।

मध्यकालीन ऋण जो 2 वर्ष के लिये दिये जाते हैं। ये ऋण कुओं की मरम्मत, यन्त्रों के क्रय, पशुओं की खरीद, गोबर गैस संयत्र, उच्च गुणवत्तायुक्त उर्वरक, बीज, कृषि रक्षा रसायनों की उपलब्धता के लिये दिये जाते हैं। किसानों को मध्यकालीन फसली ऋण उपलब्ध कराने हेतु जिला सहकारी बैकों को पुनर्वित्त सुविधा प्रदान की जाती है।

सहकारी बैकों व प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समितियों के माध्यम से समन्वित ग्रामीण विकास योजना के अन्तर्गत निर्बल वर्ग के सदस्यों को मध्यकालीन ऋण वितरण हेतु निबन्धक सहकारी समितियों द्वारा निर्धारित लक्ष्य एवं उसकी सापेक्ष प्रगति सम्बन्धी विगत चार वर्षों की तुलनात्मक स्थिति निम्नवत् है –:

तालिका संख्या - ३५ (करोड़ रु0 में)

वर्ष	लक्ष्य	उपलब्धि	लाभार्थियो का प्रतिशत	उपलब्धियों का प्रतिशत	अनु0जाति/जन जाति के लाभार्थियों को ऋण
1998–99	20.00	13.37	9.358	66.85	5.38
1999–2000	20.00	7.14	4961	35.70	4.50
2000–2001	11.00	1.27	540	11.58	1.25
2001–2002	8.00	1.67	2404	20.92	0.98

स्त्रोत –: सहकारिता विशेषांक 2002 पृष्ठ 29

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि राज्य सरकार की अपेक्षानुसार अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लाभार्थियों को अधिकाधिक ऋण का वितरण योजना के अर्न्तगत किया जा रहा है। परन्तु एक अन्य तथ्य जो उजागर होता है वह यह कि लाभार्थियों को मिलने वाला ऋण उत्तरोत्तर कम होता गया है यथा 1998–99 में यह ऋण 5.38 करोड़ रु0 था जो 2001–2002 में घटकर 0.98 करोड़ रु0 ही रह गया। इसी प्रकार की स्थिति प्रथम तीन वर्षो में लक्ष्य,

उपलब्धि व लाभार्थियों की संख्या में गिरावट दर्शाती है। लक्ष्य उत्तरोत्तर गिरता ही चला गया है। इसका मुख्य कारण लाभार्थियों की अज्ञानता तथा सम्बन्धित अधिकारियो व कर्मचारियों में उदासीनता व उपेक्षा भाव रहा है।

सहकारी देयों में वसूली -

निम्नलिखित तालिका विगत 5 वर्षो में सहकारी देयों की वसूली को दर्शाती है –:

तालिका संख्या - ३६ (करोड़ रु0 में)

वर्ष	कुल मांग	कुल वसूली	कुल वसूली का प्रतिशत	बैकों की संख्या
1997–1998	1853.20	1008.55	54.43	60
1998–1999	1959.87	1032.12	52.66	60
1999–2000	2286.08	1191.07	52.10	60
2000–2001	2442.60	1184.65	48.50	51
2001–2002	2675.64	1302.90	48.69	51

स्त्रोत –: सहकारी विशेषांक 2001 व 2002 *पृष्ठ सं0 30*

स्पष्ट है कि 30–6–2002 तक 2675.64 रु0 की मांग के विपरीत 1302.90 करोड़ रु0 की वसूली हुई जो मांग का 49.69% है। यह 2000–2001 वर्ष की तुलना में जिला सहकारी बैकों एवं कृषि ऋण सहकारी साख समितियों की वसूली से 0.19% अधिक है परन्तु इसे संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

जिला सहकारी बैकों में ऋणों की वसूली में वर्षानुवर्ष गिरावट का प्रमुख कारण यह रहा, कि जिला सहकारी बैकों एवं प्रारम्भिक कृषि सहकारी साख समितियों एवं सदस्यों के अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋणों से सन्निहित असंतुलन (इम्बेलेन्स) की धनराशि में हो रही वृद्धि के कारण वसूली योग्य धनराशि भी तदनुसार विपरीत रुप से प्रभावित हो रही है।

मध्यावधि ऋणों की अपर्याप्तता -:

जिला सहकारी बैंक नाबार्ड द्वारा प्रदत्त मध्यकालीन ऋण सुविधाओं का पूरा प्रयोग करने में असफल रहे हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि अधिकांश राज्यों में केन्द्रीय बैकों को व इनकी शाखाओं को मध्यकालीन ऋणों की आवश्यकता की समुचित जानकारी नहीं है। इसी के साथ–साथ राज्य शीर्ष बैकों द्वारा भी कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं बनाया गया है। वस्तुतः सत्यता यह है कि इन बैंकों ने मध्यकालीन ऋण प्रदान करने के कार्यो में उदासीनता दिखायी है। इसीलिये इनके कुल ऋणों में मध्यावधि ऋणों का अनुपात बहुत कम रहा है।

दोषपूर्ण ऋण नीति -:

शीर्ष बैकों की ऋण नीति दोष पूर्ण रहने के कारण, इन बैंकों ने केन्द्रीय बैंकों के निजी कोषों के आधार पर उनकी ऋण सीमायें निर्धारित की हैं। वस्तुतः ऐसा करने से पूर्व जिला सहकारी बैंको की कार्यकुशलता व कार्य कलापों पर ध्यान देना चाहिये न कि निजी कोषों पर। इसी कारण से शीर्ष बैंक, केन्द्रीय बैंकों की ऋण आवश्यकताओं का सही विश्लेषण नहीं कर पाते हैं।

नियमों के विरुद्ध कुछ केन्द्रीय बैंकों ने शीर्ष बैकों से आवश्यकता से अधिक ऋण प्राप्त किये हैं तथा ऐसे अतिरिक्त धन को जरुरत मन्द लोगों या समितियों को न देकर वाणिज्य बैंकों में जमा करके लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

कुछ बैंक ऐसे भी हैं जो निर्धारित अंशपूंजी खरीदे बिना ही ऋण प्राप्त करने में सफल रहे हैं। कहीं–कहीं शीर्ष बैकों ने ऐसे केन्द्रीय बैकों को ऋण प्रदान किये हैं जिनके अदत्त ऋण (अनपेड डेट) 20% से 30% रु तक है। ऐसे बैकों को ऋण नहीं देना चाहिये। संक्षेप में यह कहा जा सकता है के शीर्ष बैंक ने व केन्द्रीय बैंकों ने ऋण नीति व नियमों का सही ढंग से पालन नहीं

किया है। यही कारण है कि अवधि पार ऋणों की राशि , समय से वसूली न होने के कारण बढ़ी है। कहीं–कहीं प्रभावशाली नेतृत्व ने राजनीतिक गठबन्धन का सहारा देकर भी सामन्य कार्यकलापों के निस्तारण में बाधा पहुँचाई है।

नाबार्ड और मध्यकालीन साख -:

नाबार्ड मध्यकालीन ऋणों के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित नीति का पालन करता है। नाबार्ड राज्य सहकारी बैकों को 18 महीने से 7 वर्ष तक के लिये मध्यावधि ऋण एकीकृत ग्रामीण विकास, पशुपालन, लघुसिंचाई, गोबरगैस, बागवानी, वन उद्योग, कृषि मशीनीकरण, भूमि विकास, भण्डार आदि के लिये देता है। यह ऋण अनुमोदित कृषि उद्देश्यों के लिये दिये जाते हैं। 1983–84 में नाबार्ड ने 56 करोड़ रु0 के अल्पकालीन ऋण मध्यकालीन ऋण में परिवर्तित किये जिसमें से 55 करोड़ रु0 के ऋण का लाभ उठाया गया सन् 1986–87 में इस कार्य हेतु 192 करोड़ रु0 की सीमायें निर्धारित की गई।

नाबार्ड क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों के माध्यम से कृषि प्रयोजनों, हथकरघा बुनकरों, लघुउद्यमियाँ व्यवसाय एवं अन्य उत्पादक कार्यों में लगे कम आयु वालों को व कारीगरों को ऋण और अग्रिम प्रदान करता है तथा पुर्नर्वित्त की सुविधा प्रदान करता है। सन् 1984 के अन्त तक 162 क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों में से 108 बैकों ने नाबार्ड की पुर्नर्वित्त सुविधाओं का लाभ उठाया। इसी वित्तीय वर्ष में क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों के आहरणों (विदडाल) और चुकताओं (पेडअप) की राशि क्रमशः 155 करोड़ रु0 और 104 करोड़ रु0 थी। 30 जून 1984 को इन ऋण सीमाओं के अन्तर्गत 112 पुर्नर्वित्त के 242 करोड़ रु0 बकाया थे। सन् 1986–87 वित्तीय वर्ष में क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को कुल 80.32 करोड़ रु0 तक की मध्यावधि सीमायें स्वीकृत की गयीं।

मध्यकालीन विनियोग उद्देश्यों के लिये राज्य सहकारी बैकों को 1992–93 में कुल 157 करोड़ रु0 के तथा 1993–94 में 33 करोड़ के ऋण

स्वीकृत किये गये। नाबार्ड ने यह प्रावधान रखा कि मध्कालीन ऋणों का कम से कम 50% भाग लघु व सीमान्त कृषकों को दिया जायेगा। फसलों की क्षति के कारण अल्पावधि ऋणों को दीर्घकालीन ऋणों में परिवर्तित करने के लिये ऋण प्रदान किये गये। सहकारी समितियों की अंशपूंजी में भाग लेने के उद्देश्य से राज्य सरकारों को ऋण दिये गये।

मध्यकालीन ऋण की बाकाया राशि -

1992–93 – 238 करोड़ रु0

1995–96 – 210 करोड़ रु0 28 करोड़ रु0 घर गई

1996–97 – 228 करोड़ रु0

सन् 1995–96 में मध्यावधि परियोजना ऋण तथा दीर्घावधि ऋण मिलाकर 11,145 करोड़ रु0 थे जो 1996–97 में बढ़कर 12,359 करोड़ रु0 हो गये।

सामान्यतया नाबार्ड, बैंकों को इस बात के लिये प्रेरित करता है कि वे योजनायें तैयार करके आयें, और अपने सावधि ऋण संवितरण कें समक्ष निवेश पुनर्वित्त प्राप्त करें। परिणामतः गैर–योजनाबद्ध प्रयोजनों के लिये पुर्नवित्त सहायता की स्वीकृत में पर्याप्त कमी आई है। जनवरी से दिसम्बर 1997 के मध्य अनुमोदित कृषि प्रयोजनों/कार्यों के लिये वित्त पोषण प्रदान करने हेतु राज्य सहकारी बैकों की प्राकृतिक आपदाओं के कारण अल्पावधि फसली ऋणों की मध्यावधि परिवर्तन के लिये 45 करोड़ रु0 की सीमा स्वीकृत की गई।

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) और दीर्घकालीन ऋण -

समन्वित ग्राम विकासार्थ नाबार्ड कृषि, छोटे उद्योगों, कुटीर तथा ग्राम उद्योगों, हस्तशिल्पों और ग्रामीण शिल्पकारियों तथा सम्बन्धित क्रियाओं के सभी प्रकार के उत्पादन एवं विनियोग के लिये पुर्नवित्त संस्थान के रुप में कार्य करते हुये राज्य सरकारों को 20 से 25 वर्ष तक का दीर्घकालीन ऋण देता है, जिससे वे सहकारी उधार समितियों की हिस्सा पूंजी में योगदान दे सके।

यह केन्द्र सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी संस्थान को दीर्घकालीन उधार देता है या फिर कृषि एवं ग्राम विकास से सम्बन्धित किसी भी संस्थान को अंशपूंजी या प्रतिभूतियों में विनियोग में योगदान दे सकता है। नाबार्ड राज्य सरकारों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है, जिससे वे सहकारी साख संस्थानों की अंशपूंजी में योगदान कर सकें।

नाबार्ड द्वारा उद्देश्यानुसार दिये गये ऋणों में छोटी सिंचाई योजनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। 1997–98 में छोटी सिंचाई योजनाओं के लिये 13 प्रतिशत राशि को स्वीकृत दी गई जबकि 1992–93 में यह राशि 23.7 प्रतिशत थी जैसा के निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होता है –:

तालिका संख्या - ३७

नाबार्ड द्वारा उद्देश्यानुसार पुनर्वित्त सहायता

प्रयोजन	1992–93		1997–98	
	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत
1. छोटी सिंचाई	560	23.7	520	13.3
2. भूमि विकास	10	0.4	60	1.5
3. फार्म यन्त्रीकरण	520	22.0	1,110	1.5
4. बागान/उद्यानकृषि	100	4.2	190	4.8
5. मुर्गी पालन, भेड़ पालन सुअर पालन, एवं मत्स्य	90	3.8	230	5.9
6. दुग्धशाला विकास	100	4.2	350	8.9
7. समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम	650	27.6	610	15.6
8. अन्य	330	14.0	850	21.2
कुल योग	2,360	100.00	3,920	100,00

स्त्रोत –: भारतीय रिजर्व बैंक, करेंन्सी एवं वित्त रिपोर्ट (1997–98)

भारतीय अर्थव्यवस्था – सुन्दरम एवं दत्त पृष्ठ सं0 450

नाबार्ड द्वारा पुनर्वित्त के लिये फार्म यन्त्रीकरण एक मुख्य क्षेत्र रहा है। समन्वित ग्राम विकास का विशेष उद्देश्य ग्राम–समुदाय को पुनर्वित्त उपलब्ध कराकर कमजोर वर्गों की सहायता करना है। भूमि विकास, बागान एवं उद्यान–कृषि, मुर्गीपालन, भेड़पालन आदि नाबार्ड द्वारा वित्त उपलब्ध कराई

जाने वाली अधिक महत्वपूर्ण योजनायें हैं।

नाबार्ड, व्यापारिक बैकों, राज्य सहकारी बैकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों तथा राज्य भूमि विकास बैकों को 25 वर्ष की अवधि के लिये दीर्घकालीन पुनर्वित्त सहायता देता है। ये ऋण उपरोक्त पृष्ठाकिंत मदों के लिये किये जाते हैं। सन् 1982–83 में 4957 योजनायें स्वीकार की गई तथा वायदो की राशि 1019 करोड़ रु0 थी 1983–84 में 4961 योजनायें स्वीकार की गई तथा वायदें की राशि 1170 करोड़ रु0 थी।

1983–84 में नाबार्ड द्वार दी गई पुर्नवित्त सहायता 892 करोड़ रु0 की थी जबकि इससे पिछले वर्ष यह राशि 703 करोड़ रु0 थी जो 1983–84 की पुर्नवित्त सहायता से 28% कम थी। 30 जून 1984 को संचय वितरण 43,761 करोड़ रु0 था। इस प्रकार दी गई यह धनराशि का राज्यानुसार विश्लेषण करने पर सबसे अधिक 130 करोड़ रु0 उत्तर प्रदेश को दिये गये। पंजाब को 110 करोड़ रु0 आन्ध्र प्रदेश को 98 करोड़ रु0 और महराष्ट्र को 82 करोड़ रु0 वितरित किये गये, जबकि 1983–84 में 357 करोड़ रु0 का वितरण उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हिमांचल प्रदेश व जम्मू कश्मीर जैसे कम विकसित राज्यों में किया गया। सन् 1986–87 में नाबार्ड ने 10,099 योजनायें स्वीकृति की तथा वायदों की घनराशि 1483 करोड़ थी।

1997–98 में 16 राज्य सरकारों को अंशपूंजी में अंशदान के लिये 150 करोड़ रु0 का दीर्घावधि ऋण दिये गये। इसी वर्ष योजनाबद्ध ऋण कार्यक्रम के अन्तर्गत आरम्भ में 3716 करोड़ रु0 आवंटित किये गये, जबकि वास्तविक वितरण 3922 करोड़ रु0 का हुआ।

एक अन्य तालिक के अनुसार नाबार्ड द्वारा दी जाने वाली पुनर्वित्त सहायता का तुलनात्मक 15 वर्षीय प्रयोजनवार विवरण निम्नप्रकार से है –:

तालिका संख्या - ३८

प्रयोजन	1983–84		1986–87		1997–98	
	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत
1. लघु सिंचाई	312	35	460	35	524	13
2. भूमि विकास	29	3	26	2.0	59	20
3. कृषि मशीनीकरण	204	23	192	14.0	1,099	28
4. बागान / बागवानी	33	5	68	5	186	5
5. भण्डार	3	–	18	1.0	14	0
6. बाजार केन्द	6	1	8	0.6	–	–
7. बन उद्योग	–	–	9	0.7	11	0
8. एकीकृत ग्रामीण	233	26	379	28.0	611	16
9. अन्य	62	7	174	13.7	1,418	36
योग	892	100	1334	100.0	3922	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि तुलनात्मक दृष्टिकोण से अधिक पुनर्वित सहायता लघु सिंचाई, कृषि मशीनीकरण तथा एकीकरण व ग्रामीण विकास के लिये दी जाती है। एक अन्य तथ्य यह भी उजागर होता है कि जब कोई भी योजना प्रारम्भ की जाती है तो उपलब्धियों के प्रतिशत में उत्तरोत्तर कमी आती जाती है या यूं कह लें कि शनैः–शनैः योजनाओं का आकर्षण एवं महत्व कम लगने लगता है जिसके कारण एक उदासीन भाव के साथ कार्यक्रम मात्र चलाये भर जाते हैं।

नावार्ड, व्यापारिक बैंकों, राज्य सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा राज्य भूमि विकास बैंकों को 25 वर्ष की अवधि के लिये दीर्घकालीन पुनर्वित सहायता देता है। ये ऋण उपरोक्त पृष्ठाकिंत मदों के लिये दिये जाते है। सन 1982–83 में 4957 योजनायें स्वीकार की गयीं तथा वायदों की राशि 1019 करोड़ रूपये थी। 1983–84 में 4961 योजनायें मंजूर की गयी तथा वायदें की राशि 1170 करोड़ रू0 थी।

1983–84 में नाबार्ड द्वारा दी गई पुनर्वित सहायता 892 करोड़

रू0 की थी जबकि इससे पिछले वर्ष यह राशि 703 करोड़ रू0 थी, जो 1983–84 की पुनर्वित सहायता से 28 प्रतिशत कम थी। 30 जून 1984 को संचय वितरण 43,761 करोड़ रू0 थी। इस प्रकार दी गई यह धनराशि का राज्यानुसार विश्लेषण करने पर सबसे अधिक 130 करोड़ रू0 उत्तर प्रदेश को दी गयी। पंजाब को 110 करोड़ रू0, आन्ध्र प्रदेश को 98 करोड़ रू0 और महाराष्ट्र को 82 करोड़ रू0 वितरित किये गये, जबकि 1983–84 में 357 करोड़ रू0 का वितरण उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमांचल प्रदेश व जम्भू कशमीर जैसे कम विकसित राज्यों को किया गया। सन् 1986–87 में नाबार्ड ने 10,099 योजनायें स्वीकार की तथा वायदों की धनराशि 1483 करोड़ रू0 थी।

1997–98 में 16 राज्य सरकारों को अंश पूंजी में अंशदान के लिये 150 करोड़ रू0 दीर्घावाधि ऋण के रूप में दिये गये। इसी वर्ष योजनावद्ध ऋण कार्यक्रम के अन्तर्गत आरम्भ में 3716 करोड़ रू0 आवंटित किये गये, जबकि वास्तविक वितरण 3922 करोड़ रू0 का हुआ।

जिला सहकारी बैंक या केन्द्रीय बैंक व मध्यकालीन साख

परम्परा से भारतीय कृषक की मध्यकालीन व दीर्धकालीन ऋण की आवश्यकतायें महाजन या साहूकार ही पूरी करता आया है, परन्तु सहकारी संस्थाओं के क्रमिक विकास व प्रगति के साथ केन्द्रीय बैंक किसी हद तक प्राथमिक सहकारी साख समितियों के माध्यम से कृषक की इन मध्यकालीन साख की आवश्यकताओं को पूरा करने लगा है। केन्द्रीय सहकारी बैंकों के तीन स्वरुप देखने को मिलते हैं। इनका विषद विवरण पूर्व अध्याय में किया जा चुका है। इन बैकों में से मिश्रित स्वरुप वाले बैंक सर्वाधिक सफल हुये हैं। इस प्रकार के बैंकों की सदस्यता व्यक्तियों व प्राथमिक सहकारी समितियों दोनों के लिये खुली रहती है। ये केन्द्रीय बैंक 1 वर्ष से 5 वर्ष तक के लिये मध्यकालीन ऋण निम्नांकित कार्यों के लिये देते हैं –:

1. कुंऐ खुदवाने एवं उनमें सुधार करने के लिये।
2. पम्पंगि सेट लगवाने के लिये।
3. पशुधन खरीदने के लिये।
4. भूमि में साधारण सुधार करवाने के लिये।
5. अन्य कृषि कार्यों के लिये।
6. फसलों का विपणन करने के लिये।

मध्यकालीन ऋणों की मात्रा तुलनात्मक रुप से अल्पकालीन ऋणों से कम ही है। केन्द्रीय बैंक के कुल ऋणों में मध्यकालीन ऋणों का भाग 12% है।

तालिका संख्या - ३९

मध्यकालीन ऋण (करोड़ रुपयों में)

	1965–66	1981–82	1997–98
1. कुयें खुदवाना एवं सुधारना	4	7.69	8.00
2. सिंचाई एवं पम्पिंग सेट क्रय	4	13.14	15.17
3. जानवर क्रय	13	19.32	20.34
4. भूमि पर साधारण सुधार	4	1.16	1.80
5. अन्य कृषि कार्य	5	17.55	20.40
6. अन्य उद्देश्य	10	344.60	338.21
योग	**40**	**403.45**	**418.40**

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ 210*

केन्द्रीय सहकारी बैकों के अपने मध्यकालीन साधन समिति होने के कारण उन्हें मुख्यतया उच्चतर वित्त संस्थाओं, यथा नाबार्ड, राज्य सहकारी बैंक, सहकारी भूमि विकास बैकों पर निर्भर रहना पड़ता है। चूँकि शीर्ष बैकों से वर्ष के प्रारम्भ में ही इन्हें मध्यकालीन या दीर्धकालीन सहायता सम्बन्धी निश्चित आश्वासन नहीं मिलता है, इसलिये केन्द्रीय सहकारी बैंक प्राथमिक सहकारी समितियों को ऋण देने की निश्चित योजना नहीं बना पाते हैं।

राज्य सहकारी बैंक व केन्द्रीय बैंक रिजर्व बैंक से पर्याप्त मध्यकालीन ऋण सुविधा की मांग करते हैं, परन्तु रिजर्व बैक के पक्ष में गारन्टी देने में अति विलम्ब हो जाता रहा है, अस्तु राज्य सहकारी बैंक व केन्द्रीय सहकारी बैंक रिजर्व बैंक से ऋण प्राप्त करने में असमर्थ हो गये हैं। इसके अतिरिक्त चूंकि केन्द्रीय बैकों द्वारा मध्यकालीन ऋण वितरण के लिये कोई उपयुक्त नियोजन नहीं किया जाता, इसीलिये इस प्रकार के उपेक्षाभाव के चलते मध्यकालीन ऋण सरलता से प्रदान नहीं किये जा पाते हैं।

कुछ केन्द्रीय बैकों के लिये रिजर्व बैंक ने जो आधारभूत स्तर निर्धारित किया था, वह सर्वथा अनुचित व ऊँचा था। इस ऊँचे स्तर ने एक बाधा के रुप में कार्य किया, क्योंकि अनेक सहकारी बैकों के लिये अपने निजी साधनों से आधार भूत स्तर को बनाये रखना कठिन हो गया।

आधारभूत स्तर को बनायें रखने के अतिरिक्त केन्द्रीय बैकों से यह आशा की गई कि वे आधार भूत स्तर से ऊपर जो ऋण दें उसके 20 प्रतिशत की पूर्ति निजी साधनों से करेंगे, और शेष 80% की पूर्ति (रिअम्बर्समेन्ट) के लिये आवेदन करेंगे। इससे केन्द्रीय बैकों की कठिनाइयाँ और भी बढ़ गई।

इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक ने केन्द्रीय सहकारी बैकों द्वारा पम्प सैटों, बन्धी निर्माण, बागबानी के लिये भूमि तैयारी आदि उद्देश्यों के हेतु ऋण

देने पर आपत्ति उठाई, जिससे केन्द्रीय बैंक मध्यकालीन ऋणों के भाग की आपूर्ति रिजर्व बैंक से नहीं करा पायें।

सन् 1997–98 में मौसमी कृषि कार्यो के लिये 6.2 करोड़ रु0 व 402.96 करोड़ रुपये फसलों के विपणन के लिये दिये गये। उपभोग ऋण 80. 21 करोड़ रु0 के थे। पम्पिंग सेट के लिये 15.17 करोड़ रु0 व भूमि सुधार के लिये 1.80 करोड़ रु0 दिया गये। जैसा के पूर्व तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

अतिदेय -:

इन मध्यकालीन ऋणों को देने का परिणाम यह हुआ कि अवधिपार ऋणों की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती गई। 1950–51 में अवधिपार ऋण 3 करोड़ रु0 थे, जो 1997–98 में बढ़कर 1520 करोड़ रु0 के बराबर हो गये। बकाया ऋणों में इन अवधिपार ऋणों का अनुपात 9% से बढ़कर 29% हो गया। यही नहीं, असम, जम्मू कश्मीर, उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान में तो यह अनुपात और भी अधिक था। महाराष्ट्र जैसे विकसित प्रदेश में भी अवधि–पार ऋणों की राशि कुल शेष ऋणों की राशि के 25% के बराबर थी।

अस्तु एक गम्भीर समस्या एवं चुनौती केन्द्रीय सहकारी बैकों के समक्ष थी। इससे कैसे निपटा जाय यह एक महत्वपूर्ण समस्या थी क्यों कि यह सहकारी आन्दोलन की नींव पर एक प्राकर से कुठाराघात साबित हो रहा थी।

ग्रामीण साख सर्वेक्षण कमेटी तथा सहकारी साख पर नियुक्त मेहता कमेटी ने इस भयावह स्थिति से उबरने के लिये निम्नाँकित सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

1.. निरीक्षण का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सहकारी बैंकों पर होना चाहिये।
2. यदि निरीक्षण कार्य किसी अन्य संस्था द्वारा किया जा रहा हो तो उसे केन्द्रीय बैकों को हस्ताँतरित कर देना चाहिये।

3. प्रत्येक 20 सहकारी समितियों के लिये एक निरीक्षक तथा प्रत्येक 80 निरीक्षकों पर एक वरिष्ठ निरीक्षक की नियुक्ति की जानी चाहिये।

4. यदि केन्द्रीय बैंक इस स्तर के निरीक्षकों की नियुक्ति करने में असमर्थ हैं, तो सारकार को इस उद्देश्य के लिये उन्हें उचित अनुदान देना चाहिये।

वर्तमान स्थिति -:

31 मार्च 1998 को केन्द्रीय बैकों की स्थिति निम्न प्रकार थी।

तालिका संख्या - ४०

केन्द्रीय सहकारी बैकों की स्थिति (1998)

1.	संख्या	363
2.	सदस्यता (हजारों में)	986
3.	स्वाधिकृत निधियाँ	3298 करोड़ रु0
4.	जमायें	20,409 करोड़ रु0
5.	कार्यशील पूंजी	34,696 करोड़ रु0
6.	अग्रिम -:	
	अल्पकालीन	19,120 करोड़ रु0
	मध्यकालीन	2,500 करोड़ रु0
7.	बकाया ऋण -:	
	अल्पकालीन	14,900 करोड़ रु0
	मध्यकालीन	5,751 करोड़ रु0
8.	अतिदेय -:	
	अल्पकालीन	4,057 करोड़ रु0
	मध्यकालीन	1,096 करोड़ रु0

स्त्रोत -: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 212*

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक व उनका स्वरूप

राष्ट्रपिता बापू ने बहुत पहले कहा था कि अगर भारत का विकास चाहते हो तो गांवों का विकास सर्वप्रथम करना होगा। आज भी 50 वर्षों के पश्चात हमारी ग्रामीण जनसंख्या 70 करोड़ के आस–पास है। अस्तु विकासशील से विकसित भारत बनाने के लिये हमें इन ग्राम–वासियों का सामाजिक कायाकल्प करना होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लघु और सीमान्त कृषक, कृषि श्रमिक, कारीगर व छोटे उद्यमियों की ऋण एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना होगी। इन आवश्यकाताओं की प्राथमिकता के आधार पर यह निर्णय किया गया कि जिन पिछड़े या जनजाति क्षेत्रों में सहकारी या व्यापारिक बैकों की शाखाओं का विस्तार अभी तक कम हुआ है या नगण्य है वहाँ क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की स्थापना की जाय।

अतः भारतीय ग्रामीण साख आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु 26 दिसम्बर 1975 को एक अध्यादेश जारी किया गया, जिसके अन्तर्गत 50 क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की स्थापना की जानी थी। परिणामतः 2 अक्टूबर 1975 की उत्तर प्रदेश में 1 राजस्थान में 1, हरियाना में 1, व पश्चिमी बंगाल में 1 क्षेत्रीय ग्रामीण बैक की स्थापना की गई। 30 जून 1999 तक 23 राज्यों में 196 क्षेत्रीय बैकों की स्थापना की जा चुकी थी, जिनकी 14454 शाखायें 427 जिलों में कार्यरत थीं।

कार्यक्षेत्र -:

प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र में कार्य करेगा तथा आवश्यकतानुसार सम्बन्धित ग्रामीण क्षेत्रों में शाखायें खोलेगा। यथासम्भव बैंक में कार्य करने वाले कर्मचारियों का चयन स्थानीय व्यक्तियों से ही किया जायेगा, जिससे उन्हें ऋण प्राप्तकर्ताओं की वित्तीय आवश्यकतायें व समस्यायें समझने में सरलता होगी।

प्रगति -:

क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की शाखाओं की वृद्धि के साथ –साथ उनके द्वारा दिये गये ऋणों में वृद्धि हुई है। 2 अक्टूबर 1975 को इनकी संख्या 5 थी जो 1982 में बढ़कर 5117 तथा जून 1998 को 13568 हो गई। मार्च 1998 तक 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की स्थापना हो चुकी थी और 417 जिलों में इनकी 14728 शाखायें कार्यरत थीं।

ऋण विवरण -

इन बैकों द्वारा बिगत 12 वर्षो में निम्नलिखित ऋण वितरित किये –

तालिका संख्या - ४१

वर्ष	1985–86	1987–88	1989–90	1995–96	1996–97	1996–98
ऋण वितरण (करोड. रु0 में)	1510	2232	4719	11,553	16,174	19,499

स्त्रोत –: पूर्वालिखित *पृष्ठ संख्या 48*

क्षेत्रीय बैकों की पूंजी -:

प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की अधिकृत पूंजी 1 करोड़ निर्धारित की गई है। यह अधिकृत पूंजी केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक एवं समर्थक बैंक की सलाह से कम की जा सकती है किन्तु 25 लाख से कम किसी दशा में नहीं हो सकती। अस्तु प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की निर्गमन पूंजी 25 लाख रु0 में 50% केन्द्रीय सरकार 15% राज्य सरकार, एवं 35% समर्थक/प्रर्वतक बैंक द्वारा प्रदान की जायेगी। 12 जुलाई 1982 को इन बैकों का नियंत्रण रिजर्व बैंक ने राष्ट्रीय कृषि एवं ग्राम विकास बैंक अर्थात् नाबार्ड को सौंप दिया था।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा नाबार्ड -:

जुलाई 1982 से नाबार्ड की स्थापना के पश्चात् से क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को रिजर्व बैंक से मिलने वाली पुनर्वित्त सुविधा नाबार्ड से मिलने लगी।

1987–88 के मध्य 164 क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋण के रुप में 310 करोड़ रुपये के उधार की स्वीकृति दी गई। इन बैकों ने नाबार्ड से दीर्धकालीन ऋण भी प्राप्त किया है। नाबार्ड अब क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की पुनर्वित्त परियोजनाओं के प्रशासन, उनके कार्य निष्पादन की देखरेख तथा शाखा विस्तार तथा कानूनी निरीक्षण के लिये रिजर्व बैंक के साथ एक कड़ी का कार्य करेगा। जिससे क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों पर नियंत्रण, निरीक्षण होने से इन बैकों की शाखाओं का विस्तार सरलता व शीघ्रता से हो सकेगा।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों का मूल्याँकन -

रिजर्व बैक के प्रतिवेदन के अनुसार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक समाज के कमजोर वर्गो को संस्थागत साख दिलाने में सफल हुये हैं। परन्तु कुल मिलकर इनकी ऋण वसूली की प्रक्रिया संतोषजनक नहीं रही है। वित्तीय प्रणाली पर नरसिम्हन समिति ने इन बैकों का मूल्याँकन करते हुये निम्नाँकित विचार व्यक्त किये हैं–: ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों का उद्देश्य, ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य कर रहे व्यापारिक बैकों के विकल्प के रुप में कम लागत कर वाली संस्था की स्थापना करना था परन्तु दुर्भायवश ऐसा नहीं हो पाया।'' समिति के अनुसार इन बैकों की तीन प्रमुख समस्यायें हैं –:

1. इन बैकों में अनेक सीमा बन्धन होने के कारण आय कमाने की क्षमता कम है।
2. जिस ध्येय को लेकर ये बैंक स्थापित किये गये थे वह नये वेतनमान, मजदूरी तथा लागतों में वृद्धि होने के कारण पूरे नहीं हो पा रहे हैं। इस वृद्धि से इन बैकों की उपदेयता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है।
3. इन क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की अधिकतर शाखाओं को प्रवर्तक बैंक (स्पोन्सरिंग बैंक) अपनी शाखाओं द्वारा चला रहे हैं, जिससे अनेक व्ययों में वृद्धि हो रही है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की प्रमुख समस्यायें -

क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की प्रमुख समस्यों निम्नलिखित हैं –:

1. कुशल व प्रशिक्षित कर्मचारियों को अभाव।
2. अनुभवी कर्मचारियों का अभाव।
3. प्रशिक्षण व्यवस्था की अपर्याप्तता।
4. **अनुत्पादक ऋण –**

चूंकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ऐसे क्षेत्रों में खोले जाते हैं जहाँ अधिकांश जनता गरीब है, अतः उनके लिये उत्पादक के साथ–साथ अनुपात्दक ऋणों की भी आवश्यकता है यथा शादी चिकित्सा, धार्मिक अनुष्ठान यथा श्राद्ध आदि। यदि इन अनुत्पादक कार्यो के लिये, इन्हें ऋण नही दिया जायेगा तो वे पुनः महाजनों के चंगुल में फंस जायेगें। अस्तु अनुत्पादक कार्यो के लिये ऋण देना अपरिहार्य सा है।

5. **ऊँची ब्याज की दर –**

वस्तुतः इन बैकों की ऊँची ब्याज दर एक दुखद पहलू कहा जा सकता है और इस कारण जिस पुनीत उद्देश्य से ये बैक स्थापित किये गये थे वह व्यर्थ ही सिद्ध हुये हैं।

6. ऋण की वापसी या वसूली समय पर न होना।
7. **तरलता अनुपात को अनदेखा करना –**

इसका तात्पर्य यह है कि ग्रामीणों द्वारा जो राशियाँ जमा की गई, ऋण उससे कहीं अधिक दिये गये हैं। दूसरे शब्दों में तात्पर्य यह हुआ कि ये बैंक जितनी राशि ऋण के रुप में जमा राशि के अनुपात में दे सकते थे उससे कहीं अधिक ऋण दिये गये हैं, जो चिन्तनीय है।

8. जमा राशि का संग्रह आशा के अनुरुप नहीं रहा जो प्रत्येक शाखा में एक वर्ष में कम से कम 5 लाख रु0 होना चाहिये।

सुधार के प्रयास -:

ग्रामीण बैकों की स्थापना के आज 25 वर्ष से अधिक हो गये हैं परन्तु इनकी आर्थिक स्थित व कार्यशैली की असंतोषजनक दशा को ध्यान में रखकर दाँतवाला समिति, नरसिम्हा समिति (क्रेंफीकार्ड) व कृषि वित्त निगम अध्ययन दल ने इन बैकों के कार्यकलापों की समीक्षा की तथा सुधार के लिये अनेक उपयोगी व व्यवहारिक सुझाव प्रस्तुत किये हैं -:

दाँतवाला समिति के अनुसार क्षेत्रीय ग्रामीण बैक ग्रामीण ऋण ढाँचे के महत्वपूर्ण अंग हैं। सुधार के लिये समिति का कहना था के वे ग्रामीण क्षेत्र जहाँ साथ-साथ व्यापारिक बैंक भी कार्यरत हैं, उन्हें शनैः शनैः अपना सभी व्यापार इन बैकों की क्षमता के अनुसार इन्हें हस्ताँतरित कर देना चाहिये। इससे अनावश्यक स्पर्धा व दुहरे खर्च बचेंगें तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को कार्य मिलेगा व इनकी जमाराशि भी बढ़ सकेगी। नरसिम्हन समिति ने मार्च 1981 में रिजर्व बैंक को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इसका मत था कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को अपना कार्यक्षेत्र ग्रामीण क्षेत्र के निर्बल वर्ग तक ही समिति रखना चाहिये। ग्रामीण क्षेत्रों में नई शाखायें खोलने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को वरीयता प्रदान की जानी चाहिये। नरसिम्हन समिति की यह भी सिफारिश थी के क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को अपनी ग्रामीण शाखाओं के विनियमन की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। कृषि वित्त निगम अध्ययन दल सन 1984 में क्षेत्रीय ग्रामीण वैकों के कार्यकलापों का विस्तार से अध्ययन करने के पश्चात इनकी प्रगति पर संतोष व्यक्त करते हुये सुझाव दिया कि इन बैकों को अपना ध्यान ग्रामीण क्षेत्र के निचले तबके के लोगों की साख सम्बन्धी आवश्यकताओं में ही पूर्ण रूपेण लगाना चाहिये। परन्तु वित्तीय समर्थता के विस्तार के लिये प्रत्येक 25 ग्रामीण शाखाओं पर 1 शहरी शाखा खोलने का सुझाव भी प्रस्तुत किया।

मिनी बैंक

भारतीय योजनात्मक अर्थ व्यवस्था का प्रधान उद्देश्य सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास करना है। ग्रामींण क्षेत्र में रहने वालों की बड़ी संख्या आर्थिक दृष्टि से कमजोर है। भारत के संविधान में जन जातियाँ और अनुसूचित जातियाँ ही केवल निर्बल नहीं हैं वरन् बुनकर, बढ़ई, कुम्हार और बंजारों जैसे परम्परागत करीगर, भूमिहीन खेतिहर मजदूर और अनेक छोटे कृषक भी इसी श्रेणी में आते हैं। इतने अधिक लोगों के विकास कार्यक्रम में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि साधनों का इतना विस्तार न किया जाय जिससे उनके रहन–सहन में की स्थिति में कोई सुधार न हो सके। इस बात को ध्यान में रखते हुये ऐसे कार्यक्रम बनाये गये हैं जिनसे निर्बल वर्ग को लाभ मिल सके।

मिनी बैकों की स्थापना इसी हेतु की गई है। ग्रामीण समितियों को स्वावलम्बी बनाने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बैकिंग सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से जो समिति निबंधक, सहकारी समितियों द्वारा निर्धारित मानकों को पूरा करती है, वहाँ मिनी बैकों की स्थापना की गई है। यह मिनी बैंक ग्राहकों को बचत खाता, सावधि निक्षेप खाता के अन्तर्गत एक या दो वर्षो के लिये निक्षेप जमा करने की सुविधा प्रदान करती है। वर्ष 2000–2001 तक प्रदेश में 1928 मिनी बैंक स्थापित किये जा चुके थे इनमें कुल घनारशि 83.06 करोड़ रु0 जमा थी। उत्तर प्रदेश का विभाजन हो जाने पर उत्तराँचल की संख्या को हटाकर प्रदेश के 12 मण्डलों में इनकी संख्या 1736 थी तथा कुल धनराशि जो जमा थी वह 56.39 करोड़ रु0 थी।

अन्ततः डा0 ए0 एम0 खुसरो की अध्यक्षता में गठित ''कृषि उधार समीक्षा समिति'' का मत था कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की कमजोरियाँ अन्तर्निहित हैं और अक्षमता उनके संगठनात्मक ढ़ाँचे का अंग है। अतः क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे समाज के सबसे बड़े वर्ग अर्थात निर्बल ग्रामीण, लघु व सीमन्त कृषकों, ग्रामीण कारीगरों की सेवा प्रत्याशित ढंग से कर पायेगें। अति निराशात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुये उन्होंने यह भी कहा कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों का निकट भविष्य में कोई स्थान नहीं है और इनका प्रवर्तक (स्पोन्सर) बैकों के साथ विलय कर देना चाहिये।

परन्तु मेरे विचार से गरीबी उन्मूलन तथा ग्रामींण उत्थान व पुनर्निर्माण के लिये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एक महत्वपूर्ण संस्था हैं। आवश्यकता यह है कि जिन उद्देश्यों व जिन मूल सिद्धांन्तों को आधार मानकर इनकी स्थापना की गई थी, वे उनका पालन अधिकाधिक करने का प्रयास करें। सरकार का भी उत्तरदायित्व है कि वह इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराकर इनके विकास की गति बनाये रखें जिससे कि इन बैकों को अभी जो एक लम्बी दूरी तय करनी है, वह सम्भव हो सके।

नाबार्ड द्वारा मिनी बैकों के अवस्थापना मद हेतु 100 करोड़ रु0 की वित्तीय सहायता अलमारी व फर्नीचर आदि की व्यवस्था के लिये ग्रान्ट के रुप में प्रदान की गई। इसके अन्तर्गत नाबार्ड द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार 200 प्राथमिक समितियों का चयन किया गया है। नाबार्ड द्वारा स्वीकृत धनराशि के सापेक्ष 65.97 लाख रु0 का उपभोग किया जा चुका है।

मिनी बैकों में निक्षेपकर्ताओं का विश्वास जागृत कराने एवं निक्षेप की धनराशि को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से निक्षेप गारन्टी योजना राज्य सरकार की स्वीकृति से लागू की गई है जिसके अन्तर्गत एक खाते में अधिकतम गारन्टी की धनराशि ब्याज सहित 5 हजार रु0 तक होगी। इस हेतु जिला स्तर पर, जिला सहकारी बैक द्वारा एक 'कारपस' निधि खोली गई है जिसमें निम्न प्रकार का अंशदान किया जा रहा है –:

1. प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समित द्वारा विगत 31 मार्च तक जमा निक्षेप का 0.15%
2. जिला सहकारी बैंक द्वारा, प्राथमिक सहकारी समिति में विगत 31 मार्च तक जमा निक्षेप का 0.05%
3. राज्य सरकार द्वारा प्राथमिक समिति में विगत 31 मार्च को पैक्स की व्यवस्था में वृद्धि करने एवं लाभप्रदता में वृद्धि हेतु प्रदेश में 7613 पैक्स को व्यवसाय योजना से आच्छादित किया गया है। वर्ष 2001–02 में 7613 पैक्स (समूह) में से 5183 की व्यवसाय विकास योजना तैयार कराई गई है। शीर्ष बैंक स्तर पर योजना की समीक्षा की जा रही है।

प्रदेश के 12 मण्डलों में मिनी बैकों की प्रगति निम्नाँकित है –:

तालिका संख्या - ४२

मिनी बैंकों की प्रगति व निक्षेप का मण्डलानुसार विवरण

(लाखों में)

क्र0 सं0	मण्डल का नाम	मिनी बैंकों की संख्या	माह के अन्त में निक्षेप			खातों की संख्या	डी0सी0बी0 में निवेशित धनराशि		
			बचत खाता	सावधि खाता	योग		सावधि खाता	विशेष खाता	बचत खाता
1.	लखनऊ	255	492.78	176.76	669.54	46916	283.40	306.15	45.31
2.	फैजाबाद	191	180.55	164.84	345.39	32868	160.88	129.72	52.09
3.	बाराणसी	168	447.88	267.63	715.61	32975	175.51	442.82	59.47
4.	आजमगढ	121	202.88	136.51	341.39	29133	185.86	99.61	16.13
5.	गोरखपुर	116	142.78	108.29	281.07	27698	90.47	90.06	97.64
6.	इलाहाबाद	171	390.53	72.85	763.38	20664	97.87	223.53	9.20
7.	कानपुर	69	69.82	22.33	92.15	8606	36.71	13.71	39.85
8.	झांसी	114	183.72	121.69	305.41	18950	120.56	140.53	39.20
9.	आगरा	93	46.65	34.71	81.36	5247	28.47	44.21	6.03
10.	मेरठ	184	651.64	386.77	1038.41	31004	227.58	765.92	16.67
11.	बरेली	147	85.50	19.61	105.11	9746	20.06	42.51	36.86
12.	मुरादाबाद	107	422.20	194.34	616.54	22398	86.37	461.40	69.09
13.	जनपद जालौन	28	123.80	91.41	215.23	10725	73.10	138.09	0.00

स्रोत – टाइप किये हुये संमक (कोआपरेटिव युनियन के कार्यालय से प्राप्त)

भूमि बंधक/भूमि विकास बैंक एवं दीर्धकालीन साख (ऋण) स्वरुप

अखिल भारतीय साख समीक्षा समिति के अनुसार –: ''अब भूमि विकास बैंक विस्तार के एक महत्वाकाँक्षापूर्ण कार्यक्रम के लिये उपयुक्त स्थिति में हो गये हैं।''

कृषकों को तीन प्रकार के ऋणों यथा अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्धकालीन की आवश्यकता होती है। अल्पकालीन ऋण जों 1 वर्ष या 15 माह तक के लिये होता है, बीच, खाद, जुताई, बुआई, सिंचाई, व कुछ घरेलू व्ययों के लिये लिया जाता है। यह ऋण उन्हें प्राथमिक सहकारी साख समितियों द्वारा मिल जाता है। मध्यकालीन ऋण जो 2 वर्ष से 5 वर्ष तक के लिये लिया जाता है, जिससे बैल गाय, अच्छे कृषि यंत्र क्रय करने, कुयें खुदवाने या मरम्मत करवाने, बांध डलवाने आदि के लिये लिया जाता है यह ऋण कृषकों को केन्द्रीय सहकारी बैंक या भूमि विकास बैंक के माध्यम से नाबार्ड जैसी संस्था से सुलभ हो जाता है। कृषकों को फसली कार्या के अतिरिक्त नलकूप लगवाने, उन्नत बड़े कृषि यन्त्र जैसे ट्रेकटर आदि लेने बन्धक भूमि को छुड़ाने या पुराने पैतृक कर्ज को चुकाने के लिये या अपनी आय में वृद्धि के लिये दीर्धकालीन साख में 5 से 15 या 20 वर्ष तक के लिये होती है कम ब्याज दर दीर्धकालीन ऋण की आवश्यकता होती है।

लघु कृषक या सीमान्त कृषक दीर्धकालीन ऋण नाबार्ड के अतिरिक्त किसी भी केन्द्रीय या राज्य सहकारी बैंक से प्राप्त नहीं कर पाते। नाबार्ड भी उन्हें एक सीमा तक ही केन्द्रीय या राज्य सहकारी बैंकों के माध्यम से ऋण प्रदान कर सकता हैं। व्यापारिक बैंक भी दीर्धकालीन ऋण देने में असमर्थ ही रहते हैं। वे तो प्रायः अल्पकालीन जमानते लेकर रुपया जमा करते हैं, इसीलिये वे अपना धन किसानों पर दीर्धकालीन ऋण देकर रोक नहीं सकते। इसके

अतिरिक्त व्यापारिक बैंक किसानों को ऋण देना अपना कर्तव्य या व्यापार का अंग नहीं मानते। इसका एक कारण और भी रहा है। कहावत है 'दुध का जला छाछ भी फूंक –फूंक कर ही पीता है।' सरकार के द्वारा इन पर थोपी गई अग्रणीं बैंक योजना (लीड बैक स्कीम 1969) के परिणामस्वरुप अनेक व्यापारिक बैकों को सरकारी आदेश के कारण ऋण के लिये रुपया देना तो पड़ा लेकिन उसकी वसूली नहीं हो पाई, और न हो पा रही है, अस्तु अवधिपार व संदिग्ध ऋणों से इन बैकों की दशा दिवालिया होने की स्थिति में आ गई है। संयुक्त पूंजी वाले बैंक भी इस तरह से किसान के साथ लेन–देन को लाभदायक नहीं समझते हैं और किश्तों में ऋण की वापसी को पसन्द नहीं करते। अतः दीर्धकालीन ऋण के लिये विश्व के अधिकांश देशों में अलग संस्थायें खोली गई हैं। भारत वर्ष में भी 1926 में सहकारी रजिस्ट्रार सम्मेलन मे भूमिबन्धक बैक को यह कार्य करने का सुझाव दिया गया था, जिसका अनुमोदन केन्द्रीय बैंकिग जाँच समिति तथा शाही कृषि आयोग ने भी किया था। अनुभव से यह पाया गया है कि भूमि बन्धक/विकास बैंक ही कृषकों को दीर्धकालीन ऋण देने की सर्वोत्तम संस्थायें हैं। सन् 1947 में ग्रामीण बैंकिंग जाँच समिति ने इन्हें कृषकों को दीर्धकालीन ऋण देने की सर्वाधिक उपयुक्त संस्था माना था। इसी संदर्भ में 1954 में अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने अपना मत निम्न शब्दों में व्यक्त किया था –''मजबूत केन्द्रीय एवं प्राथमिक भूमि बन्धक (विकास) बैंक देश के कृषि विकास के लिये सर्वाधिक आवश्यक हैं।''

भूमि बन्धक/भूमि विकास बैकों का वर्गीकरण -

भारतीय बैंकिग जाँच समिति ने भूमि विकास बैकों को तीन वर्गों में विभाजित किया है –:

1. सहकारी भूमि विकास बैंक,
2. संयुक्त पूंजी वाले भूमि विकास बैंक और

3. अर्धसहकारी भूमि विकास बैंक।

भूमि बन्धक/विकास बैकों का विकास -:

सर्वप्रथम सहकारी भूमि बन्धक बैंक (जिन्हें अब भूमि विकास बैंक कहते हैं) की स्थापना 1920 में झंग (अब पाकिस्तान में) नामक स्थान पर की गई, परन्तु भूमि बन्धक बैकिंग व्यवस्था का प्रारम्भ 1929 से माना जाता है जब मद्रास मे इस प्रकार का बैंक खुला। प्रथम योजना के प्रारम्भ में 1950–51 में 5 केन्द्रीय सहकारी भूमि बन्धक बैंक एवं 286 प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक कार्यरत थे। प्राथमिक भूमि बन्धक बैकों की सदस्यता 2.15 लाख थी। भूमि बन्धक वैकों की सदस्यता में 9000 व्यक्ति व 398 प्राथमिक समितियाँ सम्मिलित थी। इन बैकों की कार्यशील पूंजी 6.6 करोड़ रु0 थी व दिये गये ऋण 1.29 करोड़ रु0 शेष 6.26 करोड़ रु0 के ऋण थे।

उक्त असंतोषजनक स्थिति का प्रमुख कारण था कि भूमि बन्धक बैक या तो अपूर्ण थे या फिर अव्यवस्थित अथवा अविकसित थे। अधिकांश बैंकों ने पशु साख का आवटंन, पुराने ऋणों का भुगतान तथा भूमि को बन्धक से छुड़ाने के लिये ही ऋण दिये थे। इस कारण से कृषकों को कोई विशेष लाभ नहीं प्राप्त हुआ।

सहकारी भूमि बन्धक /विकास बैंकों की विशेषतायें -:

इन बैकों की प्रमुख विशेषतायें ये हैं कि ये दीर्घकाल के लिये धन प्राप्त करते हैं और दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकता वाले भागों में कृषि भूमि को बन्धक बनाकर उधार देते हैं। इसके लिये इन बैकों ने अपनी विशेष प्रक्रिया का विकास कर लिया है। इनकी निम्नलिखित विशेषतायें हैं –

1. ये दीर्घकाल के लिये रुपया प्राप्त करते हैं।
2. ये किसानों को दीर्घकालीन आवश्यकताओं के लिये भूमि बन्धक बनाकर

उधार देते हैं।

3. ये मुख्यतया ऋण पत्र (डिबेन्चर) जारीकर अपनी पूंजी बढ़ाते हैं।
4. राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में इनके महत्व व किसानों की विशेष सेवा के लिये सरकार इन्हें ऋणों की गारन्टी देती है।

भूमि बन्धक/विकास बैकों के कार्य -:

इन बैकों का प्रमुख कार्य बन्धक पर सदस्यों को ऋण देने के लिये निधि एकत्र करना है। इसके साथ–साथ इनका प्रमुख कार्य किसानों को निम्नांकित कार्यों के लिये दीर्घकालीन ऋण की सुविधायें प्रदान करना है –:

1. किसानों को बन्धक रखी गई कृषि भूमि को छुड़ाने के लिये।
2. कृषि भूमि एवं कृषि तरीकों में सुधार के लिये।
3. पुराने ऋण चुकाने के लिये।
4. भूमि खरीदने के लिये।

भूमि बन्धक/भूमि विकास बैकों का दीर्घकालीन साख का ढाँचा -:

अल्पकालीन साख के ढाँचे के विपरीत दीर्घकालीन साख का ढांचा सम्पूर्ण देश में समान नहीं है। विभिन्न राज्यों में इसकी सरंचना अलग–अलग होनें के कारण इनका संगठन व स्वरूप भी अलग–अलग है। इसी कारण से भारतवर्ष में चार प्रकार के भूमि विकास बैंक कार्यरत हैं –:

1. केन्द्रीय प्रकृति के भूमि विकास बैंक, जिनमें राज्य स्तर पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक होता हैं तथा तहसील स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक होता है।
2. ऐसे केन्द्रीय भूमि विकास बैंक जो प्राथमिक भूमि विकास बैकों व अपनी शाखाओं दोनों के माध्यम से सदस्यों को ऋण प्रदान करते हैं।
3. ऐसे केन्द्रीय भूमि विकास बैंक जो अपनी शाखाओं के माध्यम से सदस्यों को सीधे ऋण प्रदान करते हैं। अस्तु प्राथमिक भूमि विकास बैकों की

आवश्यकता नहीं होती है।

4. ऐसे केन्द्रीय भूमि विकास बैक जो शीर्ष बैकों के विभाग के रुप में कार्य करते हैं।

भारतवर्ष में अधिकांश राज्यों में द्विस्तरीय ढाँचा पाया जाता है। प्राथमिक भूमि विकास बैंक आधार इकाई होते हैं तथा राज्य स्तर पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक कार्यरत होते हैं, लेकिन केन्द्रीय भूमि विकास बैकों में व्यक्तियों को भी सदस्य बनाया जाता है।

भूमि बन्धक/भूमि विकास बैकों के वित्तीय साधन

चूंकि भूमि विकास बैंक दीर्घकालीन ऋण प्रदान करते हैं अतः इन्हें ऐसे साधनों से ऋण प्राप्त करना होता है जो दीर्घकालीन ऋण दे सके। इन बैकों को अंशपूंजी के रुप में बहुत कम धन प्राप्त हो पाता है। ये सामन्यतया जमायें भी नहीं स्वीकार करते, क्योंकि इनको दीर्घकालीन ऋण के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। अतः ये ऋण पत्र (डिवेन्चर) निर्गमित कर दीर्घकालीन ऋण प्राप्त करते हैं।

परन्तु प्राथमिक भूमि विकास बैंक ऋण पत्र जारी नहीं करते। भारत में केन्द्रीय भूमि विकास बैंक द्वारा तीन प्रकार के ऋण पत्र जारी किये जाते हैं– 1. साधारण ऋण पत्र 2. ग्रामीण ऋण पत्र तथा 3. विशेष ऋणपत्र। सन् 1965 तक भूमि विकास बैकों को अपने जारी ऋणपत्रों पर रिजर्व बैंक जीवन बीमा निगम व स्टेट बैंक द्वारा 20%, 30% व 10% की अधिकतम सीमा तक समर्थन मिला करता था, परन्तु आजकल ऋण पत्रों को भारत सरकार, राज्य सरकारें, जीवन बीमा निगम, स्टेट बैंक, व अन्य व्यापारिक बैकों द्वारा क्रय किया जाता है।

अस्तु केन्द्रीय भूमि विकास बैकों के वित्तीय साधन हैं – 1. अंश पूंजी, 2. जमा पर प्राप्त धन व 3. ऋण पत्र।

भूमि बन्धक/भूमि विकास बैकों की ऋण नीति एवं पद्धति

भूमि विकास बैंक एक निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही ऋण प्रदान करते हैं यथा –:

1. ऋण लेने के इच्छुक किसान द्वारा सदस्यता ग्रहण करना।
2. प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करना।
3. प्रार्थना पत्र की जाँच।
4. भारहीनता का सत्यापन (इसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि बन्धक रखी जाने वाली भूमि या सम्पत्ति पहले से तो नहीं बन्धक है।)
5. निरीक्षक द्वारा पुनः जाँच व अन्तिम स्वीकृति टिप्पणी।
6. कानूनी सलाह लेना।
7. भूमि–मूल्याँकन अधिकारी द्वारा जाँच।
8. प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक द्वारा ऋण की स्वीकृति।
9. केन्द्रीय भूमि विकास बैंक द्वारा पुनः जाँच।
10. कार्यकारणी द्वारा ऋण की स्वीकृति।
11. ऋण की अवधि अधिकतम 20 वर्ष तक के लिये होती है। ये ऋण ट्रेक्ट्रर खरीदने, भूमि सुधारने, नलकूप के लिये, पुराने ऋण चुकाने के लिये व सिंचाई व्यवस्था कि लिये दिये जाते हैं।
12. **ऋण सीमायें** –: ऋण देय सीमा सदस्य के अंशों के कुछ गुने तक निश्चित की जाती है। अधिकतम सीमा 10,000 से 15,000 रु0 तक निश्चित की गई है। यह सदस्य द्वारा खरीदे गये अंशों के 20 गुने तक या भूमि के 50% मूल्य तक निश्चित की गई है।
13. **ऋण वसूली** –: ऋण की वसूली किश्तों में की जाती है। इन किश्तों में मूलधन व ब्याज दोनों ही सम्मलित होते हैं। ऋणियों द्वारा अग्रिम भुगतान भी स्वीकार किये जाते हैं। यदि कोई सदस्य ऋण चुकाने में

त्रुटि करता है तो बन्धक रखी गई भूमि पर उगाई गई फसल को न्यायालय की सलाह के बिना भी बेचकर ऋण वसूल किया जा सकता है।

भूमि बन्धक/भूमि विकास बैकों की प्रगति

विगत 50 वर्षो में प्राथमिक भूमि विकास बैकों ने उल्लेखनीय प्रगति की है। इनकी संख्या 1950–51 में 286 से बढ़कर 1997–98 में 760 हो गई। इसी प्रकार केन्द्रीय भूमि विकास बैकों में भी पर्याप्त प्रगति हुई जैसा कि निम्नंकित तालिकाओं से स्पष्ट होता है।

तालिका संख्या - ४३

प्राथमिक भूमि विकास बैको की प्रगति

विवरण	1950–51	1960–61	1981–82	1997–98
1. वैकों की संख्या	286	462	880	760
2. सदस्यता (लाखों में)	2.7	6.7	70.2	54.1
3. अंशपूंजी (करोड़ों में)	0.5	2.0	114.9	–
4. कार्यशीलपूंजी (करोड़ों मे)	6.6	26.9	1,361.0	3,471
5. अग्रिम (करोड़ों मे)	1.3	7.2	260.0	669.0
6. बकाया ऋण (करोड़ों मे)	6.3	24.7	1083.0	2.779
7. अवधिपारऋण (करोडों मे)	0.1	0.6	105.0	315.0

स्रोत –: पूर्वोलिखित – *पृष्ठ संख्या 236*

उपरोक्त तालिका से यह तो संकेत मिलता है कि प्राथमिक भूमि विकास बैकों ने उत्तरोत्तर हर क्षेत्र में प्रगति की है। संख्या, सदस्यता, अशंपूंजी कार्यशील पूंजी सभी में वृद्धि हुई है तथा अग्रिम घनराशि में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। परन्तु प्रगति चिन्तनीय विषय उस समय बनी दिखाई देती है जब बकाया ऋण और विशेषकर अवधिपार ऋण की घनराशि भी शनैः–शनैः अत्याधिक होती चली गई है। अस्तु वसूली पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, अन्यथा रकम डूबने पर बैकों को आर्थिक कठिनाई का सामना निकट भविष्य में कर सकना पड़ सकता है क्योंकि तब फिर मात्र एक विकल्प ऐसे ऋण को माफ करना (राईटआफ) ही बचता है।

राज्य/केन्द्रीय भूमि विकास बैकों की संख्या 1950–51 में 5 थी जो 1997–98 में बढ़कर 20 हों गई है। सदस्यता में प्राथमिक बैंक व समितियाँ 1950–51 में 398 से बढ़कर 4611 हो गई जबकि व्यक्तिगत सदस्यता 0.09 लाख से बढ़कर 47.71 लाख हो गई। यह सब समंक प्रगति के सूचक हैं। शेष भूमि विकास बैकों की वर्तमान स्थिति निम्न प्रकार सक है –

तालिका संख्या - ४४

केन्द्रीय भूमि विकास बैकों की स्थिति

विवरण	वर्ष 1997–98
1. संख्या	20
2. स्वयंकोष	1,271 करोड़ रु0
3. कार्यशीलपूंजी	9,488 करोड़ रु0
4. वितरित किये गये ऋण	1,876 करोड़ रु0
5. बकाया ऋण	6,910 करोड़ रु0
6. अतिदेय	767 करोड़ रु0

स्त्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 237*

उपर्युक्त तालिका सभी प्रकार से प्रगति की सूचक होते हुये भी शेषऋण व अतिदेय की धनराशि किसी प्रकार से संतोषजनक स्थिति का द्योतक नहीं कहीं जा सकती।

केन्द्रीय भूमि विकास बैंक के प्रबन्धक तन्त्र का ढाँचा
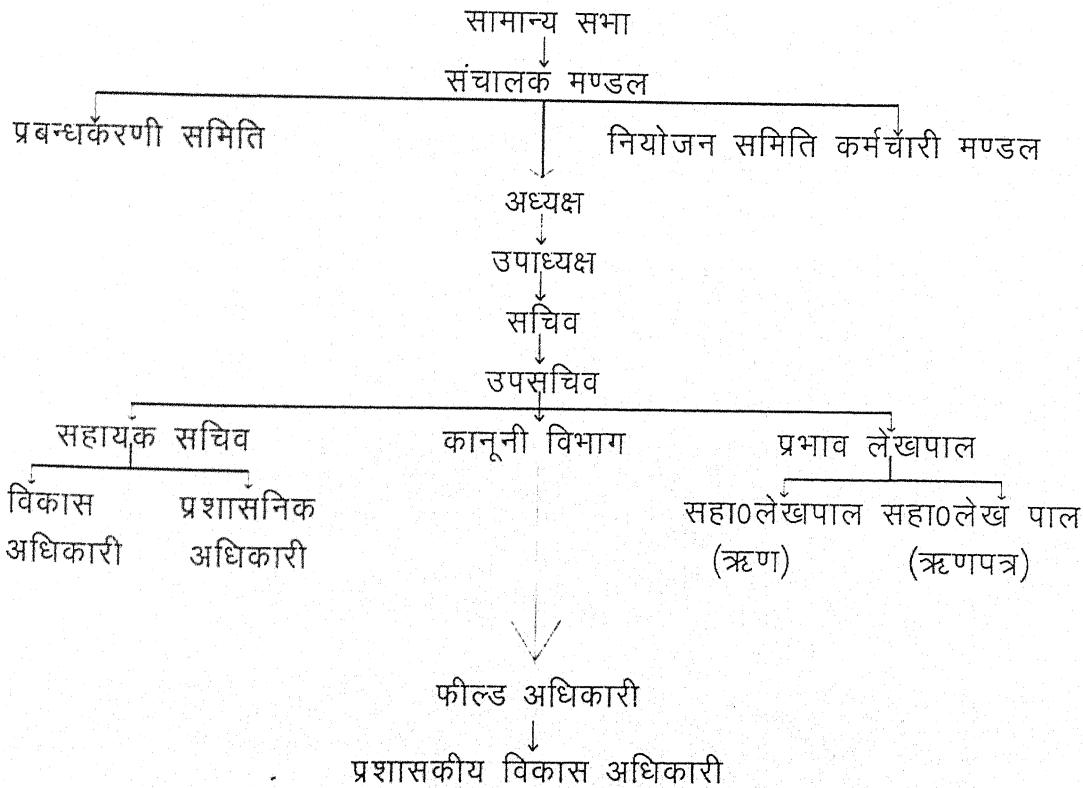
भूमि विकास बैंकों के दोष, कमियाँ एवं कठिनाइयाँ

भारतवर्ष में भूमि विकास बैंकों का आशानुरुप पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में दूर–दूर तक फैली निरक्षर व निर्धन जनसंख्या तक सहकारिता का संदेश जिस प्रकार विकसित व विस्तृत होना चाहिये था उतना सम्भव नहीं हो पाया। सदियों से दबी, कुचली और निम्नस्तरीय जीवन को जीने की आदी हुयी जनता जनार्दन में स्वतः जागरुकता की किरण अभी भी उनके अन्तः में जागृत नही हो सकी है। साथ–साथ इसके कार्यक्षेत्र में लगे अधिकारी व कर्मचारी जो कि शहरी वातावरण के आदी हैं, अपने को ग्रामीणांचलों के अनुरुप ढाल नहीं सके हैं। उन्हें सभी सुविधायें उपलब्ध कराने पर भी ग्रामीण जीवन व ग्राम्यजनों के बीच रहना आज भी रास नहीं आ रहा है, और उपेक्षापूर्ण भावनाओं के कारण वे गाँवों के लोगों से अपने को आत्मसात् करने में कतराते हैं। इस सबके ऊपर भ्रष्टाचार का भयानक दानव सभी अच्छी से अच्छी लाभप्रद योजनाओं पर पानी फेर देता है। एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक सौ रुपये में मुश्किल से ग्रामवासी तक मात्र 10 या 15 पहुँच पाते हैं। अन्य अनेकानेक दोष व कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं –:

1. अकुशल एवं अप्रशिक्षित प्रबन्ध व्यवस्था।
2. अनुत्पादक कार्यों के लिये ऋण।
3. ऋण देने की दोषपूर्ण विधि।
4. भूमि विकास बैंकों का राज्यों में असमान विकास।
5. भूमि सुधार कानूनों का उल्टा प्रभाव।
6. संगठन की असमानता।
7. पंजीयन अधिकारियों की असहयोगी प्रवृत्ति।
8. निरीक्षण एवं अंकेक्षण का अभाव।
9. अतिदेय व अवधिपार ऋणों की अधिकता।

10. पुर्नभुगतान क्षमता पर ध्यान न देना।

11. विभिन्न प्रकार की साख का समन्वय न होना।

12. ऋण देने की जटिल प्रक्रिया तथा विलम्बित भुगतान।

13. अन्तरिम वित्त की समस्या।

14. ऋण लेने वालों की नियत में खोट।

15. खाता व खतौनी का अन्तर।

16. बन्दरबांट खाने की प्रवृत्ति।

अन्ततः यही कहना पड़ता है के योजनायें जब बनाई जाती हैं तो उनके उद्देश्य पुनीत व लाभप्रद ही होते हैं और यदि पूर्ण निष्ठा व पूर्ण लगन के साथ उनका निस्तारण किया जाये तो जो भी प्रगति आज दिख रही है उसमें चार चाँद लग जायेंगें। ग्रामीण कृषक जनता जनार्दन के भाग्य जाग जायेगें, शोषण का नामोनिशान न रह जायेगा और चारों ओर सुख शान्ति की फसल लहलहा उठेगी। परन्तु काश ऐसा हो पाता। आज जो धनराशि वितरण के लिये ऊपर से जिस प्रकार उड़ेली जा रही है उसकी कुछ बूंदे ही वास्तविक लाभाकांक्षी तक पहुँच पाती हैं। जितने मध्यस्थ हाथ, उतनी ही बन्दरबाट, उतनी ही लूट खसोट। अस्तु भूमि विकास बैंकों की कार्यप्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है और इसके लिये उस जगह चोट करने, कड़ाई करने व निष्पक्षता से कार्य करने की आवश्यकता है जिससे इसमें आई कमियाँ, कठिनाइयों व दोषों को समूल नष्ट किया जा सके। अस्तु कुछ सुझाव निम्नांकित प्रस्तुत किये जा रहे हैं –:

1. ऋणनीति में परिवर्तन।

2. कुशल निरीक्षण व कड़ाई से जाँच।

3. ऋण देने की विधि सरल व बोधगम्य होना चाहिये।

4. वित्त की सामयिक व समुचित पूर्ति।

5. अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋणों का समन्वय

6. भूमि मूल्यांकन विधि में सुधार।

7. समय पर वसूली।

8. ऋणी की हर प्रकार से पूर्ण जानकारी होना।

9. संचालक मण्डल की साभायें शीघ्र बुलवाना।

10. ग्रामीणों व सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ण जानकारी तथा उनकी ऋण माँगने की सत्यता पर पहले से जानकारी रखना।

11. भूमि विकास बैकों व अन्य सहकारी संस्थाओं में समन्वय।

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति तथा राज्य सहकारी विकास निगम ने कुछ सुझाव प्रस्तुत किये थे यथा –:

(क) राज्य सहकारी बैंक व केन्द्रीय भूमि विकास बैंक के संचालक मण्डल में अन्तर बैंक प्रतिनिधित्व होना चाहिये, जिससे एक दूसरे की समस्याओं को समझा सके व सुधार सम्भव हो सके।

(ख) केन्द्रीय भूमि विकास बैकों को अपने निजी कोषों का एक भाग राज्य सहकारी बैंक में विनियोजित करना चाहिये।

(ग) शीर्ष बैकों को भूमि विकास बैकों द्वारा जारी किये गये ऋण पत्र खरीदना चाहिये।

(घ) राज्य सहकारी बैकों द्वारा केन्द्रीय भूमि बन्धक बैकों की सामाजिक वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति की जानी चाहिये तथा।

(ड) दीर्घकालीन साख केन्द्रीय बैकों की शाखाओं के माध्यम से वितरित होना चाहिये।

निष्कर्षतः इस प्रकार से. भूमि विकास बैकों के विकास में शीर्ष बैकों का सहयोग अत्यन्त उपयोगी व सहायक सिद्ध होगा परन्तु ऐसा पूर्णरूप से नहीं हो सका है, और यह समस्या सदैव से ही रही है कि समितियों व कार्यदलों के सुझावों का सही ढंग से परिपालन नहीं किया जा सका है।

चतुर्थ अध्याय

जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि० उरई

बुन्देलखण्ड व जनपद जालौन के बारे में एक उक्ति कही जाती रही है – 'जमीन हमवार नही, वृक्ष फलदार नहीं' जो निश्चित रुप में बुन्देली भूमि की कम उपजाऊ व ऊसर भूमि की ओर संकेत करती है। जनपद जालौन की 72.8% भूमि लघु एवं सीमान्त भूमिघरों द्वारा आज भी जोती और बोई जाती है। शेष 27.2% जनसंख्या आज भी येन केन प्रकारेण अपनी जीवका उपार्जन करती है। कुटीर उद्योगों का क्रमिक ह्यस भी उसकी इस दयनीय दशा का एक कारण सदैव से रहा है। कृषि श्रमिक जो आज भी कुल जनसंख्या का 23.2% हैं, बड़े भूस्वामियों की दया व दासता के पात्र रहे हैं। यदि निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या को लें, तो जैसा सम्पूर्ण भारत के संदर्भ में दिनांक 5.12.2002 को योजना राज्य मंत्री ने इसे मात्र 6 करोड़ 52 लाख बतलाया जा गया है, मुझे इस बात को कहने में तनिक भी हिचक न होगी कि इन दरिद्र नारायणों की सर्वाधिक संख्या इसी बुन्देली भूमि व जनपद जालौन की भूमि में ही मिल जायेगी।

सहकारिता की संजीवनी ने ऐसे नारकीय जीवन यापन करने वाले करोड़ों मानवधारियों को दरिद्रता के अभिशाप से मुक्ति हमारे देश में ही नही वरन् योरुपीय देशों में 'रेफीसन' व 'शुल्जे' बनकर प्रदान की है व उनके अन्धविश्वासी व निराश जीवन में आशा का संचार का किया है। ऐसे ही एक महामना उदारचित्त व्यक्तित्व राय बहादुर पण्डित गोपाल दास शर्मा के उरई नगर में अवतरित होने के फलस्वरुप, जिन्हें इस कथन में अटूट आस्था थी कि "वर्तमान विकासवादी भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटम्बकम्' की प्राणाधार सहकारिता ही है। सहकारिता हमारे विकास प्रयासों में आत्म निर्भरता की ओर एक रचनात्मक कदम है", जिले में सहकारी आन्दोलन का जन्म हुआ। इसी

प्रेरणां से प्रेरित हो सन् 1907 में एक लघु स्तर पर सहकारी बैक की स्थापना श्रद्धेय शर्मा जी की सोची समझी नीति की परिणति थी जो उन्ही के द्वारा निर्मित कराये गये उरई नगर भवन के दो कमरों से प्रारम्भ हुई, और आज एक सुदृढ़, सुव्यवस्थित व सफल जालौंन डिस्ट्रिक कोआपरेटिव बैक लि0 उरई (पंजीकृत नाम) का बृहताकार स्वरुप ले चुकी है व रायसाहब के स्वप्नों को सर्वागींण स्वरुप में साकार करती हुई जनपद के दूरस्थ अचलों तक आशा, उन्नति व प्रगति का प्रकाश फैला रही है।

आज जालौन डिस्ट्रिक को आपरेटिव बैंक का अपना स्वयं का भव्य भवन है जो जनपद के मुख्यालय उरई में स्टेशन रोड पर नगर के बीचों–बीच स्थित है। बैंक की प्रगति को इसके द्वारा प्रदत्त त्वरित भण्डारण, फर्टीलाइजर वितरण, केडिट कार्ड प्रदान करने, जमा खातों की विशेष सुविधा, दूरस्थ ग्रामीणांचलों में खुली बैकिंग शाखाओं व उनके कुशल संचालन एवं निरन्तर लाभदेयी योजनाओं से आंकलित किया जा सकता है।

सदस्यता -:

जालौंन डिस्ट्रिक कोआपरेटिव बैंक जिसे हम जनपद का केन्द्रीय सहकारी बैक भी कह सकते हैं, मिश्रित प्रकार का बैंक है जिसके सदस्य प्राथमिक सहकारी समितियाँ व व्यक्ति दोनों ही हैं, इसके अतिरिक्त राज्य सरकार भी इसकी सदस्य है। जहाँ तक व्यक्तिगत सदस्यता का प्रश्न है, यह प्रायः घटती बढ़ती रहती है। मेरी जानकारी के अनुसार कोई भी व्यक्ति दो रुपये देकर बैंक का सदस्य बन सकता है और घनराशि जमां करने या ऋण लेने की सुविधा सम्बन्धित प्रपत्रों को भरने के पश्चात् प्राप्त कर सकता है। आज इसके सदस्यों की कुल संख्या निम्नवत् है –:

कुल सदस्य संख्या – 144,777

कृषक सदस्य – 81,112 सितम्बर 02

भूमि हीन सदस्य – 62965

व्यक्तिगत सदस्यता तो नाम मात्र (नामीनल) के सदस्यों के रुप में होती है। मुख्य रुप से बैंक की सदस्यता सहकारी समितियों में निहित है। गत पाँच वर्षों की सदस्यता निम्न प्रकार से है —:

तालिका संख्या - ४९

क्रम / विवरण	1996—97	1997—98	1998—99	1999—00	2000—01
1. कृषिऋणसमितियाँ	68	68	68	68	68
2. क्रयविक्रय(पैकेट)	6	6	6	6	6
3. सहकारी संघ	32	32	32	32	32
4. उपभोक्ता समिति	1	1	1	1	1
5. औद्योगिक उत्पा0 समितियाँ	35	35	35	35	35
6. केन्द्रीय समितियां	3	3	3	3	3
7. वेतनभोगी कर्मचारी समितियाँ	64	65	66	67	68
8. अन्यसहकारी समि0	104	104	84	96	98
9. राज्य सरकार	1	1	1	1	1
योग —:	**314**	**315**	**296**	**209**	**312**

स्रोत —: वार्षिक अधिवेशन प्रपत्र 2000—2001 *पृष्ठसंख्या 3*

उपर्युक्त तालिका से निम्न तथ्य उजागर होते है —:

पिछले 5 वर्षों व इसके दो या तीन वर्ष पूर्व से सभी प्रकार की समितियों में एक ठहराव की स्थिति स्पष्ट है। वेतन भोगी कर्मचारी समितियों में कुछ नाममात्र की जो बढ़ोतरी हुई है वह मूलरुप से वेतन भोगियों को बैंक द्वारा सुलभ कराई गई अनेकानेक आधुनिक उपभोक्ता साख सुविधाओं के कारण हुई मालूम होती है, जबकि अन्य सहकारी समितियों की संख्या में लगभग 6% की कमी आई है, फिर भी यह स्थिरता एक प्रकार से सुदृढ़ आधार का भी संकेत देती है, जिसके कारण बैंक उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

बैंक की संतोषजनक प्रगति का सूचक बैंक की ग्रामीण क्षेत्रों मे ग्राम विकास एवं सेवा में कार्यरत 19 बैंकिग शाखायें भी है जिनकी प्रगति व निक्षेप (डिपोजिट्स) का विवरण निम्न प्रकार से है –:

तालिका संख्या - ४६

जालौन डिस्ट्रिक कोआपरेटिव बैंक लि0 उरई की ग्रामीण शाखायें

क्र. स.	नाम शाखा	विकास खण्ड	प्रारम्भ तिथि	निक्षेप (लाख रुपये में)		
				1998–99	1999–00	2000–01
1.	उरई मुख्य	डकोर	1.7.07	1886.08	1998.40	2391.31
2.	कोंच मुख्य	कोंच	21.10.70	642.83	713.28	850.69
3.	कालपी	महेबा	26.5.72	269.06	330.98	374.13
4.	कदौरा	कदौरा	11.6.73	443.57	449.10	516.47
5.	सरावन	माधौगढ़	16.4.73	176.82	202.46	20.04
6.	रामपुरा	रामपुरा	1.5.72	109.50	137.63	145.07
7.	माधौगढ़	माधौगढ़	2.6.73	117.00	120.15	142.95
8.	कुठौंद	कुठौंद	2.5.72	284.87	330.12	379.47
9.	जालौंन मण्डी	जालौंन	30.3.65	237.18	298.52	346.96
10.	एट	डकोर	23.5.73	538.32	623.16	736.23
11.	डकोर	डकोर	26.5.73	111.20	126.76	154.27
12.	नदीगाँव	नदीगाँव	28.2.77	122.82	150.45	180.81
13.	बावई	महेवा	24.1.77	54.26	61.15	93.99
14.	ऊमरी	रामपुरा	30.11.87	108.76	126.16	158.15
15.	कोंच मण्डी	नदीगाँव	5.12.88	282.36	337.29	419.72
16.	बंगरा	नदीगाँव	26.6.89	87.83	94.16	117.73
17.	उरई (सांय)	डकोर	11.5.89	750.88	894.61	1043.61
18.	जालौंन (सांय)	जालौंन	6.9.94	474.80	555.05	659.25
19.	प्रधानका0उरई	डकोर	11.2.76	232.23	250.27	7.14
	योग			6929.45	7799.70	8938.00

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 20*

उपर्युक्त तालिका जिसमें जालौंन डिस्ट्रिक कोआपरेटिव बैंक लि. उरई की शाखाओं की ग्रामीण विकास एवं सेवा में कार्यरत विभिन्न क्षेत्रों में त्रिवर्षीय निक्षेपों की प्रगति दर्शायी गई है, से इतना तो स्पष्ट होता है कि

निक्षेपों में उत्तरोत्तर संतोषजनक वृद्धि हुई है। इसका एक मात्र अपवाद डकोर विकास खण्ढ की उरई प्रधान कार्यालय शाखा है जिसमें वर्ष 1998–99 व 1999–2000 में मामूली वृद्धि हुयी है परन्तु 2000–2001 में यकायक अत्यधिक कमी दर्शायी गई है। इसके विपरीत उरई मुख्य व उरई सांय शाखा में पर्याप्त व आशातीत वृद्धि हुई है साथ ही सांयकालीन शाखा उरई विनियोजन की दृष्टि से अधिक व्यवहारिक रही है।

दूसरी विशेषता जो इस तालिका से स्पष्ट होती है वह है 1907 में उरई में एक शाखा खुलने के पश्चात् एक लम्बा 50–55 वर्ष का अन्तराल है जबकि कोई शाखा नहीं खोली गई। इसका मूल कारण यह बतलाया गया कि तब तक बैंक संघर्षरत रहकर एक सुदृढ़ स्थिति में तो आ गया था परन्तु बैंकिग नियमावली के अनुसार योजनाकाल प्रारम्भ होने पर ही इस प्रकार की शाखायें खोलने का निर्देशन व प्रोत्साहन सम्भव हो सका। तत्पश्चात् फिर एक लगभग 15–20 वर्षीय अन्तराल रहा है और इसके बाद 1994 में जालौन सांयकालीन शाखा की स्थापना सम्भव हो सकी।

बैंक की विकास नीति की एक प्रमुख कमी यह रही कि अति सर्तकता बर्तते हुये इसकी शाखायें जनपद में स्थित आबाद 942 ग्रामों में से मात्र 15 नगर व कस्बों तक ही सीमित रही है जबकि आवश्यकता थी कि इनका फैलाव कम से कम उन गावों में किया जाता जिनकी आबादी 5000 से अधिक हो गई है, जहाँ या तो शिक्षा विकासार्थ हाईस्कूल स्तर तक के स्कूल हैं या फिर वे कस्बे रेलवे लाइन के किनारे या फिर मुख्य सड़कों पर या किसी न किसी वस्तु की मण्डी के रुप में जाने जाते रहे हैं। मेरे मतानुसार कम से कम निम्नलिखित दस ग्राम व ग्रामीण क्षेत्र जो विभिन्न विकास खण्डों में स्थित हैं, में बैंक की शाखायें होनी चाहियें थी। ये ग्राम–कस्बे हैं, सोमई, बड़ागाँव, मुहाना, आटा, ऊसरगाँव, शेखपुरबुजुर्ग, गोपालपुरा, सैदनगर, हरदोईराजा व पिरौंना आदि।

अब चूंकि नाबार्ड द्वारा पार्याप्त सामयिक सुविधायें उदार शर्तों पर दी जा रही हैं व इसके कार्यालय जनपद की तहसीलों व मुख्यालयों पर खोले जा रहे हैं, अस्तु संदर्भित जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि0 उरई को इसका लाभ उठाते हुये, नये क्षेत्रों के विकासार्थ कदम उठाना चाहिये, जिससे जनपद का संतुलित विकास सम्भव हो सके।

जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि. उरई द्वारा प्रदत्त सेवायें

जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि. उरई ने अपनी नियमित उत्कृष्ट सेवाओं और विशिष्ट विशेषताओं के परिणामस्वरुप जनपद में ही नहीं वरन् जनपद के सुदूरांचलों में भी ख्याति अर्जित की है। पिछले 94 वर्ष में उसके द्वारा अर्जित विशेषतायें निम्नांकित हैं –:

1. दूरस्थ ग्रामीणांचलों में बैंकिग सुविधाओं का विस्तार।
2. संचित संसाधनों का जनपद के विकासार्थ उपयोग करना।
3. जमा खातों की सुविधा व उस पर अन्य बैकों की अपेक्षा 0.5 प्रतिशत ब्याज अधिक देना।
4. लाकर्स में नामांकन की सुविधा सुलभ कराना।
5. प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को सर्वाधिक ऋण वितरण की सुविधा प्रदान करना।
6. प्रबन्ध में सदस्यों द्वारा सीधी भागीदारी प्रदान करना।
7. निक्षेपों पर अधिक ब्याज की सुविधा।
8. निः शुल्क निक्षेप बीमा सुविधा सुलभ होना।
9. किसान क्रेडिट कार्ड की सुविधा प्रदान करना।
10. बचत खाता दुर्घटना बीमां योजना लागू करना।
11. राष्ट्रीय कृषि बीमां योजना का कार्यान्वन करना।
12. शासन द्वारा नियमित संप्रेक्षण करवाना।
13. नाबार्ड द्वारा निरीक्षण करवाना।

14. रिजर्व बैंक से सम्पर्क रखना तथा समय–2 पर प्रतिपादित निर्देशों का पालन करना।
15. समय पर वर्षान्त के अन्तर्गत ही वार्षिक अधिवेशन कराना व नव संचालक मण्डल का नियमित रुप से गठन करना।
16. शुद्ध लाभ का सामयिक निस्तारण करना।
17. मेधावी एवं निर्धन छात्रों को प्रोत्साहनार्थ को शिक्षा निधि से पुरष्कृत करना तथा प्रोत्साहित करना।
18. उन्नत बीज व फर्टीलाइजर के भण्डरण की व्यवस्था तथा उसका सामयिक सस्ती दर पर वितरण करवाना।
19. सभी वर्ग के कर्मचारियों एवं प्रबन्ध समिति के सदस्यों को प्रशिक्षण व अध्ययन–भ्रमण की सुविधा प्रदान करना।
20. मुख्यालय उरई शाखा का कम्प्यूटरीकरण किया जाना।

बैंक का संचालक मण्डल तथा कार्यरत कर्मचारी गण

किसी भी संस्था की सफलता, उसके संचालक मण्डल, प्रशासनिक अधिकारी व कर्मचारियों पर बहुत हद तक निर्भर करती है। बैंक का वर्तमान संचालक मण्डल माननीय श्री कांग्रेस सिंह के सभापतित्व में 7 जुलाई 1999 से पदारुढ़ है जो एक प्रकार से उनकी विशिष्ट क्षमता व लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। इसके अतिरिक्त बैंक की कार्य व्यवस्था में महाप्रबन्धक, सचिव लेखाकार जैसे स्थायी पद पर रहने वाले अनुभवी, कर्मठ और व्यवहार कुशल कार्यकर्ता, जिन्हें हम सफलता का पर्याय भी कह सकते हैं, भाग्यवश इस बैंक की सेवा में कार्यरत हैं। इन्होंने अनेक केन्द्रीय बैकों की भांति इस संस्था को राजनीति का अखाड़ा नहीं बनने दिया, बैकों के नियमों का कड़ाई से पालन किया, जिससे बैंक ने अपनी स्थापना से ही क्रमोत्तर बहुमुखी प्रगति व विकास किया है और समय–समय पर आने वाले या उठने वाले अनेक व्यवधानों को

समय रहते सहज ही पार किया है। आज जब प्रदेश के अनेक केन्द्रीय बैंको पर विघटन के बादल मण्डरा रहे हैं, रिजर्व बैंक के अप्रत्याशित आदेशों की तलवार उनके सिर पर लटक रही है, जालौन जिला सहकारी बैंक उरई प्रगति के पाँव पसारता, जनपद के कृषि विकास में नित्य नये—नये कीर्तिमान स्थापित करता दिखाई दे रहा है। इस सबका श्रेय प्रशासकीय अधिकारी, महाप्रबन्धक तथा अन्य कार्यरत अनुभवी कर्मचारियों को तो जाता ही है, साथ—साथ बैंक के 15 सदस्यीय संचालक मण्डल को भी इसका श्रेय है, जिसमें सभापति, उपसभापति तथा 11 संचालक जिसमें दो महिलायें भी हैं, के साथ—साथ जिला सहायक निबन्धक व 1 राज्य सरकार द्वारा मनोनीत संचालक सम्मिलित हैं। प्रतिवर्ष निर्विध्न रूप से वार्षिक सम्मेलन समय से होता जाना भी बैंक की एक उपलब्धि कही जायेगी। हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी 94 वें अधिवेशन के समापन पर ही वर्ष 1996—97 से वर्ष 2000—2001 तक की अर्थिक स्थिति का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया जो बैंक की चतुर्मुखी प्रगति का स्पष्ट प्रतीक कहा जा सकता है व बैंक के व्यवसाय की उत्तरोत्तर प्रगति का घोतक है जैसा कि अग्राँकित तालिका से स्पष्ट होता है।

तालिका संख्या - ४७

जालौन डिस्ट्रिक्ट को आपरेटिव बैंक लि0 उरई की आर्थिक स्थिति

क्र.	विवरण	1996—97	1997—98	1998—99	1999—00	2001—01
1.	प्रदत्तअंशपूंजी	253.37	299.17	361.22	482.15	432.15
2.	रक्षित एवं अन्य निधियां	202.07	264.83	278.28	331.22	430.43
3.	बकाया ब्याज हेतु प्रावधान	114.38	132.95	212.95	267.20	293.35
4.	निजी पूंजी	569.82	696.95	852.45	980.57	1155.81
5.	बाह्य ऋण	901.43	678.94	738.41	596.83	799.16
6.	अमानतें	5163.13	6063.28	6929.45	7799.70	8938.00
7.	विनियोजन	3771.69	4110.66	4547.72	4638.53	5942.74
8.	प्रदत्त ऋण	2368.47	2686.67	3152.89	3434.76	3696.46
9.	कार्यशीलपूंजी	6757.68	7548.47	8666.32	9531.01	11034.31
10.	लाभ	5.75	9.08	19.43	6.35	13.13

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 2*

जलौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड उरई की प्रदत्त अंश पूंजी, विनियोजन एवं कार्यशील पूंजी
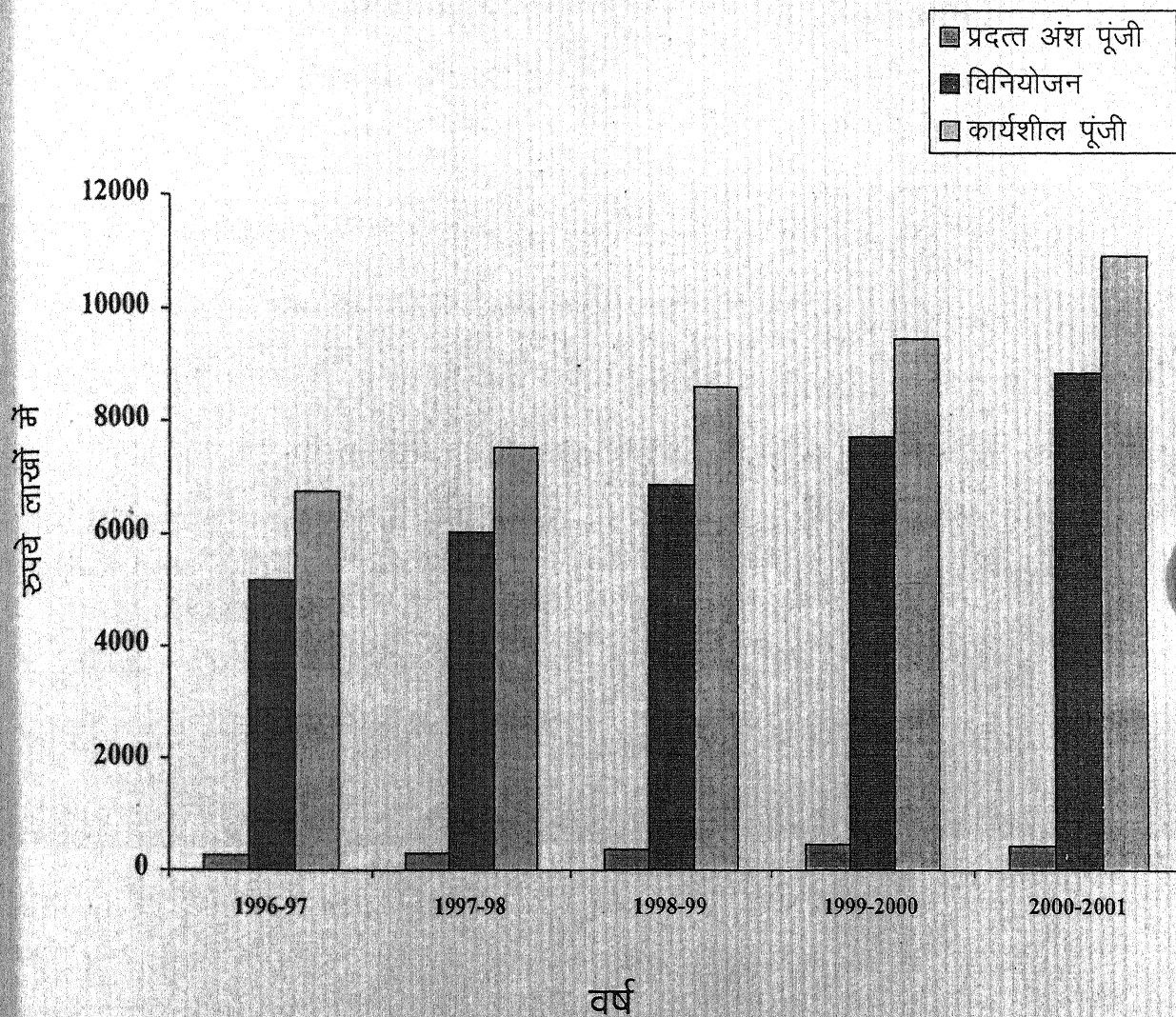
उपरोक्त वर्ष 96–97 से 2000–01 तक के संमकों से यह स्पष्ट होता है कि बैंक ने हर क्षेत्र में बीते वर्षो की तुलना में अपेक्षानुरुप प्रगति की है। प्रदत्त पूंजी में लगातार चार वर्षो तक उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। मात्र 2000–01 में हल्की सी कमी हुई है परन्तु इसके विपरीत कार्यशील पूंजी में कोई कमी न आकर 261.70 लाख रु0 की वृद्धि एक शुभ–संकेत का प्रतीक है। जैसा कि ज्ञात है कि बैंक की अंश पूंजी व संचित कोषों की घनराशि बैंक की निजी पूंजी होती है। उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि निजी पूंजी में 585.99 लाख रु0 की वृद्धि हुई है जो 202.83% है। रक्षित निधियों में पाँच वर्षो के अन्तराल में 228.36 लाख की वृद्धि एक ठोस आधार का संकेत करती है। बैंक ने जनता से अमानतों की प्राप्त राशि में पर्याप्त बढ़ोतरी दर्ज की है, जिसके फलस्वरुप बाह्य ऋणों की अधिकाधिक मात्रा देनी सम्भव हुई है। इसके अतिरिक्त विनियोजन में भी विगत चार वर्षो की अपेक्षा 2171.05 लाख रु0 की बढ़तरी हुई है। यह विनियोजन वृद्धि वस्तुतः विभिन्न क्षेत्रों में बैंक के विकास की अधिकाधिक सम्भावनाओं को व्यक्त करती है। अमानतों की राशि में वर्षानुवर्ष वृद्धि जनता में बैंक के प्रति बढ़ते हुआ विश्वास को परिलक्षित करती है और इसी आधार पर बैंक निक्षेपकर्ताओं से अन्य बैकों की तुलना में अधिक ब्याजदर पर जमा प्राप्त करती है। इस प्रकार बैंक के व्यवसाय को भी प्रोत्साहन मिलता है तथा लाभ में भी वृद्धि सम्भव होती है। लाभ के आँकड़ो में विभिन्नता अवश्य है, पर यह बाजार की परिस्थितियों व मुद्रा की माँग पर भी निर्भर करता है। फिर भी वर्ष 2000–01 सन् 1996 से 1998 की अपेक्षा अधिक लाभ प्रदर्शित करता है। एक विशेष तथ्य लाभ के कम होने का यह भी है कि वर्ष 1996–97 में रिजर्व बैंक/नाबार्ड एवं निबन्धक सहकारी समितियाँ उ0 प्र0 के निदेशों के अनुसार बकाया ब्याज तथा अशोध्य एवं संदिग्ध निधियों हेतु सीधे लाभ से ही शतप्रतिशत प्रावधान किये गये थे। अस्तु 5 वर्षों में बैंक की अर्थ व्यवस्था सुदृढ़ हुई है तथा ग्राहकों की सेवाओं में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है।

जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड उरई द्वारा विभिन्न खातों के अन्तर्गत निक्षेप
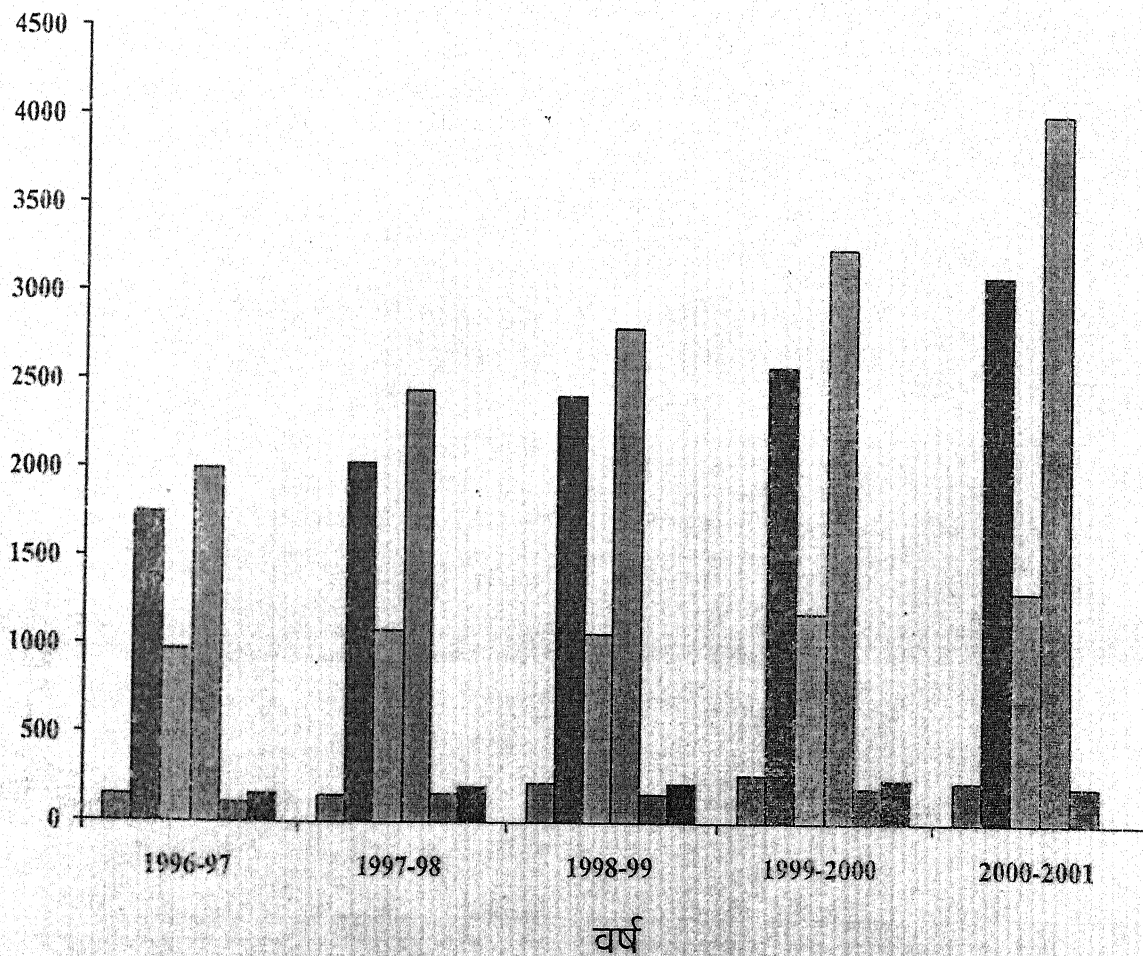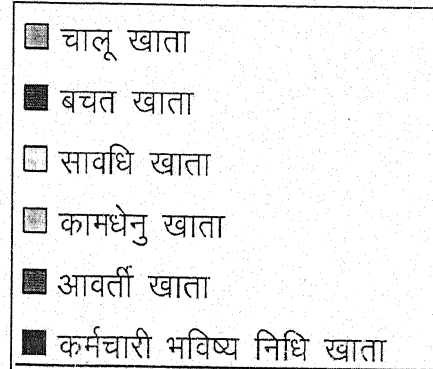
बैंक की अंश पूंजी -:

बैंक की सदस्य सहकारी समितयों तथा राज्य सरकार द्वारा प्राप्त अंश पूंजी बैंक की वास्तविक पूंजी है। इसका विवरण निम्न प्रकार से है -:

तालिका संख्या-४८

क्र.	विवरण	वर्ष			(लाख रु0 में)	
		1996-97	1997-98	1998-99	1999-00	2000-01
1.	राज्य सरकार	47.90	42.90	122.90	122.90	122.90
2.	सहकारी समितियां	205.47	226.27	238.32	259.25	309.13
	योग	**253.37**	**299.17**	**361.22**	**382.15**	**432.03**

स्रोत -: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 3*

बैंक की अंश पूंजी में 178.66 लाख रु0 की वृद्धि हुई है जो लगभग 171.51% हो गई है। इसमें राज्य सरकार का अंशदान 1998 से 2001 तक स्थिर रहा है जबकि सहकारी समितियों की पूंजी में उत्तरोत्तर बृद्धि बैंक की सुदृढ़ स्थित का परिचायक है।

बैंक के विभिन्न खातों के अन्तर्गत निक्षेप -: (डिपोजिट्स)

तालिका संख्या- ४९

क्र.	विवरण	वर्ष			(लाख रु0 में)	
		1996-97	1997-98	1998-99	1999-00	2000-01
1.	चालू खाता	156.12	153.51	230.49	269.71	235.71
2.	बचत खाता	1749.16	2031.28	2421.66	2605.60	3122.11
3.	सावधि खाता	980	1082.02	1072.80	1197.05	1326.27
4.	कामधेनु खाता	1997.27	2445.31	2813.35	3278.20	4045.18
5.	आवर्ती खाता	116.62	156.71	161.22	201.32	208.67
6.	कर्मचारी भविष्य निधि खाता	163.86	194.45	229.93	247.82	अप्राप्त
	योग	**5163.13**	**6063.28**	**6929.45**	**7799.70**	**8938.00**

स्रोत -: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 5*

जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि० उरई

द्वारा आर्जित लाभ
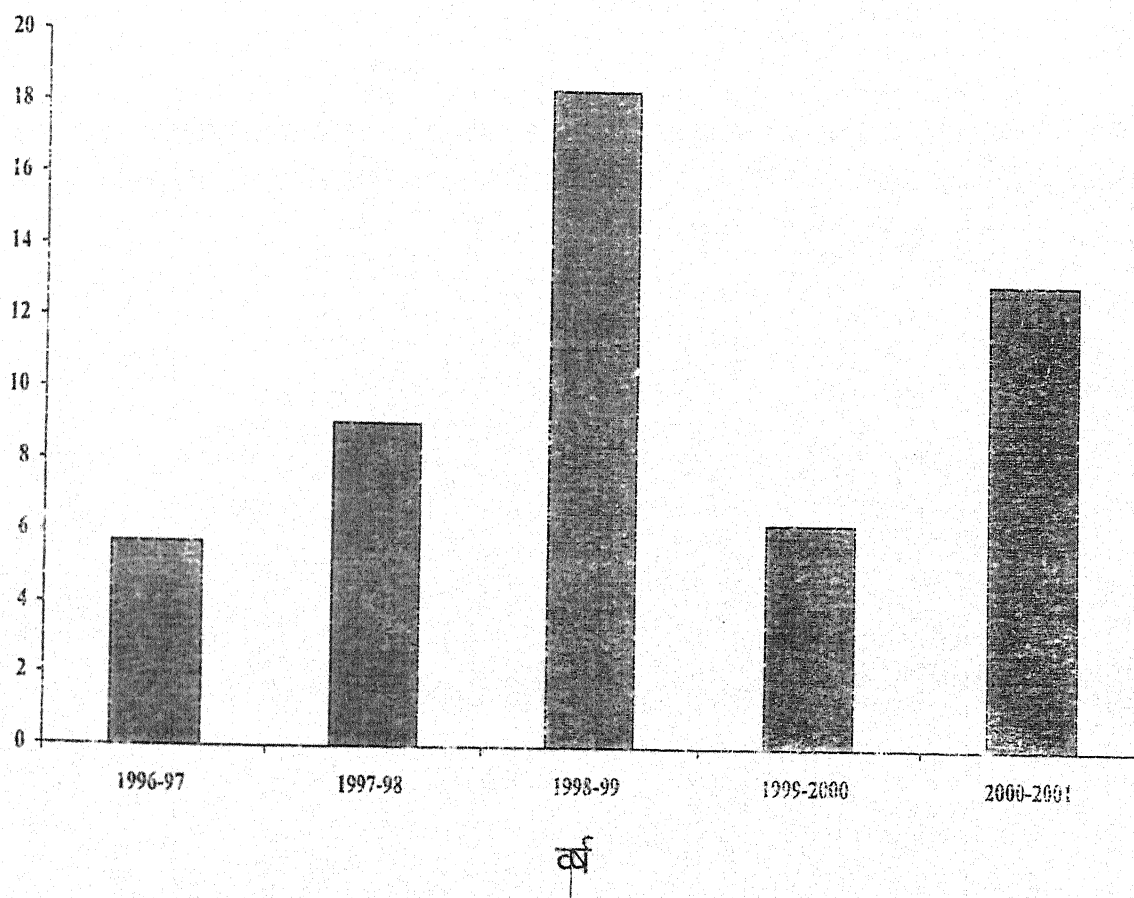
उपरोक्त तालिका इस तथ्य की प्रतीक है कि वर्ष 1996–97 से 2000–01 के पाँच वर्षो में 3774 लाख रु0 की निक्षेपों में वृद्धि हुई जो लगभग दोगुनी है। चालू खाते में व्यापार करोबार में लगातार अन्तर आते रहने के कारण ही इसमें स्थायी रुप से उत्तोत्तर प्रगति नहीं हुई हैं परन्तु यह इस बात का भी प्रतीक है कि रुपये का विनियोजन किसी न किसी क्षेत्र में तो किया ही गया है। सम्पूर्णरुपेण खातों की घनराशि में वृद्धि इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जनता में बैंक के प्रति विश्वास वर्षानुवर्ष बढ़ता ही रहा है। यही नही इस सम्बन्ध में समय–समय पर बैंक में संचय अभियान चलाकर जनता से अमानतें प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। अस्तु निक्षेपों की उत्तरोत्तर वृद्धि के आधार पर यह निर्विवाद रुप से कहा जा सकता है। अमानतों में तेजी से हो रही वृद्धि बैंक की अपार लोकप्रियता एवं ग्राहक सेवा का परिचायक तो है ही, सुदृढ़ आधार का प्रतीक भी है। जैसा कि ज्ञात हुआ है कि इसमें बैंक के ग्राहकों के अतिरिक्त जन प्रतिनिधियों, अधिकारियों, संचालकों तथा कर्मचारियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

तालिका संख्या - ५०

बैंक के संचित कोष व निधियाँ

क्र. स.	विवरण	वर्ष			(लाख रु0 में)	
		1996–97	1997–98	1998–99	1999–00	2001–01
1.	रक्षितकोष	29.94	36.63	36.64	39.35	48.06
2.	अशोध्य एवं संदिग्ध ऋण कोष	141.02	186.01	196.01	1246.11	336.44
3.	विशेष अशोध्य ऋण कोष	7.38	7.38	7.38	7.38	7.38
4.	भवन कोष	4.78	13.86	13.86	13.67	13.86
5.	कृषि ऋण स्थिरता कोष	1.70	3.60	3.70	3.90	4.05
6.	लाभांश समीकरण कोष	0.02	0.02	0.02	0.02	0.02
7.	विनियोग अवमूल्यन कोष	0.15	0.15	0.15	0.15	0.15
8.	जोखिम कोष	18.02	18.02	18.02	18.02	18.02
9.	अन्य कोष	2.35	2.35	2.35	2.45	2.45
10.	बकाया ब्याज	114.36	132.95	212.95	267.20	293.35
11.	शिक्षा निधि	0.10	0.20	0.10	0.10	0.10
योग –:		316.45	397.78	491.23	598.42	723.88

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 4.*

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि गत 5 वर्षों से अंशपूंजी के अतिरिक्त बैंक अपने व्यवसाय से होने वाले लाभ का एक अंश निकालकर विभिन्न प्रकार के कोषों में धन संचित करता रहा है। यह प्रयत्न एक प्रकार से अपनी निजी पूंजी को सुदृढ़ करने का एक प्रयास कहा जा सकता है। उपरोक्त तालिका के विभिन्न कोषों से यह स्पष्ट होता है कि जितने प्रकार की जोखिम की सम्भावना बैक को जब जब हुयी है, उसी के अनुरुप बैंक ने पहले से ही जोखिम के प्रति सजग होकर वैसे ही प्रावधान करे हैं, जिसमें बैक की आर्थिक स्थिति को कभी भी आँच न आ सके और किसी भी आकस्मिक स्थिति का सरलता से समाधान तुरन्त कर दिया जाय। वस्तुतः यह बैक के अधिकारियों व कर्मचारियों व संचालक मण्डल के अनुभवी होने का व उनकी दूरदर्शिता का परिचायक कहा जा सकता है।

बैक द्वारा प्राप्त बाह्य ऋण

प्रारम्भ से ही जालौंन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि0 उरई का प्रमुख कार्य कृषि के विकास के लिये आर्थिक रुप से कमजोर वर्ग के अन्तर्गत आने वाले लघु कृषक, भूमिहीन कृषक, कृषि आश्रित श्रमिकों की उन्नति के लिये उन्हें सस्ता, समुचित व सामयिक ऋण प्रदान करना रहा है। इसके लिये बैंक सदैव से ही जनता से अमानते प्राप्त करता रहा है। पृष्ठाँकित तालिकाओं से यह स्पष्ट है कि जनता सें प्राप्त अमानतों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है जिससे कमजोर वर्ग को ऋण देना आसान हुआ है फिर भी बैंक ने समय–समय पर बाह्य ऋण राज्य के शीर्ष बैंक अर्थात् उत्तर प्रदेश कोआपरेटिव बैंक लखनऊ के माध्यम से लेकर वितरित किया है। वर्ष 1996–97 से लेकर 2002 तक जालौंन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि0 उरई ने उत्तर प्रदेश कोआपरेटिव बैंक लखनऊ से स्वीकृत सीमाओं के विरुद्ध ऋण प्राप्त किये हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार से है –:

तालिका संख्या - ५१

बैंक द्वारा प्राप्त बाह्य ऋण (लाख रु0 में)

वर्ष	ऋण जो लिया गया			ऋण जो वर्ष के अन्त तक लगा रहा		
	उ0प्र0को0 बैंक से	राज्य सरकार से	योग	उ0प्र0को0 बैंक से	राज्य सरकार से	योग
1996–97	586.62	251.00	837.62	901.07	0.36	901.43
1997–98	606.36	210.00	870.36	454.72	224.22	678.94
1998–99	1083.75	16.00	1104.75	732.05	6.36	738.41
1999–00	303.03	62.50	365.53	593.47	3.36	596.83
2000–01	407.67	–	407.67	698.80	100.36	799.16

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 6*

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि बाह्य ऋणों में उत्तरोत्तर कमी आई है। इसका मूल कारण जनता द्वारा निक्षेपों में उत्तरोत्तर वृद्धि का होना रहा है। इस कारण से ही बाह्य ऋणों पर बैंक की निर्भरता नहीं रही। इसके अतिरिक्त तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि बैंक द्वारा बाह्य ऋणों की किश्तों का भुगतान समय पर होता रहा है। सन् 2000–01 में राज्य सरकार से कोई ऋण नहीं लिया गया। इसके साथ–साथ यह भी एक सराहनीय तथ्य है कि जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि0 उरई कभी भी राज्य सहकारी बैंक का बकायादार नहीं रहा।

बैंक द्वारा प्रदत्त ऋण अग्रिम -:

यह बैंक सदैव से ही नियमानुसार उपविधियों के उद्देश्यों का ध्यान रखकर मुख्यतः सहकारी समितियों के माध्यम से जनपद के सभी कृषकों को, कृषि मजदूरों को, भू आवंटियों को तथा निर्बल वर्ग के लोगों को तथा निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले सदस्यों को व्यवसाय, उद्योग–धन्धो बढ़ाने, परम्परागत उद्योगों को चलित रखने, कुटीर उद्योगों के विकासार्थ तथा उत्पादन में वृद्धि एवं उन्नति के लिये अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण वितरित करता रहा है। यद्यपि व्यापारिक, राष्ट्रीकृत बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको द्वारा ग्रामचालों में कृषि ऋण वितरित किया जा रहा है, परन्तु जो भी

अल्पकालीन कृषि ऋण जनपद में वितरित होता है उसका 3/4 से अधिक ऋण इसी बैंक द्वारा अपनी सदस्य सहकारी समितियों के माध्यम से वितरित होता है। यही कारण है कि जनपद के सहकारिता आन्दोलन में इस बैंक की प्रमुख भूमिका रही है और इस माध्यम से कृषि के विकास में विशेष उल्लेखनीय महत्व रहा है।

कृषि ऋणो के अतिरिक्त बैंक द्वारा नियंत्रित, अनयंत्रित उपभोक्ता व्यवसाय एवं उर्वरक व्यवसाय हेतु सहकारी समितियाँ के माध्यम से ऋण, भण्डारागार निगम (वेयर हाउस) रसीदों पर ऋण, टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के लिये ऋण, वेतन भोगी समितियों के माध्यम से छोटे–छोटे व्यावसायियों के लिये ऋण बैंक की कार्ययोजनानुसार दिये जा रहे हैं। गत पाँच वर्षो में बैंक ने विभिन्न मदों के अन्तर्गत निम्नॉकित ऋण दिये हैं।

तालिका संख्या - ५२

बैक द्वारा 1996–97 से 2000–01 में ऋण वितरण

क्र. स.	विवरण	वर्ष (लाख रु0 में)				
		1996–97	1997–98	1998–99	1999–00	2001–01
1.	अल्पकालीन फसली ऋण	1139.64	1432.14	1060.92	1363.18	1538.07
2.	मध्यकालीनऋण	19.56	9.47	2.93	0.76	0.13
3.	क्रय विक्रय	0.08	10.00	17.38	11.35	–
4.	मध्यकालीन परिवर्तन	0.11	2.14	831.34	247.55	0.42
5.	उपभोक्ता व्यवसाय	123.29	102.80	35.82	40.15	10.30
6.	उर्वरक व्यवसाय	784.12	111.43	918.45	1225.31	1098.70
7.	व्यक्तिगत ऋण	483.08	589.59	1616.19	567.65	740.49
8.	वेअर हाऊस ऋण	233.66	685.93	356.47	118.71	202.59
9.	अन्य ऋण	162.77	200.96	198.26	1786.79	1206.23

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 7*

उपरोक्त तालिका से यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि बैंक ने वर्षानुवर्ष ऋण वितरण में प्रगति की है। मध्यकालीन ऋण निश्चित रुप से कम हुये हैं तथा बहुत से ऋण जो समय से चुकता नहीं किये जा सके या जिनकी किस्तों में विशेष विलम्ब हुआ है, उनके लिये मध्यकालीन परिवर्तन का सहारा लिया गया है। अल्पकालीन ऋण जितने भी अधिक उतारतापूर्वक वितरित किये

जा सके हैं, कृषि विकास में सहायक सिद्ध हुये हैं। उर्वरक ऋणों में भी पर्याप्त वृद्धि होती गई है जो अप्रत्यक्ष रुप से कृषि विकास में लाभप्रद रहे हैं। यही नही बैंक ने अति उदारतापूर्वक व्यक्तियों को व्यक्तिगत ऋण देकर स्थानीय व्यापार के विस्तार में सहायता की है।

इतना ही नही वरन् नाबार्ड के मार्गनिर्देशन में बैंक ने बाबई शाखा में आठ समूहों में से एक नेहरु स्वयं सहायता समूह को प्रयोग की तौर पर 163 लाख रु0 का ऋण प्रदान किया है। नाबार्ड द्वारा प्राप्त एक सूची पृष्ठ संख्या 21 के अनुसार 31 मार्च 2002 के समापन पर दिये गये ऋण निम्न प्रकार से रहे है।

तालिका संख्या - ५३

जालौन डिस्टिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि0 उरई

कृषि एवं अन्य ऋणों का विवरण 31–3–2002 (लाख रु0 में)

क्र.	विवरण	वास्तविक	31.03.02	वर्ष का	वृद्धिदर
1.	अल्पकालीन कृषि	10	1527.20	2037.21	33
2.	मध्यकालीन कृषि	10	–	–	–
3.	आर.आई.डी.	8.75	–	–	–
4.	मध्यकालीन कनवर्जन	10	353.17	–	–
5.	वेअर हाऊस रसीद ऋण	16	37.00	50.00	35
6.	वेतन भोगी समितयाँ	14	361.18	400.00	11
7.	एन.एस.सी./के.वी.पी.	16	27.28	30.00	14
8.	घरेलू सामान	16	21.15	25.00	18
9.	व्यापारियों को स्वी0ऋण	14से17	136.46	200.00	47
10.	वाहन ऋण	8.5	1.70	2.00	18
11.	भवन ऋण स्टाक	7.5	5.35	10.00	86.92
12.	कैश एण्ड केरी	14.00	1226.31	1635.00	33
13.	उपभोक्ता व्यवसाय	12.5	20.45	50.00	44
14.	अल्प अकृषक	14	–	–	–
15.	अधिविकर्ष	16	14.17	21.00	48
16.	आई. सी. बी.	8.75	–	–	–
17.	कर्ज सावधि जमा	2% अधिक	570.62	900.00	50
18.	शाखा भवन	14	1.71	–	–
19.	स्वयं सहायता समूह	12	4.03	10	48
20.	मार्केटिंग भण्डारागार	14	–	–	–
21.	कन्सोर्टियम	15.5	–	–	–
22.	टेक्नीकल लोन	13	1.00	2.21	121
	योग	4307.78		5372.21	

स्रोत –: नाबार्ड द्वारा प्राप्त संमक–प्रपत्र *पृष्ठ संख्या 21*

जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड उरई

द्वारा ऋण वितरण

वर्ष
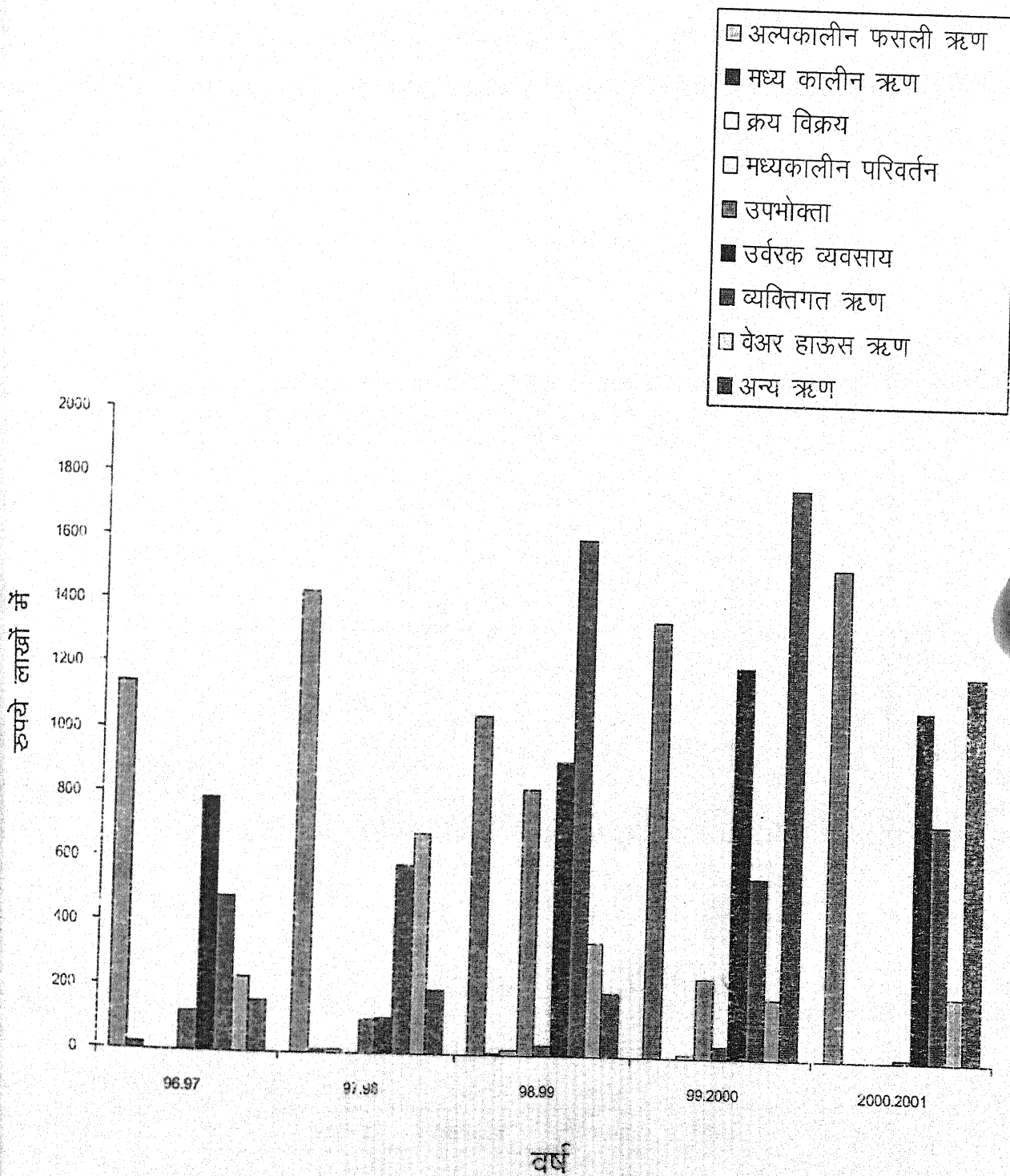
उपरोक्त समंक तालिका यह स्पष्ट करती है कि बैंक नाबार्ड के निर्देशानुसार विभिन्न प्रकार के ऋण देती रही है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बैंक का ऋण देने का क्षेत्र कितना व्यापक है। इसमें विशेष उल्लेखनीय है वेअर हाऊस रसीद ऋण, जिसका तात्पर्य यह है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी वस्तु का भण्डरण किया गया और उसकी रसीद के आधार पर उसे कर्ज दिया गया। इसी प्रकार से व्यक्तिगत विश्वास पर वेतन भोगी समितियों को घरेलू सामान क्रय व उपयोग हेतु ऋण दिये गये। व्यापारियों को स्वीकृत ऋण का प्रतिशत पर्याप्त था। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि वाहन क्रय हेतु, उपभोक्ता व्यवसाय हेतु पर्याप्त ऋण प्रदान किये गये। यह प्रदर्शित करता है कि बैंक का व्यक्तियों व व्यक्तियों का बैंक पर पूर्ण विश्वास है। तकनीकी ऋण भी व्यक्तिगत ऋण की परिध में आता है। कन्सोर्टियम में बैंक द्वारा जो भी धनराशि लगाई गई है, वह राज्य सरकार की गारन्टी पर दी गई है परन्तु इस मद में विशेष ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि बैंक द्वारा जो भी राशि 1997 से आज तक विनियोजित की गई है उस पर गम्भीर हानि ही उठानी पड़ी है। विशेष सावधानी आवश्यक है।

तालिका संख्या - ५४

बैंक की विनियोजन नीति

क्र. स.	विवरण	वर्ष			(लाख रु0 में)	
		1996–97	1997–98	1998–99	1999–00	2001–01
1.	राजकीय प्रतिभूतियों में	351.00	100.00	200.00	100.00	–
2.	उ0प्र0 कोआपरेटिव, बैंक, सावधि निक्षेप में	2582.85	2811.19	3399.39	2627.30	2470.49
3.	उ0प्र0 कोआपरेटिव बैंक याचना निक्षेप में	301.03	626.15	346.00	1517.00	3074.59
4.	सहकारी व अन्य संस्थाओं के अंशों में	48.59	48.59	48.5	53.59	57.59
5.	कन्सॉर्टियम चीनी मिलों में	349.39	349.39	349.39	326.12	326.12
	योग	**2625.37**	**3632.86**	**3935.32**	**4624.01**	**5928.79**

स्रोत–: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 6*

जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड उरई
की बैंक की ऋण वसूली
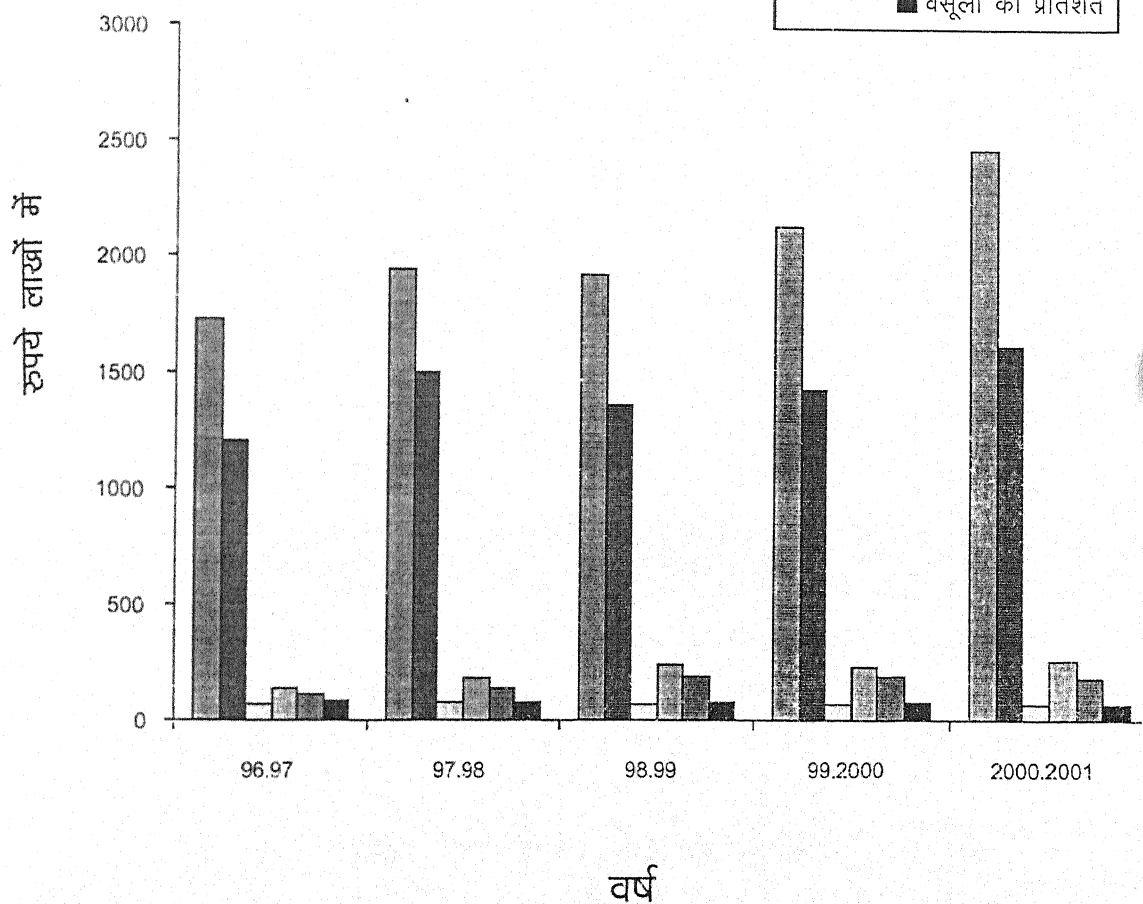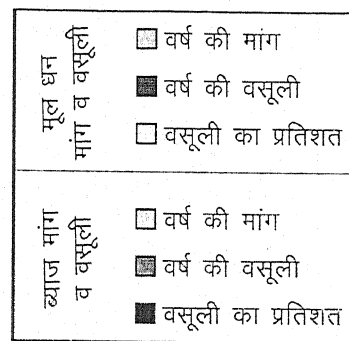
बैंक अपने सृजित लाभ के कोषो एवं निक्षेपों से बचत की पूंजी से लाभार्जन के दृष्टिकोण से विभिन्न क्षेत्रों में अपना धन लगाती है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि बैंक ने पिछले पाँच वर्षो 1996–2001 तक के समय में पर्याप्त लाभ अर्जित किया है जो 3303.42 लाख रु0 था। इस अवधि में विनियोजन बढ़कर 225.8% हो गये। कन्सोर्टियम में विनियोजित धनराशि में यद्यपि अन्तिम दो वर्षो में कमी आई है फिर भी इस धन की वसूली पर विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है। सावद्यि निक्षेपों में जहाँ कमी आई है वहाँ याचना निक्षेपों में वृद्धि विनियोजन नीति की सार्थकता को प्रमाणित करती है। सहकारी व अन्य संस्थाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि विनियोजन नीति के फैलाव का परिचायक रही है।

बैंक की ऋण वसूली नीति

उत्तरोत्तर विनियोजन वृद्धि तभी सम्भव व सार्थक कही जा सकती है जब ऋणों की समय पर वसूली भी हो। समय पर वसूली होने से अधिकाधिक सामयिक विनियोजन भी सम्भव हो पाता है। बैंकिग व्यवसाय की सफलता की यही कुंजी है। सामयिक वसूली न होने पर आगे आने वाली सभी योजनायें प्रभावित ही नहीं होती बल्कि रूक भी सकती हैं। अस्तु यदि बैंक को किन्ही नई योजनाओं को मूर्तरुप देना है तो वसूली एक अनिवार्यता बन जाती है। निम्नलिखित तालिका में गत पंच वर्षीय वसूली का लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया है –:

तालिका संख्या - ५५

बैंक की ऋण वसूली (लाख रुपयों में)

क्र.	वर्ष	मूलधन मांग व वसूली			ब्याज की मांग व वसूली		
		वर्ष की मांग	वर्ष की वसूली	वसूली प्रतिशत	वर्षकी मांग	वर्षकी वसूली	वसूली प्रति0
1.	1996–97	1728.20	1200.40	69.46	140.63	115.64	82.23
2.	1997–98	1952.70	1504.35	77.04	183.00	135.76	74.18
3.	1998–99	1937.22	1363.30	70.37	237.52	187.27	78.84
4.	1999–2000	2149.17	1439.65	66.99	235.48	185.13	78.62
5.	2000–2001	2486.40	1625.98	65.39	256.78	183.10	71.31

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 8*

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि मूलधन की वसूली में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। मूलधन राशि जो वापस होना चाहिये थी उसमें भी वृद्धि हुई है, परन्तु वसूली का प्रतिशत सन् 1997–98 के अपेक्षा हर वर्ष घटता ही गया है। इसी प्रकार ब्याज जो शेष था उस घनराशि में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है और वर्ष 2000–01 में ब्याज की वसूली का प्रतिशत सबसे कम रहा है। फिर भी यह एक संतोष का ही विषय कहा जा सकता है कि लगभग 3/4 वसूली होती रही है तथा स्वयं सहायता समूह को दिये गये ऋण पर 1.65 लाख रु0 की वसूली नियमित रुप से हुई है।

इस सम्बन्ध में सम्पर्क स्थापित करने पर यह ज्ञात हुआ कि विभिन्न क्षेत्रों में विनियोजन के प्रसार से समय पर वसूली व सहकारी समितियों का उन्नयन व नियोजित आर्थिक विकास सम्भव हो सका है। इसमें संचालक मण्डल का विशेष योगदान व सभी कर्मचारियों की बैंक के प्रति निरन्तर सजगता व कटिबद्धता बहुत हद तक सहायक रही है। जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि. उरई के वर्ष 2000–01 के संतुलन–पत्र का समीक्षात्मक विवेचन निम्न है –

बैंक का वार्षिक संतुलन पत्र (बैलेन्स सीट) 1997–98 से लेकर 2001 तक को देखने से दो विशेष तथ्य स्पष्ट होते हैं। प्रथम यह कि बैंक की रोकड़ में व बैंक के वार्षिक लाभ में वर्षानुवर्ष लाभ प्रदर्शित हुआ है। इसे एक शुभ तथा संतोषजनक ही नहीं वरन् सम्मानजनक स्थिति कहा जा सकता है और यह निष्कर्ष सहज में ही निकाला जा सकता है कि बैंक के सभी कार्यकलाप सही दिशा में तथा व्यवहारिक एवं अनुभवी मार्गदर्शन में चल रहे हैं।

तालिका संख्या - ५६

वर्षान्त 31 मार्च	बैंक की रोकड़	बैंक का लाभ
1997–98	1,126,8,721.92 रु0	908,103.09 रु0
1998–99	1,81,300,39.67 रु0	19,43,014.80 रु0
1999–2000	2,38,80,250.03 रु0	6,3,4,558.07 रु0
2000–01	1,42,85,412.72 रु0	13,127,12.29 रु0

स्त्रोत –: जालौंन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि. उरई के विभिन्न वर्षों के संतुलन पत्रों से।

1. बैंक के संतुलन पत्रों से कई अन्य तथ्य उजागर होते हैं, जिसमें विशेष उल्लेखनीय बैंक द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में शाखायें खोलना एवं उनका सही संचालन एवं आधुनिकीकरण करना रहा है। शाखा विस्तार योजना के अन्तर्गत वर्ष 1997–98 में 92 वें अधिवेषन में कोटरा, कैलिया आदि स्थानों पर नई शाखायें खेलना प्रस्तावित व कार्यन्वित किया गया है।
2. निक्षेप संचय अभियान सफलतापूर्वक चलाना तथा निक्षेपों में निर्धारित लक्ष्यों के आधार पर वृद्धि करना।
3. अल्पकालीन ऋण वितरण कृषि व अकृषि क्षेत्रों में कर नये व्यक्तिगत व्यवसायों की प्रोत्साहित करना।
4. भण्डारगार निगम की गोदामों की रसीदों पर निर्धारित ऋण विवरित करना।
5. वेतन भोगियों को ऋण वितरित करना।
6. किसान विकास पत्र तथा एन. एस. सी. पर 15 लाख रु0 तक का ऋण वितरण करना।
7. ऋण वसूली का वार्षिक लक्ष्य निर्धारित करना एवं लक्ष्य से अधिक वसूली करने की चेष्टा करना।
8. बैंक द्वारा सचिव के माध्यम से लाभ वितरण की व्यापक योजना तैयार करना तथा लाभ का विभिन्न मदों के महत्व को ध्यान रखते हुये लाभ का समायोजन करना।

9. समायिक अतिवृष्टि या अवृष्टि से उत्पन्न सूखे की स्थिति से आहत कृषकों की राहत हेतु वसूली स्थगित करना, पुनः बुआई के लिये ऋण की सुविधा देना, व नकद राहत देना भी शामिल रहे हैं। इससे ग्रामीण क्षेत्रों के कृषकों का मनोबल बढ़ा है तथा कृषि विकास में अवरोध उत्पन्न नहीं हुये हैं।
10. मुख्यालय पर बैंक से सहायतार्थ ऋण लेने आये कृषकों को कभी-कभी प्रपत्रों के पूर्ण करने में विलम्ब के कारण रुकने की असुविधा को देखते हुये एक सहकारी किसानभवन निर्माण का प्रस्ताव भी विचाराधीन है।
11. सहकारी समितियों के सदस्यों को 'किसान क्रेडिटकार्ड' जारी किये गये हैं तथा इसका न्यूनतम लक्ष्य 11000 कार्ड जारी करना रखा गया है।
12. जनपद की समितियों में उर्वरक की सामयिक उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये सुविधायें प्रदान की गई हैं।
13. उरई मुख्य शाखा के कम्प्यूटरीकरण करने का लक्ष्य 93 वें अधिवेशन में 1999-2000 में रक्खा गया जो अब पूरा कर लिया गया है।
14. एक नयी योजना जिसके अन्तर्गत बचत खाताधारकों की व्यक्तिगत दुर्घटना बीमां योजना को संचालित करने का भी लक्ष्य है।

वस्तुतः बैंक की सफलता व अर्जित लाभांश के द्वारा इन सभी प्रयासों को व्यवहारिक रुप देने की सतत् चेष्टा रही है और इसी से बैंक एक सुदृढ़ आधार पर प्रगति के मार्ग पर सफलता पूर्वक अग्रसर हो रहा है।

परन्तु आय पक्ष या सम्पत्ति पक्ष के विपरीत दायित्व पक्ष पर जब दृष्टि अवलोकन करते हैं तो कुछ असंतोषजनक स्थितियाँ भी उभरकर सामने आती हैं जो यद्यपि वर्तमान परिस्थितियों में अतिगम्भीर न मानी जायँ परन्तु इनकी उत्तरोत्तर वृद्धि या स्थिर रहना निश्चित ही कभी न कभी चिन्ता का विषय बन सकती है। ये कुछ निम्नाँकित है -:

दायित्व पक्ष में एक मद है स्पेशल बैडडेट रिजर्व। यह पिछले चार वर्षों से स्थिर 7,37,908.94 रु0 ही रही है। दूसरे शब्दों में इस मद में रुपया रखना ही पड़ता है जो एक प्रकार से सुरक्षार्थ परन्तु विवशतावश पड़ी धनराशि है जिसका कोई सद्पयोग सम्भव नहीं हो पा रहा है। यह रकम छोटी नहीं है। यह यद्यपि बैंक के सुदृढ़ व सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से हितकर है परन्तु फिर भी इसका कोई सदुपयोग सम्भव नहीं है।

उपरोक्त धनराशि के अतिरिक्त कुछ अन्य मदें दायित्व पक्ष में ऐसी हैं जो बैंक के लाभ से समायोजित की जाती हैं जिससे संतुलन पक्ष संतुलित दिखाया जा सके अर्थात् सम्पत्ति पक्ष व दायित्व पक्ष समान रहें। इसी से किसी भी संस्था का सही मूल्याँकन और संस्था की सुदृढ़ स्थिति का आभास होता है। फिर भी दायित्व पक्ष की ये निम्नाँकित देनदारियाँ वस्तुतः संस्था के लाभ को कम करती हैं व बैंक की आर्थिक स्थिति में अधिक लाभार्जन में एक विराम तो लगा ही देती है। चिन्ता इस बात की भी है कि इस प्रकार के स्थिर व्यय या कटौती की धनराशि में उत्तरोत्तर वृद्धि ही देखने को मिली है।

तालिका संख्या- ५७

बैंक की स्थिर देनदारियाँ

क्र.	विवरण	1996–97	1997–98	1998–99	1999–00	2001–01
1.	बकाया ब्याज हेतु रिजर्व	114,38,283.45	132,95,250.52	21295250.52	267,202250.52	93,34,525.48
2.	ब्याज देय	54,39,674.69	2,90,770.87	9130,354.32	9601496.55	100,77922.30
3.	अन्य दायित्व	42,70,908.00	126,77655.83	26,18,679.11	230,4274.63	27,50,723.86

स्रोत –: बैंक से प्राप्त विभिन्न वर्षों के संतुलन पत्रों से।

उपर्युक्त तालिका से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न मदों की देय रकमों द्वारा संतुलन पत्र को निरन्तर संतुलित करने की प्रक्रिया की गई है जो वास्तव एक चातुर्यपूर्ण प्रक्रिया ही कही जायेगी।

पंचम अध्याय

जालौन जिला सहकारी बैंक लि० के लाभार्थियों का विश्लेषणात्मक एवं तथ्यात्मक अध्ययन

अल्पकाल में कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि के लिये, कृषि तकनीक, अधिक उपज देने वाले उन्नत बीज, अधिकाधिक उर्वरकों का प्रयोग, सामयिक सिंचाई, कीटाणुनाशक दवाओं का छिड़काव, तथा उपयुक्त कृषि सहायक यन्त्रों की सेवाओं को प्राप्त करने के लिये, लघु कृषकों, सीमान्त कृषकों एवं खेतिहर मजदूर कृषकों को अल्पकालील एवं मध्यकालीन ऋण की अपरिहार्यता तथा अनिवार्यता एक पूर्व शर्त है और यह सब उस स्थिति में नितान्त आवश्यक हो जाता है जबकि जनपद–जालौन जैसे कृषि क्षेत्र हों जहाँ न तो प्रकृति की उदारता ही रही है, न अनुकूल जलवृष्टि और न ही भूमि अन्य जनपदों की भांति, अपेक्षाकृत उर्वराशक्ति में उदार रही है। इस सबके ऊपर कोढ़ में खाज का काम करती निर्धनता परिस्थितियों को और अधिक विषम व विपरीत बना देती है। बुन्देलखण्ड, जनपद–जालौन जिसका एक प्रमुख क्षेत्र है, के बारे में एक कथन बहु प्रचलित रहा है, **''जमीन हमवार नहीं, वृक्ष फलदार नहीं''**

उर्पयुक्त पृष्ठभूमि में मरते खपते जनपद निवासियों में आशा की किरण उस समय प्रस्फुटित हुयी जब योजनात्मक अर्थव्यवस्था के लागू होने पर रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की एक विज्ञप्ति (मैनुअल) में कृषि का महत्व दर्शाते हुये यह कहा गया ''विभिन्न प्रकार की प्रदत्त साख सुविधाओं यथा संस्थागत अथवा सहकारी संस्थाओं के होते हुये भी प्रत्येक क्षेत्र की आर्थिक उधार अर्थात ऋण नीति ऐसी निर्धारित व निश्चित होनी चाहिये, जिससे कृषि

उत्पादन में वृद्धि को प्रोत्साहन व सहायता मिले और साथ–साथ यह भी देखा जाये कि प्रदत्त ऋण का इस प्रकार सदुपयोग हो कि कृषि उत्पादन वृद्धि व कृषक जीवन सम्बर्द्धन एवं उत्कर्षण सम्भव हो।'' स्मरणीय तथ्य यह भी ध्यान में रखा जाये कि कृषि साखप्रधानता उत्पादन वृद्धि के लिये हो न कि कृषक के लिये। ऐसा इसलिये क्योंकि कृषि उत्पादन वृद्धि से आय में वृद्धि अवश्यम्भावी है। इस कृषि साख सुविधा के कर्तव्य बोध से सर्वाधिक प्रभावशाली भूमिका प्रभावित होती व निर्भर करती है। अतः केन्द्रीय सहकारी बैंक, जो सामयिक सस्ती व समुचित ऋण नीति का अनुसरण करते हुये क्षेत्रीय जनता को लाभान्वित करने में प्रतिबद्ध है, के द्वारा ऋणों की सामयिक व सरल वसूली की अनिवार्यता को नही भुलाया जाना चाहिये। इसके लिये सरल व सचेत निगाहें रखनी होगीं जिससे ऋण का सदुपयोग कृषि उपज संवर्धन हेतु ही हो और ऋण अदायगी सुगम हो सके।

ऋण देने के उद्देश्य :

एक केन्द्रीय सहकारी बैंक को स्वयं व्यक्ति को या समिति के माध्यम से ऋण देते समय निम्नाँकित तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिये।

1. ऋण तकनीकि और आर्थिक दोनों पहलुओं पर आधारित हों।
2. ऋण के सदुपयोग से कृषक में ऋण अदायगी शक्ति का संचार हो।
3. ऋण से जो उपज प्राप्त हो उससे कृषक के रहन सहन के स्तर में वृद्धि हो। और
4. कृषक की आय वृद्धि से उसकी बचत बढ़े और इस प्रकार कृषक व केन्द्रीय बैंक दोनों आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हों।

ऋण देते समय सावधानियाँ -:

1. समयान्तर (टाईमलैग) का अर्थ कृषक के ऋण प्रार्थनापत्र देने के बाद

उसे ऋण मिलने में लगने वाला समय है। यदि प्रार्थनापत्र देने के पश्चात् समय से ऋण सुलभ न हो पाये तो फिर उस ऋण का वास्तविक उत्पादक उद्देश्य समाप्त होने की सम्भावना बढ़ जाती है और हो सकता है कि वह ऋण कृषक अनुत्पादक कार्य में लगा दे। परिणामतः न केवल ऋण का उद्देश्य समाप्त हो जाता है वरन् ऋण वसूली में भी विशेष अड़चन होती है और अनिश्चितता भी बढ़ती है।

2. साखान्तर या ऋणान्तर (क्रेडिटगैप) से तात्पर्य ऋण की पर्याप्तता (एडीक्वेसी आफ लोन) से है अर्थात जितना ऋण कृषक द्वारा मांगा गया है, वह उसे मिल रहा है या नहीं। प्रायः कई अपरिहार्य कारणों से कृषक को उतना ऋण समय से नहीं मिल पाता जितनी उसे आवश्यकता है। ऐसे में भी ऋण देने का उद्देश्य किसी हद तक विफल हो जाता है। ऐसी स्थिति में कृषक शेष ऋण की पूर्ति के लिये स्थानीय साहूकार के पास जाने की वाध्य हो जाता है और फिर अत्यधिक ब्याज भुगतान व अमानवीय शर्तों के गर्त में पड़ जाता है। इससे सहकारिता के पुनीत उद्देश्य को ग्रहण लगने की सम्भावना बढ़ जाती है अतएव ऋण सामयिक के साथ–साथ समुचित भी होना अति आवश्यक है।

शोध संरचना हेतु अपनाई गई प्रक्रिया का प्रारुप -:

सर्वप्रथम शोध संरचना की पंचम अध्याय की तालिकाओं को ध्यान में रखकर शोध प्रश्नावलियाँ तैयार की गयीं। उन्हें तीन भागों में विभाजित किया गया व आकस्मिक निदर्शन विधि (रेन्डम सेम्पिलिंग मेथड) का प्रयोग किया –

1. व्यक्तिगत सदस्यों से मिलकर उन्हें प्रश्नावली दी तथा उस का महत्व एवं उद्देश्य समझाया। उन्हें बताया कि किस प्रकार की नीति सहकारी समितियों की हो व केन्द्रीय सहकारी बैंक से वे किस प्रकार लाभान्वित

हो सकते हैं। यह सविस्तार समझाने की चेष्टा की तथा उनके भ्रम और भय का निराकरण करने की भरसक चेष्टा की। इस प्रकार 50 व्यक्तियों को 50 प्रश्नावलियाँ भरने को दीं तथा 15–30 दिन के अन्दर उनसे पुनः मिला।

2. ग्रामाँचलों की सहकारी समितियों के माध्यम से सदस्यों से मिलकर उनकों स्वयं व समितियों के सचिव व अध्यक्षों के माध्यम से प्रश्नावलियों का उद्देश्य, महत्व तथा उन्हें व समिति को होने वाले लाभ को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया। इन्हें भी 50 प्रश्नावलियों भरने को दी।

3. तीसरे वर्ग में मैंने केन्द्रीय बैंक की ग्रामीण शाखाओं से सीधा सम्पर्क स्थापित किया। उन तिथियों पर जबकि लाभार्थी ऋण की रकम जमा करने या ऋण की रकम लेने आने को होते थे, बैंक के माध्यम से उन लोगों को प्रश्नावलियों को दिलवाया व उन्हें एवं बैंक अधिकारी व कर्मचारियों को अपने शोध–कार्य के उद्‌देश्य, शैक्षिक तथा सहकारी सजगता का संबर्धन तथा ऋण के सदुपयोगों के बारे में जानकारी उपलब्ध करायी। इसके साथ–साथ उनके बैंक के प्रति और बैंक के उनके प्रति दायित्व का भी बोध कराने का प्रयास किया। यद्यपि इस समस्त प्रक्रिया हेतु मैने 15–30 दिन का समय दिया था, परन्तु ऐसा लगा कि अधिकांश लाभार्थियों पर मेरे प्रयास का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि जब मैने पुनः सम्पर्क–भ्रमण प्रारम्भ किया, तो या तो उनकी दैनिक दिनचर्या की खेत खलिहानों की संलग्नता ने, या उनकी प्रश्नावलियाँ के प्रति अनभिज्ञता, अनिश्चितता व अविश्वास के कारण मुझे उन्हें दुबारा प्रश्नावलियों देकर स्वयं बैठकर समझाकर सरलता से भरवाने की क्रिया अपनानी पड़ी।

ऋण का उपभोग -: (या ऋणी के ऋण का विभक्तीकरण बारोअर्स लोन ब्रेक अप)

आकस्मिक निदर्शन विधि (रेन्डम सेम्पलिंग मेथड) से व्यक्तिगत कृषकों से जो आँकड़े प्राप्त हो सके हैं उन सभी ने ऋण का उद्देश्य एक सा ही लिख दिया है, अर्थात् कृषि कार्य हेतु। यह स्पष्ट न होने के कारण उनसे दुबारा बड़ी मुश्किल से सम्पर्क हो पाया। कई चक्कर लगाने पड़े, कई तरह के पापड़ बेलने पड़े तब कहीं जाकर 150 शोध प्रश्नावलियों में से 58 भरी हुई प्रतियाँ मिल सकीं, कुछ ने तो खो दीं या उनका महत्व न समझ कर या किसी झिझक के कारण इधर–उधर कर दी। इन 58 शोध प्रश्नावलियों में से 10 प्रश्नावलियाँ बैंक अधिकारियों द्वारा प्रमिहस्ताक्षरित नहीं थी और चूंकि ऋण बैंक से लिया गया था, अस्तु उन्हें विश्लेषण में सम्मलित नहीं किया जा सका। अस्तु 48 प्रश्नावलियों के कृषि कार्य का विभक्तीकरण (डिवीजन) निम्नांकित प्रकार से किया गया जो उनसे व्यक्तिगत तौर से सम्पर्क करके मदों को अलग–अलग करने के बाद पूछने पर ज्ञात हो सका –

	लाभार्थी संख्या	प्रतिशत
1. जानवर/भैंस बैल आदि क्रयहेतु	4	8.3
2. कर्ज अदायगी हेतु	8	16.7
3. हल जुताई व बुआई हेतु	12	25
4. कृषि उपज संवर्धन हेतु	12	25
5. कृषि–यन्त्र क्रय हेतु	6	12.5
6. घरेलू कार्य हेतु	6	12.5

उपरोक्ता तालिका का विश्लेषण

१. जानवर/भैंस/बैल क्रय -:

जिन लोगों ने बैल या भैंस लेने की बात कही, उनसे उनके क्रय करने का कारण जानने की चेष्टा की। रसीद तो किसी के पास नहीं मिली, हाँ जानवर उनके घर पर जरुर देखने को मिले। इस सम्बन्ध में एक अफवाह भी सुनने को मिली कि जिन लोगों ने जानवर क्रय किये बतलाये हैं वे या तो पहले से ही उनके पास थे या फिर किसी दूसरे के जानवरों को अपना बतला दिया था। परन्तु मुझे तो उनकी बातों को ही आधार बनाना पड़ा, और इस नाते समंकों की सत्यता पर संशय की छाप तो है ही।

२. अदायगी -:

इसके अन्तर्गत अधिकांश ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपने अल्पकालीन ऋण से उऋण होने के लिये व निर्धारित भुगतान तिथि बीत जाने के कारण अल्पकालीन ऋण का पुनः नवीनीकरण कराकर पुराना ऋण चुकाया। इस प्रकार मात्र किताबी लेखा–जोखा ही ठीक किया गया और जो पहले से ऋणीं थे वे लोग ऋणीं ही बने रहे।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जितने ऋण व्यक्तिगत लिये गये वे तो समय से चुकता हो गये दिखाये गये हैं परन्तु जो ऋण समिति के सदस्य होने के नाते समिति के माध्यम से लिये गये, उनमें से अधिकांश की पूर्ण वसूली नही हो सकी। सबसे शोचनीय स्थिति तो उन (6+10) व्यक्तियों की रही, जिन्होंने बैंक की शाखाओं से बड़ी मात्रा में विशेषकर कृषियंत्र आदि क्रय करने हेतु ऋण प्राप्त किये। इनमें से एक ने भी ऋण का आंशिक भुगतान भी नहीं किया। उपरोक्त में से 6 सदस्य तो वे व्यक्ति हैं जिनकी प्रश्नावली पूर्णतया भरी व बैंक से प्रतिहस्ताक्षरित भी हैं मैने इन्हीं को अपने शोधअध्ययन

में सम्मलित किया है। शेष 10 प्रश्नावसियों को मैने सुरक्षित संदर्भ हेतु रक्खा है।

अब इसे बैंक की दायित्वहीनता कहा जाय या फिर उदासीनता, क्यों कि प्रश्नावली उन्ही के माध्यम से दी गई थी। फिर भी अपूर्ण है जबकि गम्भीर तथ्य यह है कि ये सब ऋणी लम्बी–लम्बी रकम लिये बैठे हैं और वसूली नहीं हो पा रही है। यदि स्थिति यही बनी रही तो ग्रामींण बैंक शाखायें कृषि व ग्रामींण विकास में अपना योगदान दे सकेगी, इस पर बड़ा प्रश्न चिन्ह लग जायेगा।

इसी संदर्भ में एक अन्य वर्गीकरण, जो शोध संरचना का भाग है, के अनुसार 48 प्रश्नावलियों में, –:

7 लघु या सीमान्त कृषक वर्ग में,

35 मध्यम कृषक वर्ग में तथा

6 उच्च वर्ग में आते हैं

उच्च वर्ग के इन 6 व्यक्तियों की प्रश्नावलियों के साथ शेष में से 10 प्रश्नावलियाँ और जोड़ देने के पश्चात यह तथ्य उजागर होता है कि इनके (कुल 16 व्यक्ति) ऋण की रकम बहुत बड़ी है व समय बीतने के पश्चात् भी नहीं अदा की गई है। कुछ का तर्क है कि उनका क्षेत्र सूखा–ग्रस्त क्षेत्र घोषित था और या तो वे समय से ऋण चुकता नहीं कर पाये या जो ऋण था उसके माफ होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं क्योंकि उनके पास कुछ बचा ही नहीं जबकि परिस्थितियां कुछ और ही संश्यात्मक स्थिति का आभास कराती हैं। बहरहाल दाल में काला हर हालत में नजर आता है, जिसे किसी प्रकार से जनपद के कृषि व ग्रामीण विकास की सम्भानाओं के लिये हितकारी नहीं कहा जा सकता है।

(३ व ४) हल जुताई व बुआई तथा कृषि उपज संवर्धन हेतु

ऐसे लाभार्थी, जिन्होंने उपरोक्त मदों के लिये ऋण लिये थे, से ऋण के सदुपयोग की सत्यता के प्रमाण नहीं मिल सके। केवल इनके द्वारा दी गयी जानकारी पर विश्वास करना पड़ा, क्यों कि ये मदें ऐसी थी जिनका उपयोग या प्रयोग या तो हो चुका था या हो रहा था। इनमें से कुछ के पास हल बैल थे व कुछ ने ट्रेक्टर की सेवायें ली थीं।

५. कृषि यंत्र क्रय -:

इसके अन्तर्गत क्रय किये गये कृषि यन्त्र जिनमें, ट्रेक्टर, थ्रेसर, ब्लोअर पम्पिंग सेट, स्प्रे–यन्त्र और पंखे आदि लिये गये बतलायें गये, यह सभी यन्त्र कहीं न कहीं किसी न किसी के पास देखे तो गये लेकिन इनके वास्तविक मूल्य की रसीद व उनके क्रय की तिथि आदि के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी।

६. घरेलू कार्य हेतु -:

इस मद में लाभार्थियों से जो जानकारी मिली, उसमें अधिकांश द्वारा घर की मरम्मत या फिर घर के कोई न कोई धार्मिक या वैवाहिक कार्यक्रम में, अर्थात् अनुत्पादक कार्य में ऋण की रकम लगाने के बात स्वीकारी गयी। इसमें सबसे संतोष की बात यह थी कि उन लोगों ने जो भी ऋण लिया था उसे लगभग एकाध को छोड़ सभी ने समय से पूरा अदाकर दिया था। इसमें लघु या सीमान्त कृषक व मध्यम वर्गीय सदस्य ही अधिकतर थे, जिन पर कुल ऋण का 12.5% व्यय हुआ।

७. ऋणें का उपयोग -:

ऐसा माना जाता है कि ऋण प्राप्त करना महत्वपूर्ण है परन्तु ऋण का सदुपयोग करना और भी अधिक महत्वपूर्ण होता है। परन्तु जैसा कि मैने सर्वेक्षण करके पाया कि 48 ऋणी लाभार्थियों में से जो लघु व सीमान्त तथा

मध्यमवर्गीय (7+35) कृषक थे, अधिकांश ने जिस कार्य के लिये ऋण लिया था उस पर व्यय किया बतलाया। थोड़ी बहुत जांच पड़ताल करने से ज्ञात हुआ कि मध्यमवर्ग के कृषकों में लगभग 10 ने जिस कार्य के लिये ऋण लिया गया था उसमें नहीं लगाया तथा शादी विवाह में खर्च कर दिया। जहाँ तक बड़े कृषकों या सम्पन्न वर्ग के कृषकों का सम्बन्ध है, उन्होंने तो ऋण उपभोग का सही–सही ब्योरा देने में पहले तो आनाकानी की फिर साफ इन्कार कर दिया। इससे मैने यही निष्कर्ष निकाला कि निश्चय ही वे कहीं न कहीं दोषी हैं। इन (10+6) 16 ऋणी व्यक्तियों पर अवधि बीत जाने पर भी 1543.52 लाख रु0 उधार शेष है। यदि वे 6 प्रश्नावलियाँ ली जाँय जो लगभग हर प्रकार से पूर्ण हैं (यद्यपि इनमें भी किसी में भी ब्याज की दर स्पष्ट नहीं की है) उनमें ही –:

1. दिया गया ऋण 880.28 लाख रु0,
2. वसूल किया गया ऋण 741.01 लाख रु0 तथा
3. शेष (अवधि पार) ऋण की रकम 139.27 लाख रु0 है।

इस प्रकार जहाँ तक ऋण देने की बात है, उस सम्बन्ध में कुछ ने अपत्ति उठाई कि छोटे कृषकों की अपेक्षा बड़े कृषकों को समिति द्वारा तथा बैंक की शाखाओं द्वारा आसानी से ऋण उपलब्ध कराया गया है और बैंक की ऋण नीति का वास्तविक लाभ कुछ मध्यमवर्गीय कृषकों को और अधिकतर बड़े कृषकों को ही मिला है, जबकि जहाँ तक ऋण वसूली का प्रश्न है तो एकाध को छोड़ सब पर पर्याप्त ऋण राशि समय बीत जाने पर शेष है। कुछ बड़े कृषक भी सूखे की भार का रोना रोते हैं परन्तु मेरी समझ में यही आया कि सूखे की मार हमेशा की भाँति लघु व सीमान्त कृषकों पर अधिक पड़ी है। यह एक इत्तेफाक ही था कि जिन दिनों मैंने कई गाँवों में जाकर खेत व खलिहानों की स्थिति देखी तो लघु और सीमान्त कृषक ही इस सूखे से अधिक प्रभावित दिखे। एक अन्य तथ्य और इन सभी के मध्य स्थापित सा लगा कि

खरीफ की फसल तो थोड़ी बहुत प्रभावित हुई है, परन्तु रबी की फसल हर साल से अधिक अच्छी है अतः जो कमी व नुकसान खरीफ में हुआ है, वह रबी से पूरा हो जायेगा। इस कारण चिन्ता की कुछ रेखायें कुछ ग्रामीण चेहरों पर देखने को तो अवश्य मिली, परन्तु उनकी दबी मुस्कान कुछ और ही बात की ओर संकेत करती लगी। कुछ ने पिछले वर्ष की फसल की दुहायी दी जब दोनों फसलें अच्छी हुई थी। इस सबसे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि कृषि तकनीक में सहकारिता की सजगता के साथ–साथ जो परिवर्तन हुआ है वह छोटे बड़े सभी कृषकों को लाभन्वित कर गया है। इससे उनकी प्रति एकड़ लागत कम हुई है व आमदनी अपेक्षाकृत अधिक हुई है जिससे उनकी कर्ज अदायगी की क्षमता में भी वृद्धि हुई है। यह तो बड़े कृषक है जो येन–केन–प्रकारेण अपने प्रभाव व तर्क द्वारा बैंक को व उसकी शाखाओं को ऋण की रकम अवधिपार दिखलाकर व्यर्थ की हाय–तौबा मचा रहे हैं। वस्तुतः ये लोग समिति व बैंक की शाखाओं से प्राप्त ऋण राशि को अधिक व्याज पर यथा 12% से 14% पर दूसरों को दिये हुये हैं या फिर व्यक्तिगत सम्पत्ति का संबर्धन कर उससे अतिरिक्त आय अर्जित कर रहे हैं और बैंक से लिये गये ऋण को जब तक टाला जा सके, टाल रहे हैं और इस प्रकार से अपने को कृत्रिम रुप से ऋणी बतला रहे हैं। परन्तु बास्तविकता यह है कि ये लोग चैन की वंशी बजा रहे है, उनके पास सभी प्रकार के कृषि यंत्र हैं, सभी सुविधायें हैं व बंधुआ मजदूर हैं जिनसे मनचाहा व मनमाना कार्य कराते, उनका पीढ़ी दर पीढ़ी शोषण करते तथा आमोद–प्रमोद व विलासी जीवन के आन्नद का भोग रहे हैं।

सहकारी सजगता -:

इधर पिछले कुछ वर्षों से जब से ग्राम पंचायतो की गामीणोंद्धार में प्रमुख भूमिका निभाने की बात सामने आई है तथा ग्राम– पंचायतों को अधिकाधिक अधिकार, उनके ग्राम के प्रतिदायित्वों का आवंटन और इस सबके

लिये पर्याप्त धन की सुविधा सुलभ करायी गई है तब से उन्हें हीं ग्राम के सभी पहुलुओं पर नियंत्रण करने का अधिकार दिया गया है। इसके साथ ही सहकारी समितियों की भूमिका में भी कुछ न कुछ प्रगति दिखायी दे रही है। उनके अन्दर सहकारिता के प्रति सजगता व नया दृष्टिकोण जागा है और आज अधिकांश पढ़े–लिखे व गैर पढ़े–लिखे कृषक भी सहकारी समितियों के सदस्य बनने व उससे लाभान्वित होने की चेष्टा करने लगे हैं जिससे उनकी अनेक छोटी–मोटी व असामयिक उत्पन्न होने वाली बाधाओं व कठिनाइयों का समाधान सम्भव होने लगा है। वे सामान्यतया सहकारी समितियों के गठन व उसकी सदस्यता ग्रहण करने के इच्छुक भी दिखायी पड़ते है।

सहकारी सजगता ग्रामीणों में आना आवश्यक है। चाहे वह छोटा कृषक हो, खेतिहर मजदूर हो या बड़ा कृषक हो, यदि वे सहकारिता के सही अर्थ व भाव को पहचान ले तो फिर जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, ऋण राशि का दुरुपयोग, विलम्बित भुगतान या आंशिक भुगतान, अवधिपार ऋण, वसूली की उदासीनता या बेईमानी की प्रवृत्ति पर अंकुश तो अवश्य ही लगेगा। इस प्रकार सहकारी शिक्षा व सहकारी सजगता का सम्बन्ध उसके प्रारम्भ से भी है और अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने से भी है। इससें ग्रामीणों का आर्थिक उत्थान ही नहीं, सामाजिक व सांस्कृतिक हर प्रकार का उत्थान व प्रगति सम्भव है और इसीलिये ग्रामीणों में सहकारी सजगता व उदय व आभास होना लाभप्रद है क्योंकि इससे वे सहकारिता व सहकारी साख का सही अर्थ तथा उद्देश्य जान सकते हैं।

प्रदत्त ऋणों का आय पर प्रभाव

यह एक सर्वस्वीकृत तथ्य है कि कोई भी उधार ली गई ऋण–राशि का महत्व तभी होता है जबकि उससे अर्जित आय इस प्रकार से हो कि कर्ज ली गई राशि को समय से बिना किसी कठिनाई के वापस किया जा सके और

साथ–साथ लाभार्थी की आर्थिक स्थित में सुधार परिलक्षित हो। दूसरे शब्दों में जिस कार्य में ऋण–राशि को लगाया जाय तो उसमें लागत से अधिक लाभ या आय हो, और तभी इस प्रकार के कार्य को आर्थिक रुप से उपयोगी कार्य कहा जा सकता है। इससे न केवल कृषकों का ही आर्थिक कल्याण होगा वरन् इससे वे संस्थायें, बैंक या सहकारी समितियाँ भी अर्थशक्ति को पुनः विनियोजित कर उत्पादन के कार्य को प्रोत्साहित करने में सफलता पूर्वक सहायक सिद्ध होगी। इस प्रकार से सहकारिता एक आदर्श विचार कहा जा सकता है जिसमें एक ओर साख सामाजार्थिक साधनों का संवर्धन करती तो दूसरी ओर विकास की गति को बल प्रदान कर तीव्रता का संचार करती है।

अस्तु कोई विनियोजन या ऋण–राशि का प्रयोग लाभप्रद है या नहीं यह तभी ज्ञात हो सकता है जब हम यह निकाल सकें या जान सकें कि ऋण राशि को लागत में जोड़ने से तथा उससे प्राप्त शुद्ध आय में कितनी वृद्धि हुई अर्थात् हमें इस हेतु "लागत लाभ विश्लेषण विधि" द्वारा यह जानकारी मिल सकेगी कि –

1. सीमान्त कृषक या लघु कृषकों को एवं
2. मध्यमवर्गीय कृषक और बड़े कृषकों को तुलनात्मक रुप से अपेक्षाकृत कितना लाभ सम्भव हो सका।

इसमें आदानों (इनपुट्स) के अन्तर्गत आने वाले व्यय में किराये पर रक्खे गये मजदूरों की मजदूरी, जानवरों या उपयोग में लाये गये कृषि यन्त्रों, खाद व उर्वरकों का प्रयोग, सिंचाई व्यय तथा कीटाणुनाशक छिड़काव आदि में लगाई गई पूंजी को सम्मलित किया गया है। आय पक्ष में मुख्य फसल का मूल्य, अन्य सहउत्पादकों (बाई प्रोड्क्स्) का मूल्य जोड़कर निश्चित करेंगे। ऐसी ही विधि रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा भी अपनायी गई थी जिससे किसी भी उत्पादन की इकाई की अर्थ–जीवी सार्थकता को (इकोनोमिक वाईविल्टी)

ज्ञात किया जा सके। भूमि पर आदानों की अधिक इकाइयाँ लगा कर, सघन खेती करके या फिर जोत के आकार को बढ़ाकर, फसलों के क्रम में हेर फेर करके, या फिर उच्च–तकनीक को अपना कर उत्पादन में और आय में वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। इन सभी कारकों के महत्व को ध्यान में रखकर मैने तीन प्रमुख फसलों को शोध–संरचना का आधार बनाया है, जिससे किसी हद तक कृषकों की आय व आर्थिक स्थिति में होने वाले प्रभावों का सही–सही मूल्यांकन व विवेचन किया जा सके। इसके अन्तर्गत, गेहूँ, जो इस जनपद की रबी की मुख्य व सबसे महत्वपूर्ण फसल है, को चुना है। दूसरी फसल खरीफ की प्रधान फसल है, यद्यपि इसकी खेती अब अन्य फसलों के आ जाने से यथा मसूर की बुआई से प्रभावित हुई है फिर भी ज्वार व बाजरा दोनों ही खरीफ की फसलें है। तीसरी फसल तिलहन की है जो मूलतः रबी की फसल के साथ बोयी जाती है जिसमें सरसों, लाही व अलसी प्रमुख रुप से आती हैं और इनकी खेती भी कृषि उपज में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, को लिया गया है।

तालिका संख्या - ५८

लागत और उसका प्रतिफल (प्रति एकड़ रुपयों में)

मदें	लघु कृषक		मध्यम कृषक		बड़े कृषक	
	ऋण से पूर्व लागत	ऋण मिलने पर लागत	ऋण से पूर्व लागत	ऋण मिलने पर लागत	ऋण से पूर्व लागत	ऋण मिलन पर लागत
गेहूँ आदान लागत						
उत्पादन मूल्य	725	801	824	927	967	1107
प्राप्त उत्पादन मूल्य	1085	1253	1245	1490	1465	1770
प्रदान की गई राहत		10%		10%		10%
ज्वार–बाजरा	140	170	175	215	180	238
प्राप्त उत्पादन मूल्य	410	535	610	780	679	881
प्रदान की गई राहत		10%		10%		10%
तिलहन	465	705	680	810	740	889
आदान लागत						
प्राप्त उत्पादन मूल्य	920	1420	1735	2344	2030	2691
प्रदान की गई राहत		10%		0%		10%

स्रोत –: विभिन्न वर्ग के कृषकों से व्यक्गित तौर से प्राप्त जानकारी के आधार पर तथा ग्राम पटवारी से भी जानकारी की पुष्टि करके अनुमानित औसत के आधार पर किया गया खेत–खलिहान सर्वेक्षण।

नोट -

चूंकि इस जनपद में अधिकतर एक फसल ही बोई जाती है अस्तु यह मानकर कि सभी कृषक जिन्होंने ऋण लिया है, नें एक ही फसल वर्ष में बोई है। उसी आधार पर लाभ हानि ज्ञात करने की चेष्टा की गई है। तालिका संख्या 56 के निम्नलिखित निष्कर्ष (100रु0 व्यय प्रति एकड़ के अनुसार) विभिन्न वर्गों के कृषकों की ऋण–राशि प्राप्त होने से पूर्व व ऋण–राशि मिलने के पश्चात् की आय वृद्धि को दर्शाते हैं –:

तालिका संख्या - ५९

प्रति एकड़ (रु0 में)

	ऋण–राशि मिलने से पूर्व आय	ऋण–राशि मिलने के पश्चात् आय	आयवृद्धि का प्रतिशत
लघु कृषक –:			
गेहूँ	1.48	1.56	105.40
ज्वार बाजरा	2.93	3.14	107.70
तिलहन	1.98	2.01	101.51
मध्यम कृषक–:			
गेहूँ	1.51	1.54	101.98
ज्वार बाजरा	3.41	3.63	104.31
तिलहन	2.55	2.89	113.33
बड़े कृषक –:			
गेहूँ	1.51	1.59	105.30
ज्वार बाजारा	3.61	3.66	102.49
तिलहन	2.74	3.88	110.22

इस प्रकार उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋण मिलने से अधिक आदानों का प्रयोग सम्भव हुआ है। कृषि कार्य विधि में, विशेषकर फसलों की निकाई व सफाई में विशेष बचत हुई है एवं असामयिक नुकसान की व समय की बचत सम्भव हुई है। जो प्राकृतिक व असामयिक नुकसान पकी फसल को घर तक लाने में होते थे, बहुत हद तक कम हो गये

हैं। बड़े कृषकों ने तो उच्च तकनीक का प्रयोग करके अपनी आय में वृद्धि की है, छोटे कृषकों को भी प्रतिशत के आधार पर कहीं–कहीं अपेक्षाकृत बड़े कृषकों से अधिक आय सम्भव हो सकी है।

पशुधन से आय -:

इस प्रकार कृषि कार्य में लगाई गई ऋण राशि से हर लाभार्थी की आय में वृद्धि हुई है। जिन लाभार्थियों ने दुग्ध के उत्पादन हेतु भैंस आदि के क्रय के लिये ऋण लिये उनकी आय में विशेष वृद्धि हुयी क्यों कि उनसे दूध जनपद मुख्यालय व चारों तहसीलों में सहकारी दुग्ध उत्पादन केन्द्र द्वारा नियमिति रुप से उचित मूल्य पर खरीदा गया। दुग्ध की मांग वर्ष भर बनी रही। दुग्ध उत्पादन के अन्तर्गत पशुओं के रहने के लिये छप्पर या घर, पौष्टिक व पर्याप्त चारे की व्यवस्था, स्वच्छ रख–रखाव, रोग निदान व दवाओं आदि का व्यय लागत के अन्तर्गत शामिल किये जाते हैं। इसके विपरीत आय के अन्तर्गत दूध, घी, बछड़े व गोबर आदि के मूल्य को जोड़ा जाता है। इसी आधार पर ऋण राशि का उनकी आय पर क्या प्रभाव पड़ा इसे निकालने की चेष्टा की गई है –

तालिका संख्या - ६०

प्रति लीटर लागत व आय का अन्तर (दर रु0 में)

मद	छोटे कृषक	मध्यम कृषक	बड़े कृषक
जब ऋण राशि नहीं मिली थी	1.20	1.41	1.49
जब ऋण राशि प्राप्त हुयी परन्तु डेयरी सेवायें भी सुलभ नही थीं।	1.39	1.70	1.73
जब ऋण राशि प्राप्ति के साथ डेयरी सेवायें सुलभ हुयीं।	1.79	1.89	1.95

उपरोक्त सभी सूचनायें व्यक्तिगत सम्पर्क कर ज्ञात करने की चेष्टा की। इस प्रकार ऋण राशि के सदुपयोग से व सहकारी डेयरी की सहायता से तीनों वर्गो को लाभ तो हुआ परन्तु सर्वाधिक लाभ छोटे कृषकों को हुआ जिनका पशु खरीदने का मुख्य उद्देश्य दूध बेचना ही था, उसका घर में उपभोग

करना कम था। बड़े कृषकों को दुहरा लाभ यह हुआ कि चारा इत्यादि उन्हें पर्याप्त मात्रा में स्वयं का ही प्राप्त हो गया।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ऋण राशि या साख सुविधा मिलने के कारण यह तो स्वीकार करना ही होगा कि कृषि व दुग्ध दोनों ही उद्योग लाभान्वित हुये हैं व आय प्रत्येक वर्ग की आय में उत्तरोत्तर वृद्धि के संकेत दृष्टिगोचर हुये हैं। इसके साथ ही रोजगार के नये अवसर भी खुले हैं। अधिक उत्पादन से आय में वृद्धि तो निश्चित ही हुई है साथ–साथ उच्च कोटि के अनाजों के उत्पादन के साथ–साथ नये किस्म के उत्पाद भी यथा सोयाबीन व मसूर जनपद में उत्पादित होने लगे हैं और मात्र कृषक वर्ग ही नही अन्य ग्रामीण वर्ग के लोग भी लाभान्वित हुये हैं। इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी उजागर हुआ है कि कृषि व दुग्ध उद्योग साथ–साथ अधिक लाभदायक ढंग से चलाये जा सकते हैं जिससे 'हरित क्रान्ति' और 'श्वेत क्रान्ति' दोनों को जनपद में वास्तविकता में परिवर्तित किया जा सकता है, वशर्तें जनपद की सहकारी संस्थाओं के माध्यम से व केन्द्रीय बैंक के सक्रिय सहयोग से सस्ती व समुचित साख विभिन्न योजनान्तर्गत सजग नियंत्रण के साथ सुलभ होती रहे। इसके साथ ही ऋण की सदुपयोगिता की जांच च दुरुपयोग पर नियंत्रण रखना भी केन्द्रीय सहकारी बैंक का अनिवार्य उद्देश्य होना चाहिये। यदि ऐसा होता है तो निश्चित ही कृषक/ग्रामीण के आर्थिक पुनरुत्थान के साथ–साथ उनका सामाजिक उत्थान भी वास्तविकता में परिलक्षित हो सकेगा और सामाजार्थिक न्याय की परिकल्पना फलीभूत हो सकेगी। अन्ततः यह उल्लेखनीय हो जाता है कि इसके लिये केन्द्रीय बैंक को इस प्रकार से ऋणनीति अपनानी या बनानी चाहिये जिससे कृषि क्षेत्र के विकास व विस्तार के साथ–साथ नये–नये क्षितिज व नये–नये आयाम खुलते रहें और ग्रामीण क्षेत्र का चतुर्दिक विकास सम्भव हो सके।

षष्टम अध्याय

जालौन जिला सहकारी बैंक लिमिटेड द्वारा प्रदत्त ऋणों का प्रभाव

यह सर्वविदित है कि देश की हरित एवं श्वेत क्रान्तियों में सहकारिताओं ने एक सार्थक योगदान दिया है और इसी का प्रतिफल है कि हम खाद्यान्न अधिशेष का बड़ा भण्डार जमाकर आत्म निर्भर हुये हैं। सहकारी बैंकों द्वारा कृषि साख में लगभग 46 प्रतिशत का योगदान किया जा रहा है। उर्वरक वितरण में देश में सहकारी समितियों का 37 प्रतिशत योगदान है, वही दूसरी ओर चीनी उत्पादन में उनका हिस्सा 55 प्रतिशत है। दुग्ध के क्षेत्र में सहकारी संस्थाओं एवं बैकों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वास्तव में अर्थव्यवस्था में उर्वरकों के उत्पादन तथा संसाधनों की गतिशीलता के क्षेत्र में भी सहकारी संस्थाओं की भागीदारी उल्लेखनीय रही है। वस्तुतः आज की बाजार अर्थ– व्यवस्था के संदर्भ में सहकारितायें अधिक प्रासंगिक हो गई हैं क्योंकि वे किसानों को उनके उत्पादों का लाभकारी मूल्य दिलाती हैं।

जालौन जिला सहकारी बैंक लि० द्वारा प्रदत्त ऋण :-

कृषि, ग्राम विकास एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की उन्नति हेतु ऋण की सुविधा प्रदान करना बैंक का प्रमुख कार्य रहा है। कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में ऋणों का क्या प्रभाव पड़ा इसके लिये प्रदत्त ऋणों को जान लेना आवश्यक है जो कि निम्नांकित हैं :–

तालिका संख्या- ६१ (लाख रु0 में)

विवरण	1996–97	1997–98	1998–991	999–00	2001–01
अल्पकालीन					
फसली ऋण	1139.64	1432.14	1060.92	1363.18	1538.07
मध्यकालीन ऋण	19.56	9.47	2.93	0.76	0.13
क्रय विक्रय	0.08	10.00	1738	11.35	–
मध्यकालीन					
परिवर्तन	0.11	2.14	831.34	247.55	1098.70
उर्वरक व्यवसाय	784.12	1111.43	918.45	1225.31	1098.70
उपभोक्ता व्यवसाय	123.29	102.80	35.82	40.15	10.30
व्यक्तिगत ऋण	483.08	589.59	1616.19	567.65	740.49
वेयर हाउस ऋण	233.66	685.93	356.47	118.71	202.59
अन्य ऋण	162.77	200.96	198.26	1786.79	1207.23
योग	**2936.18**	**4144.46**	**5037.76**	**4361.45**	**4796.93**

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 7*

भूमि उपयोगिता में वृद्धि :-

कृषकों को अनेक प्रकार की अल्पकालीन व मध्यकालीन सुविधायें जालौंन जिला सहकारी बैंक द्वारा दी जा रही हैं। इसके साथ–साथ उर्वरक सुविधा, सिचाई के साधनों की सुविधा, उन्नत बीज की सुविधा तथा समय–समय पर प्राकृतिक आपदाओं के घटित होने पर ऋण वसूली व ब्याज दर में कमी की सुविधा के चलते कृषि योग्य भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि, फसलों के प्रति हेक्टयर उत्पादन में वृद्धि, कुछ नई प्रजातियों की फसलों का उत्पादन होने के परिणामस्वरूप अन्न,दलहन व तिलहन जैसे खाद्यान्नों में अति अपेक्षित वृद्धि तो नही हुयी परन्तु इसे आशाजनक व उल्लेखनीय वृद्धि अवश्य कहा जा सकता है। इसमें ट्रेक्टरों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश में जनपद जालौंन में संख्या में सर्वाधिक ट्रेक्टर हैं, जो बड़े कृषकों और समृद्धि व्यक्तियों को भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाने में सहायक हुये हैं।

वहीं अनेक छोटे व सीमान्त कृषकों को उनकी बंजर व बेकार पड़ी भूमि तथा समय से वर्षा न होने के कारण जुताई बुआई के अयोग्य भूमि पर ट्रेक्टर चलाकर कृषि योग्य बनाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस प्रकार आज (1998) कुल कृषि योग्य भूमि के 76.60 प्रतिशत पर बोआई की जा रही है जबकि सन् 1996–97 में यह क्षेत्रफल 73.40 प्रतिशत था। शेष भूमि अन्य उपयोगी कार्यों में काम में लाई जा रही है जिसमें 5.65 हेक्टेयर भूमि पर जंगल हैं। विस्तृत व्योरा चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

कुल प्रतिवेदित भूमि का क्षेत्रफल

1996–97	456213 हेक्टेअर
1997–98	454934 हेक्टेअर
1998–99	455934 हेक्टेअर

स्रोत –: सा0 पत्रिका जिला जालौन वर्ष 2002 *पृष्ठ – 42*

कृषि योग्य भूमि की वृद्धि के साथ फसलों की उत्पादन क्षमता में भी उर्वरकों के प्रयोगों से तथा समय पर सिंचाई या जल–वृष्टि से वर्षानुवर्ष वृद्धि हुई है। चूंकि इस वृद्धि में जल का विशेष महत्व है, अतएव यह स्पष्ट करना उचित होगा कि जिले में सिंचित क्षेत्र की वास्तविक स्थिति क्या है –

	सकल सिंचिंत क्षेत्रफल	शुद्ध सिचिंत क्षेत्रफल
1996–97	160596 हेक्टेअर	158607 हेक्टेअर
1997–98	145049 हेक्टेअर	142921 हेक्टेअर
1998–99	166615 हेक्टेअर	163579 हेक्टेअर

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ – 45*

ये सिंचाई विभिन्न साधनों द्वारा की जाती है परन्तु प्रमुख रूप से नहरें सिचांई की सबसे महत्वपूर्ण साधन रही हैं–

(1) नहरें–	130532 हेक्टेयर	79.8 प्रतिशत
(2) नलकूप	22448 हेक्टेयर	13.72 प्रतिशत
(3) कुयें	8343 हेक्टेयर	5.10 प्रतिशत
(4) तालाब झील पोखर	179 हेक्टेअर	0.10 प्रतिशत
(5) अन्य स्रोत	2077 हेक्टेअर	1.36 प्रतिशत

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ – 42*

यदि विकास खण्डवार इस सिंचित क्षेत्रफल की प्रगति देखें तो डकोर खण्ड में सर्वाधिक प्रगति हुयी है। उसके पश्चात् नदीगाँव विकास खण्ड और सबसे कम प्रगति रामपुरा विकास खण्ड में हुयी है।

तालिका संख्या - ६२

विकास खण्डवार सिंचित क्षेत्रफल का विस्तार

विकासखण्ड	शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल से बोया गया क्षेत्रफल	शुद्ध सिंचित क्षेत्र	सकल सिंचित क्षे
1. रामपुरा	49.1 प्रतिशत	8781 हेक्टेअर	9923 हेक्टेअर
2. कुठौन्द	61.8 प्रतिशत	14406 हेक्टेअर	14649 हेक्टेअर
3. माधैगढ़	60.4 प्रतिशत	15015 हेक्टेअर	16594 हेक्टेअर
4. जालौन	60.8 प्रतिशत	22590 हेक्टेअर	22623 हेक्टेअर
5. नदीगाँव	53.6 प्रतिशत	23963 हेक्टेअर	23860 हेक्टेअर
6. कोंच	55.6 प्रतिशत	23026 हेक्टेअर	23030 हेक्टेअर
7. डकोर	36.3 प्रतिशत	24622 हेक्टेअर	24622 हेक्टेअर
8. महेवा	27.7 प्रतिशत	10587 हेक्टेअर	10699 हेक्टेअर
9. कदौरा	38.6 प्रतिशत	19564 हेक्टेअर	19579 हेक्टेअर
योग		**162554 हेक्टेअर**	**165579 हेक्टेअर**

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 45*

उर्वरक व्यवसाय

हरितक्रान्ति के परिणामस्वरुप मशीनीकरण के प्रयोग में वृद्धि तथा सिंचित क्षेत्र में वृद्धि के साथ–साथ कई शीर्ष सहकारी संस्थायें यथा इफको व कृभको (कृषक भारती कोआ0 लि0) द्वारा अमोनिया व यूरिया के

प्रयोग से कृषिउपज में वृद्धि हुई है और कृषकों का ध्यान उर्वरकों के नियमित व लाभकारी प्रयोग की ओर आकर्षित हुआ है। प्रदेश में विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों के 10,000 से अधिक बिक्री केन्द्र स्थापित हुये हैं जिन पर उच्च कोटि के उर्वरक उपलब्ध रहते हैं। जनपद जालौन में उर्वरकों के प्रयोग को अधिकाधिक प्रोत्साहन जालौन जिला सहकारी बैंक द्वारा गोदाम खोलकर किया गया है। पर्याप्त मात्रा में हर प्रकार के उर्वरकों का भण्डारण कर किया जा रहा है तथा उचित मूल्य पर समय पर उपलब्ध कराया जा रहा है। इस प्रकार प्रति हेक्टेअर उर्वरक प्रयोग निरन्तर बढ़ रहा है जो निम्न प्रकार से है –

	1997–98	1998–99
प्रति हक्टेअर उर्वरक प्रयोग	12.6 कि. ग्राम	14.3 कि. ग्राम
प्रति व्यक्ति उत्पादन	52.6 कि. ग्राम	44.5 कि. ग्राम

तालिका संख्या - ६३

उर्वरक का प्रति हेक्टेअर सकल बोये गये क्षेत्रफल पर उपभोग (कि0ग्राम)

विकासखण्ड	सकल बोये गये क्षे0 पर शुद्ध बोये गये क्षे0 से प्रतिशत 98–99	प्रति हेक्टेअर सकल बोये गयेक्षे0 पर उर्वरक उपभोग 98–99
1. रामपुरा	125.6	67.8 कि.ग्रा.
2. कुठौन्द	122.4	66.0 कि.ग्रा.
3. माधौगढ़	117.2	49.5 कि.ग्रा.
4. जालौन	120.7	55.1 कि.ग्रा.
5. नदीगाँव	115.7	42.3 कि.ग्रा.
6. कोंच	116.1	47.3 कि.ग्रा.
7. डकोर	103.9	32.3 कि.ग्रा.
8. महेवा	106.0	36.2 कि.ग्रा.
9. कदौरा	104.6	35.0 कि.ग्रा.

स्रोत –: पूर्वोलिखित तालिका 26 के आधार पर। *पृष्ठ 69*

सहकारी समितियाँ के उर्वरक बिक्री केन्द्र उच्चगुणवत्ता के उर्वरकों की आपूर्ति करने के लिये किसानों के मध्य बेहद लोकप्रिय हैं। इन केन्द्रों पर

मुख्यतः इफको/कृभकों के उर्वरक बिक्री किये जाते हैं। चूँकि किसानों को सहकारी समितियों से प्राप्त होने वाले उर्वरकों में मिलावट की सम्भावना नहीं होती, अतः किसान उर्वरक सर्वप्रथम सहकारी समितियों से ही क्रय करना पसन्द करतें है। अतः सहकारी समितियों को मिलने वाली उर्वरकों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है यथा –

वितरित सभी प्रकार के उर्वरकों की मात्रा (मी. टन)

वर्ष	1997–98	1998–99	1999–2000	2000–2001	2001–2002
	1758927	1987000	1728024	2081000	2391860

स्रोत –: सहकारिता विशेषाँक उत्तर प्रदेश *पृष्ठ संख्या 17*

उर्वरकों में विशेषकर तीन प्रकार के उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है, नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश। इनका जनपद मे विकास खण्डवार प्रयोग निम्नाँकित प्रकार हैं –:

तालिका संख्या - ६४

जनपद में विकास खण्डवार उर्वरक वितरण (मी0 टन)

वर्ष	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटास	योग
1996–97	14673	7150	79	21902
1997–98	14508	6034	32	20574
1998–99	12500	4723	190	17414
विकास खण्डवार वितरण (सन 1998–99)				
1. रामपुरा	1049	455	19	1523
2. कुठौन्द	1427	464	19	1910
3. माधौगढ़	948	464	31	1443
4. जालौन	1786	670	19	2475
5. नदीगाँव	1335	455	19	1809
6. कोंच	1703	544	25	2272
7. डकोर	1795	732	21	2548
8. महेवा	1316	384	19	1719
9. कदौरा	1141	555	19	1715
योग	**12500**	**4723**	**191**	**17414**

स्रोत –: सां पत्रिका जिला जालौन वर्ष–2000, *पृष्ठ सं.69*

कृषि यन्त्रीकरण -:

भारत में स्वतन्त्रता–प्राप्ति के समय से कृषि में भारी व आश्चर्यजनक परिवर्तन हुये हैं, जिसके फलस्वरूप आज देश में हरितक्रान्ति सम्भव हो सकी है। इन परिवर्तनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका कृषियन्त्र व उपकरणों की रही है, जिसके अन्तर्गत आज हम ट्रेक्टर, विनोअर, हरवेस्टर व थ्रेशर जैसे अनेक कृषि उपकरणों का प्रयोग करने लगें हैं। कृषि यनत्रीकरण के परिणामस्वरुप प्रति हेक्टेअर उत्पादन में वृद्धि हुई है, कार्यशीध्रता से समय की बचत हुई है, उत्पादन लागत में कमी आई है, कृषकों की आय में वृद्धि हुई है, भारी और नीरस कामों से छुटकारा मिला है, खेती के व्यापारिक स्वरूप का विस्तार सम्भव हुआ है, श्रम की कुशलता में वृद्धि हुई है तथा रोजगार के अवसर भी बढ़े हैं यथा–

1. सन् 1956 में देश में 21 हजार ट्रेक्टर थे। आज इनकी संख्या 12 लाख से भी अधिक है।
2. सन् 1956 में 47 हजार पम्पिंग सेट बिजली से चलने वाले थे। आज इनकी संख्या 1 करोड़ 21 लाख 64 हजार से भी अधिक है।
3. सन् 1956 में 1.23 लाख डीजल व मिट्टी के तेल से चलने वाले पम्पिंग सेट थे। आज 52 लाख से अधिक हैं।

कृषि यन्त्रीकरण के विषय में मैं इतना अवश्य जोड़ना चाहूँगा कि चाहे ऊपर से यन्त्रीकरण का विकास बड़ा प्रभावी प्रतीत होता हो परन्तु सापेक्षरुप से उतना प्रभावशाली नहीं है। कारण इससे जो भी संचित लाभ हुआ है वह मुख्यतः समृद्ध किसानों तक ही सीमित है। छाटे किसान आज भी यन्त्रीकरण प्रकिया से लगभग अछूते ही रहे हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में जनपद में जालौंन जिला सहकारी बैंक ने प्रगति करने में जो खण्डवार को सहायता दी है वह निम्न प्रकार से है –:

तालिका संख्या - ६५

जनपद में विकास खण्डवार कृषि यन्त्र एवं उपकरण की प्रगति 1998

वर्ष / मदें	हल लकड़ी	हल लोहा	उन्नतहैरो तथा कल्टीवेटर	उन्नत थ्रेशिंग मशीन	स्प्रेयर संख्या	उन्नत बुआई यंत्र	ट्रेक्टर
1	2	3	4	5	6	7	8
1998	27646	8765	7199	10527	1001	34205	10577
विकास खण्डवार प्रगति 1998							
1. रामपुरा	2132	901	593	1090	74	2430	764
2. कुठौन्द	2342	990	532	1082	763	3945	742
3. माधौगढ़	2440	942	602	1105	88	3332	813
4. जालौन	2241	149	748	1095	98	5341	1525
5. नदीगाँव	2865	478	651	1078	81	2220	1072
6. कोंच	2111	743	642	1098	108	4580	1624
7. डकोर	1744	690	648	1072	77	2955	1482
8. महेवा	2551	736	503	1060	65	2531	757
9. कदौरा	2766	972	601	575	78	4033	782
योग ग्रामीण	**21172**	**6601**	**5520**	**9255**	**745**	**30967**	**9561**
नगरीय	**6454**	**2164**	**1679**	**1272**	**256**	**3238**	**1016**
योग जनपद	**27646**	**8765**	**7199**	**10527**	**1001**	**34205**	**10577**

स्रोत -: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 68*

उपरोक्त समंकों से यह स्पष्ट होता है कि विकास खण्ड कोंच, तत्पश्चात् जालौन और इसके बाद डकोर ऐसे विकासखण्ड हैं जहाँ ट्रेक्टर क्रमशः सर्वाधिक हैं। इसी प्रकार अन्य उन्नत कृषि यंत्र जैसे थ्रेसिंग मशीन व स्प्रेयर आदि का भी इन्हीं विकास खण्डों में अधिकाधिक व उत्तरोत्तर प्रयोग हुआ है जबकि रामपुरा, कुठौन्द, महेवा तथा कदौरा में भी प्रयोग तो उन्नत यन्त्रों का अवश्य ही बढ़ा है परन्तु न के बराबर। यहां अभी भी प्राचीन विधियाँ ही कार्य में लाई जा रही हैं।

उत्पादकता तथा उत्पादन की मात्रा पर प्रभाव

अध्याय के पूर्व पृष्ठों में क्रमबद्ध तरीके से उन सभी अदाओं (इनपुट्स) यथा सिंचाई, उर्वरक प्रयोग तथा यन्त्रीकरण का जनपद की कृषि पर उनके प्रभाव एवं प्रगति का अवलोकन इसलिये किया गया कि जब जालौन जिला सहकारी बैंक लि. की उपलब्ध सहायता से इन साधनों का विकास और विस्तार हो रहा है तो सरलता से यह तो अनुमानित किया ही जा सकता है कि जनपद की कृषि उत्पादकता व उत्पादन की मात्रा दोनों में ही वृद्धि होना चाहिये। अस्तु अध्याय के अगले पृष्ठों में जनपद में उत्पादित होने वाली प्रमुख फसलें यथा गेहूँ, चावल, तिलहन व दलहन पर इन अदाओं के अधिकाधिक प्रयोग का क्या असर पड़ा है, इसकी विश्लेषणात्मक व्याख्या की जायेगी। इसके अतिरिक्त ज्वार व आलू की भी कृषि आज बड़े पैमाने पर होती है। अध्ययन में इन्हें भी शामिल किया जायेगा।

उत्पाकता की वृद्धि के दृष्टिकोण से स्वतंत्रता–उपरान्त काल को दो अवधियों में विभाजित किया जा सकता है। पहला काल 1949–50 से 1964–65 तक जब औसत वृद्धि 1.35 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। दूसरा काल 1967–68 से 1996–97 तक जब औसत वृद्धि 2.62 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। निश्चितरुप से यह कहा जा सकता है कि उत्पादकता की दर में वृद्धि आई है। जैसा कि निम्नाँकित तालिका से स्पष्ट होता है –:

तालिका संख्या - ६६

जनपद जालौंन में फसलों का उत्पादन (मीट्रिक टन)

क्रंसं0	फसल का नाम	1996–97	1997–98	1998–99
1.	चावल	952.00	1053.00	1253.00
2.	गेहूँ	231376.00	246624.00	292601.00
3.	ज्वार	18138.00	10065.00	10191.00
4.	**कुल दालें**			
	मूँग, उर्द, मसूर, चना मटर, अरहर	164048.00	150477.00	163939.00
5.	**कुल तिलहन**			
	सोयाबीन, सूरजमुखी लाही, सरसों, अलसी तिल, मूँगफली	11809.00	15900.00	11284.00
6.	**अन्य फसलें**			
	गन्ना	43808.00	79372.00	78787.00
	आलू	5322.00	4856.00	8123.00

स्रोत –: सांख्यिकीय पत्रिका जिला जालौंन वर्ष 2000 पृष्ठ 59–60

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि जालौंन जिला सहकारी बैंक से समितियों को दी गयी ऋण राशि निश्चित ही समय से कृषकों तक पहुँची है और इसी सामयिक ऋणराशि की सहायता से न सिर्फ खाद्यान्नों में वरन् हर प्रकार की फसलों में उत्तरोत्तर मात्रात्मक वृद्धि हुई है। सिर्फ तिलहन व गन्ने के उत्पादन में हल्का सा परिवर्तन हुआ है। ये मौसम का प्रभाव हो सकता है। वैसे भी जनपद की मुख्य फसलों में तिलहन को शामिल नहीं किया जा सकता। मूलतः कृषक खाद्यान्न व दलहल पर अधिक ध्यान देते हैं व रवी के अन्तर्गत सर्वाधिक क्षेत्रफल में उत्पादन भी किया जाता है।

फसल - प्ररुप तथा फसलों की गहनता

जनपद जालौंन का भौगोलिक क्षेत्रफल 4565 वर्ग किलोमीटर है। इसमें प्रमुख रुप से दो फसलें ही उगाई जाती हैं। खरीफ की फसल व रवी की

फसल। इसमें भी रबी की फसल प्रमुख है, जिसमें मूलरुप से गेहूँ, चना, अलसी, धनियाँ, सरसों, मसूर व कुछ अन्य दालों की खेती होती है। खरीफ की फसल में ज्वार–बाजरा व कुछ दालें तथा चावल की खेती अब की जाने लगी है परन्तु चावल महत्वपूर्ण उपज नहीं है। चूंकि आधी से अधिक कृषि योग्य भूमि में खेतों का आकार छोटा ही है और नहरों या सिंचाई की सुविधा हर जगह सम्भव न होने तथा भूमि बहुत उपजाऊ न होने के कारण खेत छोटे–छोटे हैं अस्तु सघन खेती सम्भव नहीं है। कुछ समृद्धशाली कृषक तथा पुराने समय के जमींदार या तो तालुकेदार है जिनके पास बड़े–बड़े कृषि फार्म हैं। इनमें सघन खेती देखने को मिलती है खेतों की जोत निम्नप्रकार से है –:

1 हेक्टेअर से कम	96959 संख्या
1 से 2 हेक्टेअर के बीच	42394 संख्या
2 से 3 हेक्टेअर के बीच	20585 संख्या
3 से 5 हेक्टेअर के बीच	18802 संख्या
5 हेक्टेअर से अधिक	15529 संख्या

यद्यपि खेतों का परिसीमन हो चका है परन्तु अधिकांश जोतें छोटी होने के कारण सघन खेती सम्भव नहीं है।

फसलों के पारम्परिक प्ररुप में परिवर्तन अवश्य आया है और अब चने के स्थान पर मसूर की खेती को उत्तरोत्तर बढ़ावा मिल रहा है। इसी के साथ–साथ अब सोयाबीन, आलू और चावल बोने का भी चलन बढ़ा है। कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध होने के कारण वर्ष में दो फसलें भी ली जाती हैं। ऐसा क्षेत्रफल 36168 हेक्टेअर है अर्थात् लगभग 10.38 प्रतिशत भूमि पर दोहरी फसल ली जाती है। जबकि कुल क्षेत्रफल जिस पर फसल बोई जाती है वह 348389 हेक्टेअर है। इस संदर्भ में फसलों की सघनता का आभास निम्न तालिका से सम्भव हो जाता है।

तालिका संख्या - ६७

विकासखण्ड का नाम	सकल बोये गये क्षेत्रफल का शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल से प्रतिशत			खाद्यान्नों फसलों के अन्तर्गत क्षे0 का सकल बोये क्षेत्र से प्रतिशत		
	1990–91	1997–98	1999–99	1990–91	1997–98	1999–99
1. रामपुरा	117.2	124.1	125.6	96.0	83.5	84.2
2. कुठौन्द	116.1	122.2	122.4	96.2	87.8	87.3
3. माधौगढ़	112.3	112.0	117.2	87.0	76.5	84.0
4. जालौन	105.3	117.4	120.7	87.0	87.6	85.4
5. नदीगाँव	105.0	118.2	115.7	86.3	89.5	86.8
6. कोंच	105.1	113.1	116.1	90.2	94.9	87.8
7. डकोर	104.1	117.7	103.9	98.0	90.2	93.9
8. महेवा	104.3	106.0	106.0	94.0	87.5	92.5
9. कदौरा	107.0	109.4	104.6	93.0	85.8	90.0
समस्त विकासखण्ड	107.0	113.8	112.4	93.0	88.0	88.8

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 12*

आय एवं मजदूरी -:

हमारा देश कृषि प्रधान देश है। अधिकतर किसान मेहनती, विश्वासी, परिश्रमी, अशिक्षित तथा निर्धन हैं। इसीलिये आज भी इनके शोषण में कोई कमी नहीं आई है। हमारी अर्थव्यवस्था में सुधार व उन्नति होने पर भी इन मजदूरों की, जो कृषि से जुड़े हैं या कोई अन्य परम्परागत कार्य में हाथ बँटाकर किसी प्रकार दो वक्त की रोटी प्राप्त कर पा रहे हैं, आर्थिक दशा में कोई सुधार नही आ पा रहा है। आज जनपद में कार्यरत विभिन्न श्रमिकों की जनसंख्या का प्रतिशत निम्नाँकित है –:

1. कृषक	55.4
2. कृषि श्रमिक	23.2
3. पशुपालन, जंगल लगाना, वृक्षारोपण में लगे श्रमिक	0.8
4. खान खोदने में लगे श्रमिक	0.0
5. पारवारिक उद्योगों में	1.0

6. गैर पारिवारिक उद्योगों में	2.6
7. निर्माण कार्यों में	1.3
8. व्यापार एवं वाणिज्य में	6.0
9. यातायात व संचार में	1.7
10. अन्य में	8.1

संख्यात्मक दृष्टिकोण से विभिन्न प्रकार की संस्थाओं के अधीन कार्यशील श्रमिकों की संख्या निम्न प्रकार से है –:

1. ग्रामीण एवं लघु उद्योग में –: 7150

इस उद्योग के अर्न्तगत खादी उद्योग तथा लघु औद्योगिक इकाइयों में हस्तशिल्प, हथकरधा, विधायन, रेशम, रसायनिक व इंजीनियरिंग में लगे श्रमिक आते है।

2. लघु उद्योग इकाइयों में –: 3587
3. अन्य कार्यो में कार्यरत –: 2563
4. शेष ग्रामीण जो परम्परागत कार्यों से जुड़े हैं –: 6150

अब इससे पूर्व कि इन ग्रामीण मजदूरों की आय या मजदूरी का अनुमान प्रस्तुत किया जाय, इनसे जुड़े कुछ आर्थिक तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है।

प्रचुर मानव व प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण होने पर भी उत्तर प्रदेश में देश के 21 प्रतिशत व विश्व के 8 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं। प्रदेश में बुन्देलखण्ड का जनपद जालौन पिछड़े जनपदों में से एक है जहाँ की भूमि, जल संसाधन और लोगों में व्याप्त गरीबी इसके पिछड़ेपन के प्रमुख कारण रहे हैं और इसलिये जनपद में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत औसत प्रतिशत से अधिक है और जैसा कि अनुमानित किया गया है कि गरीबी रेखा से नीचे रहने वालो की वर्तमान कीमतों पर आय –

1977–78 में ग्रामीण क्षेत्रों में 55.2 रुपये थी

शहरी क्षेत्र में 68.6 रुपये थी

अब यदि इसे उदारभाव से लिया जाय तो 75–100 रु0 से अधिक ऐसे परिवारों को प्राप्त नहीं होता।

इसके अतिरिक्त उरई नगर में उद्योगों में लगे मजदूरों से जानकारी के अनुसार उन्हें प्रतिमाह 2000 रु0 के आस पास ही मिलता है।

जहाँ तक ग्रामीण क्षेत्र के कृषकों का प्रश्न है तो यह तो सर्वविदित तथ्य है कि अधिकांश खेतिहर श्रमिक बटाई पर या लोनी प्रथा जैसा कि गंवई गाँव के भूमिहीन किसानों ने बाताया, के अनुसार काम करते हैं, जिसमें फसल तैयार हो जाने पर अनाज के रुप में उन्हें उनकी मजदूरी दी ज़ाती है जो मुश्किल से इन लोगों के पेट भरने मात्र के लिये पर्याप्त होती है। इसमें से भी कभी–कभी, जब फसल को साफ करने का काम बड़े कृषकों को अपने थ्रेसर पर करना होता है तो उसकी कटौती भी इसी उनके हिस्से से की जाती है।

तेलमिल एवं कपड़ा व्यवसाय -:

जनपद जालौन हमेशा से एक औद्योगिक मरुस्थल के नाम से जाना जाता रहा है। प्रकृति भी इस क्षेत्र पर प्रदेश के अन्य क्षेत्रों के अपेक्षा बहुत उदार नहीं रहीं है, इसलिये यहाँ कोई बड़ा उद्योग नहीं पनप सका जैसा कि निम्नाँकित संमकों से स्पष्ट होता है –:

1. बड़े पैमाने के उद्योग	एक भीं नहीं
2. मध्यम पैमाने के उद्योग	10
3. लघु उद्योगों की संख्या–	
पंजीकृत	22
अपंजीकृत	आप्राप्त
4. फेक्ट्री एक्ट के अन्तर्गत पंजीकृत	02

5. कुटीर/ग्रामीण/घरेलू उधोग 2855

स्रोत –: वार्षिक ऋण योजना (इलाहाबाद बैंक) 2001–2002

जबकि साँख्यिकीय पत्रिका, जिला जालौन 2000 के अनुसार आज पंजीकृत कार्यरत कारखाना कोई नहीं है। उल्लेखनीय है कि इसी सांख्यिकीय पंत्रिका के पृष्ठ 86 पर उद्योग के अन्तर्गत निम्नांकित तालिका में कार्यरत कारखानों की संख्या वर्ष 1990–92 में 20, 1991–92 में 20 तथा 1992–93 में 17 दिखलाई गई है, जिनमें कार्यरत कर्मचारियों की संख्या क्रमश : 797, 797 तथा 650 दिखाई गई है।

लघु औद्योगिक इकाईयाँ (1999–00) 4586

कार्यरत व्यक्ति 3587

इनमें से जो मध्यम पैमाने के उद्योग हैं वे भी छठीं व सातवीं पंचवर्षीय योजनान्तर्गत स्थापित हुये हैं, जबकि योजनात्मक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत हर प्रदेश के उन जनपदों में जहाँ कोई स्थापित उद्योग नहीं है वहाँ औद्योगिक क्षेत्र (इन्डस्ट्रियल एसटेट्स) विकसित किये जायें, जिससे स्थानीय कच्चे माल का उपयोग हो सके तथा स्थानीय प्रतिभाओं को पर्याप्त अवसर सुलभ कराये जा सकें तथा रोजगार के स्थानीय अवसर बढ़े। इस योजनान्तर्गत उरई शहर से बाहर मुख्य सड़क पर इस प्रकार के उद्योगों के विकासार्थ जमीन प्रदान की गई, विद्युत सुविधायें दी गई, जिससे कुछ मध्यम पैमाने के उद्योग स्थापित किये गये। इनमें प्रमुख लीवर ब्रदर्स का कारखाना जहाँ पर ब्लीचिंग का काम तथा ग्लेसरीन–साबुन बनाने का काम शुरु किया गया, इसके अतिरिक्त उरई के इस औद्योगिक क्षेत्र में व्यक्तिगत रुप से चलाये जा रहे 25 विभिन्न प्रकार के औद्योगिक संस्थान भी कार्यरत हैं। एक अन्य पुस्तिका 'औद्योगिक दर्शन' (इनडस्ट्रियल प्रोफायल 1998–99) के अनुसार जनपद जालौन में 3153 लघु औद्योगिक इकाइयाँ कार्यरत हैं जिनमें –:

	औरतें	मर्द
कुशल श्रमिक	2500	13000
अकुशल श्रमिक	1800	21281

कार्यरत हैं।

इन्हीं लघु औद्योगिक इकाइयों में से लगभग प्रत्येक तहसील के प्रधान स्थल पर तेल धानी मिलें चलाई जा रही हैं। उरई नगर में एक सहकारी तेल मिल है जसमें सरसों, लाही आदि के तेल के उत्पादन के साथ-साथ दाल बनाने का भी कार्य होता है। जहाँ तक तेल उद्योग के व्यवसायिक स्तर पर कार्य की बात है तो व्यक्तिगत तौर पर अनेक स्थानों पर एक्सपेलर लगाकर तेल उत्पादित किया जाता है, परन्तु इतना अधिक नहीं कि व्यवसायिक स्तर पर उसका जनपद से बाहर निर्यात किया जा सके। अधिकांश की खपत स्थानीय है। इसके साथ-साथ तेल व्यवसाय का कुटीर परम्परागत स्वरूप भी है जो ग्रामीण क्षेत्रों में देखने को मिलता है और जिन्हें जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई तथा इसकी शाखाओं से स्पेलर लगाने की सुविधा प्रदान करने हेतु ऋण दिया जाता है। इसके साथ-साथ बैंक के कई गोदाम हैं जिनमें तिलहन व दलहन भण्डारण की सुविधा प्रदान की जाती है जिनसे व्यक्तिगत सहकारी सदस्यों के हित को ध्यान में रखकर समय-समय पर उचित मूल्य पर तिलहन व दलहन सुलभ कराया जाता है।

कपड़ा व्यवसाय -:

जनपद जालौन की अर्थ व्यवस्था कृषि प्रधान होने पर भी यहाँ कपास की कृषि नहीं की जाती, अस्तु सस्ता श्रम उपलब्ध होने पर भी कोई कताई या बुनाई की मिल स्थापित नहीं की जा सकी है। हाँ इस सम्बन्ध में ग्राम उद्योग के अन्तर्गत कुछ संस्थायें अवश्य चलाई जाती हैं जिनका ब्योरा निम्नाँकित है -:

तालिक संख्या - ६८

संस्थाओं के नाम	क्षेत्र समिति द्वारा	औद्योगिक सहकारी द्वारा समिति	पंजीकृत संस्थाओं द्वारा	व्यक्ति उद्योग पत्तियों द्वारा	योग
1. खादी उद्योग	72	23	115	2231	2441
2. खादी ग्रामोद्योग द्वारा प्रवर्तित ग्रामीण उद्योग	–	–	122	–	122
3. हथकरघा	–	–	13	46	59
4. रेशम	–	–	–	4	4
5. कार्यरत व्यक्तियों की संख्या	72	23	237	2231	2563

स्रोत –: पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या 67*

इस सम्बन्ध में जो जानकारी सुलभ हुई है उसके अनुसार औद्योगिक क्षेत्र में कई स्थानीय लोगों ने कपड़ा उद्योग प्रारम्भ करने की चेष्टा की, परन्तु अथक प्रयत्नों के बावजूद कभी कच्चे माल की पूर्ति न होने के कारण कभी विद्युत आपूर्ति में बाधाओं के कारण और कभी–कभी प्रारम्भिक उत्पादन स्तरीय न होने के कारण व उसकी माँग न होने से ऐसे उद्योग धीरे–धीरे ठप्प पड़ते चले गये। जैसा कि समंकों से भी स्पष्ट होता है कि 1990–91 में 20 फिर 1992 तक 17 और अन्ततः कपड़ा उद्योग यहाँ पनप नही पाया यद्यपि उपरोक्त 20 या 17 सभी कपड़ा व्यवसाय से जुड़े कारखाने तो नहीं थे फिर भी अधिकांश इकाइयाँ जो स्थापित हुई थीं वे कपड़ा व्यवसाय से ही सम्बन्धित थी।

एक तथ्य और परोक्ष रुप से स्पष्ट हुआ है कि जनपद में जो भी व्यक्तिगत हथकरघे सूती या रेशमी चल रहे हैं, वे मात्र दिखावे के लिये ही चल रहे हैं। ऐसे अनेक हथकरघे कालपी तहसील में है। जनपद में अन्यत्र करघे तो लगे हैं परन्तु उनके मालिक सस्ता कच्चा माल प्राप्त करने के प्रलोभन में व सब्सडी प्राप्त करने के लिये ही झुठलावे वालों प्रयासों में लगे हैं व उत्पादन के नाम पर उनमें भी कोई काम नहीं होता। जो मजदूर कार्यरत दिखाये जाते हैं वे मात्र कागजी खानपूरी के लिये होते हैं। जब कोई निरीक्षण या अंकेक्षण

होता है तो रजिस्ट्रों व हिसाब किताब की पुस्तकों को चुस्त दुरूस्त पाया जाता है, या फिर कुछ ले देकर निपटा लिया जाता है। अस्तु कुछ छोटी मोटी इक्का दुक्का इकाइयाँ जनपद में वास्तव में चल रही हैं। कुछ प्रारम्भ होती व आर्थिक सहायता न मिलने पर बन्द होती रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि तेल व्यवसाय और कपड़ा व्यवसाय अभी तक कोई व्यावसायिक स्वरुप नहीं ले पाया है।

उपभोग की वस्तुयें -: (वेतन भोगी सहकारी समितियाँ)

आज ग्रामीण, कस्बा या शहरी सभी समाज विकसित हो रहे हैं। समाज के सभी व्यक्ति उपभोक्ता भी हैं। चूँकि उनका कोई संगठन नहीं है इसलिये उन्हें अधिक कीमत चुकानी पड़ती है। मध्यस्थों की संख्या अधिक है, कारखानों में सामान तैयार होता है, कई मध्यस्थों के हाथों होता हुआ अन्त में उपभोक्ता के हाथ में जब पहुँचता है तो बहुत मंहगा हो जाता है। कभी–कभी वस्तुओं में मिलावट भी होती है। अस्तु उपभोक्ता हानि पर हानि उठाते हैं।

अब अनेक स्थानों पर सहकारी भण्डार खुल गये हैं जो सदस्यों की आवश्यकता व माँग के अनुसार वस्तुयें क्रय करते व सीधे–सीधे अपने सदस्यों को बेचते हैं। इससे अनेक मध्यस्थों का काम मात्र सहकारी भण्डारों के द्वारा हो रहा है, जो बाजार मूल्य पर नकद वस्तुयें सदस्यों को बेचते हैं और जो समेकित सम्मलित लाभ होता है, (जो मध्यस्थ ले जाते) वह वस्तुतः सदस्यों में ही बँट जाता है। इस प्रकार उन्हें सस्ती व मनचाही वस्तुयें मिल जाती हैं।

इसके लिये केन्द्रीय सहकारी भण्डार जिन्हें थोक भण्डार भी कहते हैं, अपने सदस्य सहकारी भण्डारों के लिये उपयोग की थोक वस्तुओं का एकत्रीकरण करते हैं तथा उचित मौसम में वस्तुयें सहकारी केन्द्रों पर भेज देते हैं। प्रायः थोक भण्डार से माल उधार भी मिल जाता है। इस प्रकार के सहकारी उपभोक्ता भण्डार जनपद में एक या एक से अधिक क्षेत्रीय आधार पर संगठित किये जाते हैं।

जहाँ तक जालौन जिला सहकारी बैंक लिमिटेड उरई का सम्बन्ध है, इसके द्वारा अपने कर्मचारियों के हितार्थ ऐसी योजना कार्यन्वित की गयी है जिसमें दैनिक जीवन की उपभोग वस्तुयें उन्हें आसानी से उपलब्ध हो सकें। साधारण व कीमती वस्तुयें जैसे टेलीविजन, फ्रिज आदि के लिये 40 हजार रु0 तक का ऋण देने की व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत पर्याप्त धनराशि का विनियोजन भी किया गया है जो निम्नप्रकार से है –:

वर्ष	व्यवसाय (लाख रु0 में)
1996–97	123.29
1997–98	102.80
1998–99	35.82
1999–2000	40.15
2000–2001	10.30

इस प्रकार से बैंक की मुख्यशाखा के अतिरिक्त ग्रामीण शाखाओं के कर्मचारी व सदस्यगण भी समय–समय पर लाभान्वित हुये हैं।

सप्तम अध्याय

जनपद की कृषि-वित्त व्यवस्था में जिला सहकारी बैंक लि० एवं अन्य संस्थाओं की भूमिका

(शोध क्षेत्र)

जनपद के सर्वतोन्मुखी विकास में सहकारिता का एक विशिष्ट स्थान है। इसमें विकास के सार्वभौमिक लक्षण विद्यामान हैं। नगर से ग्राम तक, कृषि से कारखाने तक, महाजन से मजदूर तक सहकारिता का श्रृंखलाबद्ध सम्बन्ध है। विदेशों की ओर देखें तो पाते है कि सहकारिता का संबल ले जर्मनी, डेनमार्क व स्वीडन आदि देशों ने अपने यहाँ की कृषि व कृषि से जुड़े ऋणग्रस्त, गरीबी से तृस्त लोगों के जीवन की कायाकल्प कर धनधान्य से सम्पन्न बना दिया है। हमारे देश में सहकारिता आन्दोलन का प्रारम्भ लगभग एक शती पूर्व किया गया था। विदेशी साम्राज्य के अन्त के पश्चात् यद्यपि नियोजित अर्थव्यवस्था की आधी सदी बीत गई है और गांव गांव में सहकारियां कार्यरत हैं परन्तु आज भी सहकारिता आन्दोलन को आपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी है। ग्रामों में गरीबी कुछ ठहर सी गई है। गरीब किसान, लघु किसान या सीमान्त किसान यदि आज कृषि में विकास करना चाहता है तो उसे ऋण लेने के लिये आवश्यक है कि उसके पास कोई सम्पति हो, अर्थात् उसे व्यक्तिविशेष से या बैंक से ऋण मिलना तभी सम्भव है जब वह अपनी जमीन गिरवी रखे। सहकारी समितियों का सदस्य होने पर भी उसे सम्पति का गिरवी रखना अपरिहार्य सा है। कहने का तात्पर्य यह है कि आज भी सहकारिता आन्दोलन व उससे जुड़ी सहकारी समितियाँ उसे पूर्णरुपेण सस्ती, सामयिक व समुचित साख सुलभ करने में असमर्थ पा रही हैं। इन सभी प्राथमिक सहकारी साख समितियों के पास धनाभाव है परिणामतः ये समितियां तभी सहायक सिद्ध

हो पाती हैं जब इन्हें बैंको के द्वारा ऋण प्राप्त हो। ये चाहे ग्रामीण बैंक हों, व्यापारिक बैंक हों, भूमि विकास बैंक या फिर जिला सहकारी बैंक हों। अस्तु भारत में सहकारी आन्दोलन राज्य द्वारा समर्थित आन्दोलन है। वस्तुतः सहकारी आन्दोलन का विकास भी सरकारी आन्दोलन की भांति हुआ और सरकार द्वारा इसे नीति के रुप में स्वीकार किया गया। परिणामतः शती बीत जाने पर भी यह आन्दोलन अपने पैरों पर नहीं खड़ा हो सका। यदि आज राज्य का संरक्षण हटा लिया जाय तो इस आन्दोलन के समाप्त होने में देर नहीं लगेगी। अस्तु सरकार शीर्ष बैंकों, जिला सहकारी बैकों, ग्राम विकास बैंकों, भूमि विकास बैंकों, राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा अन्यान्य प्रकार से अस्तित्व में आने वाली अर्थ–प्रदत्त संस्थाओं के माध्यम से इस आन्दोलन के विकास पर पर्याप्त धनराशि व्यय कर रही है। इस प्रकार से वे कुछ महत्वपूर्ण संस्थायें जो जनपद की वित्तीय व्यवस्था से जुड़ी रही हैं व जिनका जनपद के विकास में विशेष उल्लेखनीय योगदान है वे हैं :–

1. स्टेट बैंक आफ इण्डिया,
2. राष्टीयकृत बैंक,
3. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक,
4. कृषि एवं ग्राम विकास बैंक तथा
5. जालौंन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई।

९. स्टेट बैंक आफ इण्डिया एवं कृषि वित्त व्यवस्था :-

सन् 1955 में स्टेट बैंक की स्थापना से पूर्व सन् 1937 से रिर्जव बैंक के कृषि साख–विभाग के माध्यम से कृषकों की वित्तीय व्यवस्था में सहायता करता रहा है। परन्तु सन् 1955 के पश्चात् चूंकि देश भर में स्टेटबैंक आफ इण्डिया की शाखयें खुलीं, तो यह उपयुक्त समझा गया कि कृषि वित्तव्यवस्था का भार स्टेट बैंक को सौंप देना उपयुक्त होगा। अस्तु रिर्जव

बैंक की कृषिवित्त व्यवस्था की सीमा अनिवार्यतः सीमित हो गई है। स्टेट बैंक आफ इण्डिया का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य देश में एक प्रभावशाली बैंकिग क्षेत्र को इस प्रकार पुर्नगठित एवं पुनर्निमित करना था कि वह सहकारी संस्थाओं की वित्तीय आवश्यकताओं, विशेषकर विपणन व विधायन सम्बन्धी आवश्यकताओं, की पूर्ति करने में समर्थ हो सके। तदनुसार स्टेट बैंक ने अपनी स्थापनां के तुरन्त बाद से ही सहकारी संस्थाओं के ऐसे मामले जैसे प्रेषण (रेमिटेन्स), चैकों तथा बिलों का क्रय व संग्रह, सरकारी प्रतिभूतियों के विरुद्ध अग्रिम, माल के पुर्नबन्धक पर अग्रिम तथा भूमि विकास बैकों के ऋण पत्रों के क्रय अथवा उनके विरुद्ध अग्रिम के सम्बन्ध में विशेष सुविधायें देना आरम्भ कर दिया। इधर कुछ वर्षों से स्टेट बैंक आफ इण्डिया ने जनपद जालौंन में भी सहकारी विपणन समितियों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति तथा भूमि विकास बैंकों के माध्यम से अन्तिरिम सहायता प्रदान करने अथवा उनके ऋण पत्र क्रय करने की दिशा में पर्याप्त प्रगति की है।

सहकारी साख पर मेहता समिति ने सहकारी संस्थाओं की आवश्यकताओं के प्रति स्टेटबैंक आफ इण्डिया की कार्य प्रणाली पर संतोष व्यक्त करते हुये विपणन समितियों को स्टेट बैंक द्वारा प्रदत्त साख सुविधाओं की प्रक्रिया को सुप्रवाही बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इसके अतिरिक्त 1954 में ही गठित एक अध्ययन दल (दि इन्फोरमल ग्रुप आन इन्सटीयूशनल अरेन्जमेन्टस फार एग्रीकल्चरल क्रेडिट) ने उन विभिन्न दिशाओं व दशाओं का उल्लेख किया है जिससे ग्रामीण तथा सहकारी क्षेत्र के लिये वित्तदाता के रुप में स्टेट बैंक को अपनी प्रभावी भूमिका निभानी चाहिये थी। दल के मतानुसार :–

1. खाद्यान्नों की वसूली के लिये कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं की व्यवस्था करना।

2. विभिन प्रकार की गैर साख सहकारियों की अधिक से अधिक आवश्यकताओं को अपने सीमां क्षेत्र में लाने के लिये साख सुविधाओं में वृद्धि एवं विस्तार करना।

3. स्वस्थ्य बैंकिग प्रणाली की आवश्यकताओं के अनुरुप सहकारी क्षेत्र में विभिन्न स्तरों पर ऋण नीतियों एवं विधियों को सुनिश्चित करने की दिशा में क्रमिक प्रयास तथा इस लक्ष्य की पूर्ति व प्राप्ति हेतु स्टेट बैंक आफ इण्डिया का ग्रामीण साख विभाग तथा रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के कृषि साख विभाग में निकटतम सम्बन्ध बनाये रखना चाहिये।

सन् 1955 के बाद से ही यद्यपि रिजर्व बैंक का कृषि साख विभाग कार्यरत तो रहा है परन्तु समयान्तर यह भार स्टेट बैंक आफ इण्डिया पर ही आ गया कि वह कृषकों को हर सम्भव वित्तीय सहायता प्रदान करें।

जनपद जालौन में भी स्टेट बैंक की स्थापना उरई में होने के पश्चात से ही सहकारिता विभाग को इससे निम्नलिखित विविध प्रकार की सेवाओं का लाभ हुआ हैः–

1. स्टेट बैंक ने जनपद की तहसीलों, मण्डियों व छोटे कस्बों में शाखायें खोली हैं ताकि यह किसानों और अन्य ग्रामीण वर्ग के लोगों में बैंकिग की आदतों को प्रोत्साहित कर सके।

2. विपणन एवं विधायन समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिये कई कार्यक्रम तैयार किये गये हैं। सहकारी विपणन के विकास के लिये स्टेट बैंक की मुख्य भूमिका एक सहायक वित्तदाता के रुप में जनपद में साकार हो रही है। इसके लिये बैंक ने सहकारी वित्तीय संस्थाओं तथा सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार से अनुमति प्राप्त कर ली है।

   यह वित्तीय सहायता बैंक विपणन समितियों की अधिकतर उपज के बन्धक पर प्रदान कर रहा है। आवश्यकता पड़ने पर गैर जमानती,

ऋण राज्य सरकार की गारन्टी पर सुलभ कराये जा रहे हैं। इस प्रकार भूमि बन्धक रखकर ही जो ऋण देने की प्रथा रही है उस पर किसी हद तक अंकुश लगाया जा सका है।

इसके अतिरिक्त विपणन समितियों को कार्यशील पूंजी में वृद्धि हेतु भी स्टेट बैंक केन्द्रीय बैंको के माध्यम से ऋण देता रहा है।

3. स्टेट बैंक आफ इण्डिया जनपद जालौन में राज्य तथा केन्द्रीय बैंकों को ब्याज की रियायती दर पर ऋण अथवा अधिविकर्ष की सुविधायें प्रदान करता रहा है जिससे वे प्रवाहशील साधनों को एक निश्चित स्तर पर बनाये रख सकें तथा उनके अपने नित्य प्रति के क्रियाकलापों में निरन्तरता बनी रहे। इसके साथ–साथ विशेष परिस्थितियों में स्टेट बैंक सरकारी गारन्टी पर राज्य सहकारी बैंको को अग्रिम की सुविधा प्रदान करता रहा है जिससे वे समयबद्ध समितियों को वित्त प्रदान कर सकें।

4. विभिन्न प्रकार के अग्रिम ऋणों के अतिरिक्त स्टेट बैंक सहकारी बैंक तथा उसकी सहायक सहकारी संस्थाओं को निश्चित सीमा के अन्तर्गत निःशुल्क प्रेषण सुविधाऐं प्रदान कर रहा है। इस योजना के अन्तर्गत एक राज्य सहकारी बैंक सप्ताह में एक बार एक निश्चित न्यूनतम रकम अपनी प्रत्येक शाखा को निःशुल्क भेजने की सुविधा प्राप्त कर रहा है। परन्तु ऐसा करते समय कुछ निश्चित शर्तों का पालन करना पड़ता है।

जनपद में सहकारी साख संस्थाओं, जिला सहकारीबैंक तथा उसकी शाखाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करने के साथ–साथ गांव अंगीकृत योजना (विलेज एडोप्शन स्कीम) के अन्तर्गत ऐसे गांव चिन्हित कर जहां किसी भी बैंक की कोई शाखा नहीं है, स्टेट बैंक ने अपनी शाखा खोली है तथा योजनान्तर्गत अंगीकृत गांव के सभी कार्यक्षम्य किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा है।

जनपद में स्टेट बैंक कृषि वस्तुओं के संग्रहण के लिये भण्डारागार स्थापित करने और उन्हें लोकप्रिय बनाने के लिये ऋण दे रहा है।

स्टेट बैंक जनपद में सहकारी समितियों को अल्पकाल के लिये रियायती दरों पर ऋण की सुविधा प्रदान कर रहा है।

स्टेट बैंक, जिला जालौन सहकारी बैंक लि0 उरई को राज्य भण्डारागार नियमों के अन्तर्गत ऋण सुलभ कराने की सुविधा दे रही है।

इतना ही नहीं स्टेट बैंक आफ इण्डिया इस जनपद में जो भी औद्योगिक सहकारियाँ, उपभोक्ता सहकारियाँ व भूमि विकास बैंक तथा उसकी शाखायें कार्यरत हैं, उन सभी की विकास की गति को निरन्तरता प्रदान करने के लिये हर सम्भव प्रयास ही नहीं वरन् इन सभी में एक समन्वय स्थापित करने का सफल कार्य भी कर रहा है। यह जनपद के कई ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी समितियों को पूर्ण सर्तकता बरतते हुये ऋण प्रदान करने में बहुत हद तक सफल हुआ है।

बैंक शाखा–विस्तार के कार्यक्रम के अन्तर्गत समन्वित साख सुविधाओं का विकास, विशेषकर सस्ती प्रेषण सुविधाओं व सहकारी संस्थाओं के लिये जिन शार्तों पर अग्रिम सुविधाएं प्रदान करता है, वे इतनी उदार एवं लोचशील हैं कि सभी संस्थाओं के अनुकूल हैं। ब्याज की दरें नीची ही रक्खी गई हैं जो 7 प्रतिशत से 9 प्रतिशत के मध्य ही रहती हैं तथा अग्रिम व जमानत की प्रकृति के अनुसार कम या अधिक इन्हीं सीमाओं के अन्तर्गत होती हैं।

तुलनात्मक दृष्टिकोण से जनपद की अन्य संस्थागत वित्तीय संस्थाओं को ध्यान में रखकर यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि अन्य संस्थाओं की अपेक्षाकृत स्टेट बैंक की नीति अधिक व्यवहारिक एवं लचीली है तथा आवश्यकतानुरुप हितकर इसलिये भी है क्यों कि यह ध्यान रक्खा जाता

है कि इसकी नीति सहकारी संस्थाओं की परस्पर विरोधी न हो और न ही कृषि विकास व विस्तार में व्यवधान पड़े। स्टेट बैंक द्वारा सहकारी संस्थाओंकी उन व्यवहारिक कठिनाइयों को, जो उसकी नीतियों तथा विधियों में अनुभव की गई है, दूर करने का हर सम्भव प्रयास किया गया है। उन क्षेत्रों में जहाँ जिला सहकारी बैंक व उसकी शाखायें सशक्त तथा कार्यकुशल हैं, बैंक द्वारा दी गई सहायता सहकारी बैंक के माध्यम से ही प्रवाहित हुई है, परन्तु जहां बैंक सशक्त नहीं है, स्टेट बैंक की उरई शाखा ने सम्बन्धित सहकारी समितियों व बैंक की शाखाओं की प्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान की है। स्टेट बैंक के कार्यकलापों, सहयोग व समन्वय नीतियों को देखते हुये 'अखिल भारतीय ग्रामींण साख समीक्षा समिति' ने कहा है कि स्टेट बैंक ने कुछ वर्षों से उपयुक्त कार्य विधियां अपनाई हैं, परम्परागत विधियों की अनिवार्यताओं में कुछ आवश्यक ढील बरती हैऔर इस प्रकार सहकारी साख समितियों तक साख प्रवाहित करने में विभिन्न प्रशंसनीय कदम उठाये हैं।

राष्ट्रीयकृत बैंक

भारतवर्ष ऐसे विशाल कृषि प्रधान देश में कृषि क्षेत्र की साख आवश्यकतायें सदैव से ही विशाल रही हैं। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद तीन योजनायें समाप्त हो जाने के पश्चात् भी कृषि क्षेत्र के लिये संस्थागत वित्त प्रदान करने वाली संस्थाओं विशेष कर व्यापारिक व वाणिज्य बैंकों की भूमिका अपेक्षा से बहुत कम रही है। अतः सरकार द्वारा प्रारम्भ में इन बैकों को सामाजिक नियंत्रण की चेतावनी दी गई और अततः 1969 में पहले 14 और बाद में 6 बैकों को राष्ट्रीयकृत कर दिया गया। राष्ट्रीयकरण इस उद्देश्य से किया गया था कि कृषि क्षेत्र में व्याप्त वित्त की कमी तथा सूदखोरी से त्रस्त ग्रामीण जनता को (साहूकारों व महाजनों के चंगुल में फंसी) किसी हद तक मुक्ति दिलाई जा सके और लघु कृषकों, सीमान्त कृषकों व खेतिहर श्रमिकों की आवश्यक अल्पकालीन व मध्यकालीन साख की मांग को पूरा किया जा सके। परन्तु इन बैकों की क्रियायें शहरी व कस्बाई जनता से धनराशि जमां कराना, उस पर ब्याज देना व उसे अधिक लाभकारी व्यापारिक क्षेत्र में लगाना, स्थायी खाता व बचत खाता के माध्यम से जनता की जमाराशि को लाभप्रद मदों में लगाने तक सीमित ही कर रही।

ग्राम–वित्त में वाणिज्य बैंकों की रुचि पहली बार तब शुरु हुई जब 1955 में स्टेट बैंक की सहायता के पश्चात सहकारी विपणन व सहकारी विघायन समितियों को उधार की व्यवस्था की गई। प्रारम्भिक अवस्था में इन बैंको को ग्रामीण क्षेत्र में रुपया लगाना सैद्धान्तिक और व्यवहारिक रुप से उपयुक्त नहीं लगा। परन्तु जब सरकार के आदेशानुसार इन्हें हर दशा में एक निश्चित धनराशि अपने क्षेत्र में लगाना कृषि विकास के लिये अनिवार्य कर दिया गया, तब भी ये बैंक पूर्णरुपेण समार्पित भाव से ग्राम वित्त के क्षेत्र में सेवा नहीं करना चाह रहे थे। अस्तु रिजर्व बैंक द्वारा श्री एफ.के.एफ. नरीमान

के 1969 के प्रतिवेदन के सुझाव पर 'अग्रणी बैंक योजना' (लीड बैंक प्लान) लायी गई तथा इसका कार्यान्वन 1982 से सभी जनपदों में प्रारम्भ किया गया। इस समिति ने सुझाव दिया कि देश के सभी जनपदों को बांट दिया जाना चाहिये तथा प्रत्येक बैंक को अपने अपने हिस्से में आये जिलों में बैंकों की शाखाओं का विस्तार, साख वितरण व सामान्य विकास के लिये उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए। प्रत्येक जिले में जिस बैंक की शाखाओं व व्यापार का विस्तार अधिक सफल रहा हो और जिसे जिले के बैंकिग विकास का उत्तरदायित्व सौंपा गया हो, वह उस जनपद का अग्रणी बैंक माना जाय। इस प्रकार जनपद जालौंन में इलाहाबाद बैंक अग्रणी बैंक की भूमिका निभा रहा है।

अग्रणी बैंक के कार्य

1. आवांटित जनपद में बैंकिग विकास की सम्भावनाओं का सर्वेक्षण करना।
2. उन औद्योगिक एवं व्यापारिक इकाइयों की जानकारी करना जो अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को बैंक के माध्यम से पूरा नहीं करती हैं।
3. आवंटित जनपद में कृषि उपज के संग्रहण व बिक्री की स्थिति का अध्ययन करना।
4. अपने क्षेत्र में खाद व कृषि औजारों की मरम्मत की सुविधाओ का पता लगाना।
5. ऋण देने वाली प्राथमिक एजेन्सियों की सहायता करना।
6. सरकारी व अर्धसरकारी एजेन्सियों से सम्पर्क स्थापित करना।
7. ग्रामीण बैंकों की स्थापना करना।

वाणिज्य या राष्ट्रीयकृत बैंक और समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम

अक्टूबर 1987 के बाद सरकार ने समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के विस्तार को देश के सभी विकास खण्डों में लागू करने का निर्देश एवं जिम्मेदारी सभी वाणिज्य बैकों को सौंपी थी व इन राष्ट्रीयकृत बैकों को इस

कार्यक्रम के लिये वित्त व्यवस्था करने को कहा था परन्तु इन बैंकों ने आवश्यक उत्साह के साथ इसे लागू नहीं किया। इसके कई कारणों में ऋण वसूली प्रमुख कारण रहा है जिससे वाणिज्य बैंकों के समक्ष आर्थिक अभाव की समस्या उत्पन्न हो गई थी। अध्ययन क्षेत्र जनपद जालौन (उरई) में इलाहाबाद बैंक में यह मैनेजर व प्रबन्धक की अकार्यक्षमता का प्रतीक मानते हुये कई मैनेजरों के स्थानान्तरण भी किये गये, फिर भी अपेक्षित परिणाम प्राप्त न हो सके।

इसके अतिरिक्त राजनीतिक तथा सामाजिक प्रभाव के चलते कई समृद्ध किसानों ने सरकारी अधिकारियों को रिश्वत दिलाकर अपने नाम लाभार्थी सूची में दर्ज करा लिये। अस्तु जो रुपया आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़े व्यक्तियों को मिलाना चाहिये था वह उन्हें नहीं मिल सका। इससे कार्यक्रम के द्वारा मूलभूत समस्या का निदान सम्भव नहीं हो सका।

एक अन्य तथ्य यह भी जनपद में उजागर हुआ है कि लाभार्थी प्राप्त ऋण का प्रयोग उस उद्देश्य के लिये नहीं करते, जिसके लिये वे आवेदन करते हैं। इस प्रकार अधिकांश ऋण का भाग अनुत्पादक कार्यों में लगाया गया जिससे समयान्तर में ऋण वसूली की समस्या उठ खड़ी हुई और इस कारण राष्ट्रीयकृत बैंकों ने धीरे–धीरे अपना हाथ इस योजना से खींचना प्रारम्भ कर दिया।

ऋण प्राप्त करने की प्रक्रिया में प्रायः कम पढ़े लिखे कृषक व ग्रामीण कारीगर छोटे सरकारी अधिकारियों द्वारा, पंचायत समिति के सदस्यों व बैंक के कर्मचारियों द्वारा ठगे जाते हैं। यह तो आज सर्वस्वीकृत तथ्य है कि योजनाओं का जो भी धन, चाहे वह ऋण के रुप में मिलता हो या अन्य किसी रुप में,उसका अधिकांश भाग बिचौलियों द्वारा येन केन प्रकारेण हड़प कर लिया जाता है। अस्तु वांछित लाभ या विकास सम्भव नहीं हो पाता।

अस्तु वित्त प्रबन्ध के क्षेत्र में ऋण उपलब्ध कराने की समस्या केवल मात्रा की दृष्टि से ही ग्रामीणांचलों तक धनराशि पहुंचाने की नही है वरन् राष्ट्रीयकृत बैंकों के उस उत्तदायित्व की भी है, जिससे उन्हें किसी भी योजनान्तर्गत दिये गये ऋण से बांछित विकास लक्ष्य को वास्तव में प्राप्त करना है और इस कार्य में मेरे मतानुसार ऐसा हो नहीं पा रहा है। अतः राष्ट्रीयकृत बैंकों को छोटे किसानों व ग्रामीण शिल्पकारों की दशा सुधारने के लिये वित्त प्रबन्ध की कुछ नई व छोटी–छोटी योजनायें अणु आर्थिक दृष्टिकोंण अपना कर चलानी होंगी।

एक अनुमान के अनुसार जनपद के 50 प्रतिशत से भी अधिक कृषक ऐसे हैं जिनके पास दो हेक्टेअर से कम भूमि है और इनको आज भी ऋण उपलब्ध नहीं हो पा पहा है। कारण वही कि राष्ट्रीयकृत अग्रणी बैंक द्वारा केवल बड़े भूस्वामी ही ऋण के पात्र समझे जा रहे हैं। परिणामतः सेवा क्षेत्र पद्यति (सर्विस एरिया एप्रोच) जैसी योजनाओं में राष्ट्रीयकृत बैकों को अर्धनगरीय व ग्रामीण क्षेत्र का विशेष दायित्व सम्हालना होगा। इसके अनतर्गत सेवाक्षेत्र की पहचान, उधार की क्षमता, वार्षिक आवश्यकता उधार और योजनाओं का प्रभावी ढ़ंग से क्रियान्वयन तथा व्यवहारिक ढ़ंग से समन्वय करना होगा, जिससे चमत्कारिक तो नहीं परन्तु किसी हद तक आशानुरुप कृषि विकास सम्भव हो सकेगा।

जनपद में अभी तक राष्ट्रीयकृत बैकों का कृषि विकास में जो अनुदान रहा है वह 50 प्रतिशत से अधिक नहीं रहा है। एक विशेष तथ्य यह भी उजागर हुआ कि चूंकि जनपद में बहुत पहले से ही भूमि विकास बैंक स्थापित है और यह दीर्घकालीन ऋण कृषकों को सुलभ कराता ही हैं तथा अब क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भी खुलगये हैं अस्तु अब यह विषय अग्रणी बैंक की चिन्ता का विषय नहीं रह गया है। अस्तु बैंक अधिक उधार देकर ऋण वसूली की

परेशानी में और नहीं पड़ना चाहता है।

इस प्रकार जनपद में जहां सहकारी संस्थाओं का योगदान उत्तरोत्तर बढ़ा है वहां राष्ट्रीयकृत बैकों का प्रतिशत योगदान बहुत तेजी से घटा है, जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है :–

तालिका संख्या - ६९

संस्थायें	1951–52	1961–62	1980–81	1989–90
सहकारी संस्थायें	3.3	2.6	29.9	40.0
सरकार	3.1	15.5	3.9	3.0
राष्ट्रीयकृत बैंक	0.9	0.6	29.4	5.0
योग	7.3	19.7	63.2	48.00

स्रोत :– करेन्सी एण्ड फाइनेन्स 1988–98 व सातवीं पंचवर्शीय योजना।

नोट :– चूंकि अग्रणी बैंक की योजना जनपद में पूर्णतया लागू हो चुकी थी अतः उसी का प्रभाव 1980–81 के प्रतिशत आंकडों में दिखता है। परन्तु वर्तमान में (1990–2001) राष्ट्रीयकृत बैंक व वाणिज्य बैकों का जनपद में योगदान नगण्य ही कहा जायेगा। कारण पृष्ठाकिंत किये जा चुके हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (छत्रसाल ग्रामीण बैंक)

तीन पंचवर्षीय एवं तीन एक वर्षीय योजनाओं के पूरा हो जाने के बाद भी यह महसूस किया जा रहा था कि देश के विशाल ग्रामीण एवं कृषि क्षेत्र की विशाल साख आवश्यकताअें को केवल सहकारी संस्थाओं, सरकारों एवं कुछ अन्य अर्द्ध सरकारी संस्थओं के माध्यम से पूरा नहीं किया जा सकता। इस दिशा में कुछ नये प्रयोगों की आवश्यकता है।

अस्तु आर्थिक कार्यक्रम के इस पहलू को अग्रसारित करने के लिये भारत सरकार ने 26 सितम्बर 1975 को एक अध्यादेश द्वारा देश भर में क्षेत्रीय बैंक स्थापित करने की घोषणा की तथा 2 अक्टूबर 1975 को देश भर में 50 क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की स्थापना की गई। क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों का मुख्य उद्देश्य विशेष रुप से छोटे और सीमान्त किसानों, कृषक मजदूरों, ग्रामीण कारीगरों व परम्परागत शिल्पकारों तथा छोटे अद्यमकर्ताओं को उधार तथा अन्य सुविधायें उपलब्ध कराना था ताकि ग्रामीण क्षेत्र के चतुरांगी विकास को सम्भव बनाया जा सके तथा ग्रामीण क्षेत्र की सम्पूर्ण उत्पादक क्रियाओं को विकसित किया जा सके।

प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की अधिकृत पूंजी 1 करोड़ रुपये व जारी व चुकता पूंजी 25 लाख रुपये रक्खी गयी। इन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की हिस्सा पूंजी में 50 प्रतिशत केन्द्र सरकार द्वारा दिया जायेगा, राज्य सरकार का 15 प्रतिशत व प्रर्वतक बैंक 35 प्रतिशत का योगदान रहेगा।

क्षेत्रीय ग्रमीण बैंक की वाणिज्य बैंकों से भिन्नता

यद्यपि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक मूलरुप से अनुसूचित वाणिज्य बैंक के ही प्रारुप हैं फिर भी इनमें अनेक भिन्नतायें विद्यमान हैं।

1. इनका कार्यक्षेत्र सीमित है जो एक जिले से लेकर अधिक से अधिक 5 जिलों तक हो सकता है। 2. ये बैंक लघुकृषकों, भूमि हीन कृषकों, ग्रामीण शिल्पकारों व कुटीर उद्योगों में लगे व्यक्तियों व सीमान्त कृषकों को ऋण सुविधा प्रदान करते हैं। 3. यह ऋण पर वही ब्याज दर लेते है तो प्राथमिक सहकारी साख समितियां लेती हैं। 4. इन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के कर्मचारियों के वेतनमान क्षेत्रीय राज्य कर्मचारियों के समान होते है। 5. इनकी पूंजी में सरकार राज्य तथा सम्बन्धित वाणिज्य बैंक की हिस्सेदारी होती है । 6. इन बैंकों को विश्वबैंक से भी ऋण प्राप्त होते हैं। 7. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रबन्ध संचालन एक 9 सदस्यीय प्रबन्ध मण्डल करता है जिसका सभापति केन्द्रीय सरकार निर्धारित करती है। इनमें से 3 संचालक केन्द्रीय सरकार मनोनीत करती है, 2 संचालक राज्य सरकार व शेष 3 सम्बन्धित बैंक द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। 8. इन बैंको के निम्न तीन मूल उद्देश्य हैं।

1. समाज को ऋण भार से मुक्ति दिलाना तथा साहूकारों के चंगुल से छुटकारा दिलाना।
2. ऋण केवल उत्पादक कार्यों के लिये देना।
3. विशेष परिस्थिति में गैर उत्पादक कार्यों के लिये भी ऋण देनें का प्रावधान है ऐसे ऋण की जमानत के रुप में सोने चांदी के आभूषण भी स्वीकार किये जा सकते हैं।

प्रगति :-

30 जून 1999 तक 23 राज्यों में 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की स्थापना हो चुकी थी जिनकी 14,454 शाखयें 427 जिलों में कार्यरत थीं, तथा इनके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले आर्थिक दृष्टिकोण से कमजोर व्यक्तियों को 12660 करोड़ रुपये अल्पकालीन ऋण के रुप में दिये गये थे।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को सुदृढ़ करने के लिये अब एक भारतीय राष्ट्रीय क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (नेशनल रुरल बैंक आफ इण्डिया) सभी 196 क्षेत्रीय बैंकों को मिलाकर बनाने की अनुमति रिजर्व बैंक ने दे दी है। यह बैंक सभी क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की एक सर्वोच्च संस्था होगी जिसका क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर पूर्ण नियंत्रण रहेगा। कुछ वर्ष पूर्व ही रिजर्व बैंक ने इन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को वाणिज्य बैकों की भांति भी कार्य करने ही अनुमति प्रदान कर दी है। आशा करते हैं कि इससे इन बैंको के कार्यों में वृद्धि होगी जिससे लाभार्जन के साथ विकास में वृद्धि होगी।

छत्रसाल ग्रामीण बैंक

इलाहाबाद बैंक द्वारा अग्रणी बैंक योजना के अन्तर्गत प्रवर्तित छत्रसाल ग्रामीण बैंक की स्थापना 30 मार्च 1982 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम 1976 की धारा (3) की उपधारा (1) के अन्तर्गत हुयी। बैंक के कार्यक्षेत्र में जालौन, हमीरपुर एवं महोबा जनपदों को शामिल किया गया हैं। इसका प्रधान कार्यालय राठ रोड, उरई में स्थित हैं। वर्तमान में यह बैंक अपनी 85, शाखाओं 3 रिटेल बैंकिग बुटीक एवं 334 कर्मचारियों के साथ अपने कार्यक्षेत्र में सुदूर ग्रामीण अंचलों तक बैंकिग सेवाओं के प्रसार में संलग्न है। ग्रामीण बैंकिग क्षेत्र में नवीनतम बैकिंग प्रवतियों जैसे कम्प्यूटरीकरण, बैंकिंग बुटीक एवं स्वयं सेवा संघ (सेल्फ टैल्प ग्रुफ एस.पी.जी.) छत्रसाल ग्रामीण बैंक की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ एवं विशेषतायें हैं।

शोधकार्यरत मैंने बैंक की बहुमुखी सेवाओं का गहन अध्ययन करने का प्रयास किया है जिसमें बैंक की कार्यशैली में पारदर्शिता, संचालक मण्डल एवं अधिकारीगणों की प्रशासनिक क्षमता के उत्कृष्ट उदारहण तथा कार्यरत कर्मचारियों के अनुभवी सफल संचालन व लगन का अनुकरणीय उदात्त उदाहरण देखने को मिला है। वहीं दूसरी ओर इसके विशाल संजाल (नेटवर्क) के कारण कुछ कमियां भी समझ में आई हैं। अस्तु इसके क्रियाकलापों का लेखा जोखा मैंने बेहिचक प्रस्तुत किया है, जिसका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार से है :–

तालिका संख्या - ७०

विवरण				योग
अ. मण्डल	झांसी		चित्रकूट	
ब. आच्छादित जनपद	जालौन	हमीरपुर	महोबा	
स. शाखा संजाल	37	30	18	85
ग्रामीण शाखाएं	03	01	02	06
शहरी शाखाएं	–	–	–	–
द. सेवा क्षेत्र में आवंटित ग्राम	545	328	291	1164

स्रोत : बैंक का वार्षिक प्रतिवेदन 2001–2002 *पृष्ठ 16*

छत्रसाल बैंक द्वारा प्रदत्त सेवाएं -

वैसे तो बैंक का नाम लेते ही उसके कार्यों का अनुमान लगाया जा सकता है। जनता से धन जमा करना और उस पर ब्याज देना व जमा धनराशि को विभिन्न मदों में विनियोजित कर ब्याज प्राप्त करना। परन्तु इस प्रकार के निवियोजन से कौन कितना और किस प्रकार से लाभान्वित हो रहा है या नहीं इसकी जानकारी नहीं हो पाती है परन्तु निम्नांकित तालिका से बैंक द्वारा प्रदत्त विभिन्न प्रकार की सेवाओं व उनकी प्रगति का लेखा जोखा स्पष्ट करनें का प्रयास किया गया है :–

तालिका संख्या - ७१

छत्रसाल ग्रामीण बैंक द्वारा वितरित ऋण सेंवाओं का उद्देश्यवार वर्गीकरण

क्र. सं.	विवरण	वर्ष 2000–2001	(धनराशि रुपये में) 2001–2002
1.	फसली ऋण	146932.00	211481.00
2.	लघु सिंचाई	6014.00	5673.00
3.	कृषि मशीनीकरण	15239.00	25192.00
4.	बैल जोड़ी	240.00	–
5.	डेयरी	7822.00	6579.00
6.	बकरी एवं भेड पालन	13036.00	6959.00
7.	सुअर पालन	996.00	202.00
8.	मत्स्य पालन	131.00	83.00
9.	ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग	1338.00	1584.00
10.	सेवाएं एवं व्यवसाय	10574.00	14088.00
11.	अनुसूचितजाति / जनजाति	66552.00	114502.00
12.	अल्प संख्यकों को	12757.00	22162.00
13.	लघु / सीमान्त कृषक एवं कृषि	69942.00	165051

स्रोत – पूर्वोलिखित *पृष्ठ 29*

अन्य बैंकिंग सेवाओं में विशेष उल्लेखनीय तथ्य

1. छत्रसाल किसान क्रेडिट काई योजना तथा
2. रिटेल बैंकिग बुटीक योजना

१. छत्रसाल किसान क्रेडिट कार्ड योजना

भारत सरकार, नाबार्ड एवं प्रवर्तक बैंक से प्राप्त दिशा निर्देशों के अनुरुप बैंक द्वारा छत्रसाल क्रेडिट कार्ड योजना 1998–99 में लागू की गई। वर्ष 2001–02 के मध्य 7568 कार्ड 212380 हजार रुपये के जारी किये गये तथा 31 मार्च को यह संख्या बढ़कर 12503 हो गयी। इसी वर्ष में बैंक द्वारा किसान कार्ड में वित्त पोषण पर विशेष जोर दिया गया।

तालिका संख्या- ७२

इलाहाबाद बैंक, अग्रणी बैंक प्रकोष्ठ – उरई (जालौन) किसान क्रेडिट कार्ड/ग्रीन कार्ड योजना 2000–01 की प्रगति यथा 31.3.2001

क्र.	बैंक का नाम	लक्ष्य	प्राप्ति	
सं.		भौतिक	भौतिक	धनराशि
1.	इलाहाबाद बैंक	2500	2823	1244.25
2.	भारतीय स्टेट बैंक	1000	1180	230.98
3.	सेन्ट्रल बैंक आफइण्डिया	800	109	30.51
4.	पंजाब नेशलन बैंक	230	12	8.20
5.	बैंक आफ बड़ौदा	204	41	7.20
6.	बैंक आफ इण्डिया	200	–	–
7.	छत्रसाल ग्रामीण बैंक	3700	2022	747.85
8.	जिला सहकारी बैंक	11000	12500	731.88
	कुलयोग	**19634**	**18687**	**3000.87**

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि क्रेडिट कार्ड के वितरण में इलाहाबाद बैंक को छोड़ सर्वाधिक धनराशि के क्रेडिट कार्ड इसी बैंक ने बांटने की चेष्टा की है जो निश्चय ही जनपद के कृषि विकास के लिये बैंक की कटिबद्धता को व्यक्त करती है।

२. रिटेल बैकिंग बुटीक्स योजना :-

बैंकिग क्षेत्र में आये परिवर्तन की मांग के अनुरुप बैंक द्वारा तीन रिटेल बैंकिग बुटीक्स फरवरी 2001 में उरई, महोबा व हमीरपुर में खोले गये। ये बुटीक्स केन्द्र वेतन–भोगियों व पेशेवर एवं स्वनियोजित व्यक्तियों की साख आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये खोले गये हैं।

३. स्वयं सेवी समूह (सेल्फ हेल्प ग्रुप) एवं किसान क्लब :-

समूह अभिधारणा पर पूर्ण सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाये जाने के परिणामस्वरुप बैंक आज 1005 स्वयं सेवा समूह एवं 10 किसान क्लबों के साथ कार्यरत है। स्वयं सेवा समूह के गठन में बैंक की अति महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जिनकी कुल जमा पूंजी 20.10 लाख रुपये है जिसके सापेक्ष 48.10 लाख का वित्तपोषण किया गया है। किसान क्लबों की संख्या 10 से बढ़ाकर

आगामी वर्ष में 50 तक पहुंचाने की योजना है। समूहों के जुड़ाव हेतु सेतु तैयार किये जा रहे हैं। स्वयं सेवा समूह की 31.3.02 की स्थिति निम्न है –

1.	पुरुष समूह	195
2.	महिला समूह	710
3.	मिश्रित समूह	100

इसके अतिरिक्त

4.	बैंक द्वारा प्रोन्नत समूह	108
5.	गैरसरकारी संगठनों द्वारा प्रोन्नत समूह	897
6.	बैंक द्वारा सम्बद्ध समूहों की संख्या	300
7.	समूहों को प्रदत्त बैंक ऋण राशि	4810रूपये
8.	निष्क्रिय समूहों की संख्या	109

४. जोखिम निधि :-

बैंक की स्थिति को सुदृढ़ता प्रदान करने व आकस्मिक आर्थिक संकट को हल करने के लिये जोखिम निधि स्थापित की गई है जिसके अन्तर्गत 2001–2002 के मध्य ऋणों के अपलेखन (राईटआफ) में 18100 हजार रुपयों का समायोजन किया गया है।

५. राष्ट्रीय बीमा योजना :-

किसानों के हितों का विशेष ध्यान रखते हुये बैंक द्वारा रबी फसल में 1999–2000 में सरकार की इच्छानुरुप राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना लागू करने का निर्णय लिया गया। अस्तु 2001–2002 के मध्य 190 हजार रुपयों की बीमा राशि का भुगतान किया गया।

६. मानव संसाधन एवं प्रशिक्षण :-

बैंकिग व्यवसाय के वित्तीय परिदृश्य के बदलते स्वरुप को ध्यान में रखते हुये तथा बैंक कर्मचरियों की कार्यक्षमता बनाये रखने को ध्यान में

रखते हुये, कार्यालय कर्मचारियों को विभिन्न कार्यविधियों के सम्बन्ध में प्रशिक्षण दिलवाया गया।

उपरोक्त सेवाओं के द्वारा बैंक में जहां एक ओर ग्रामीण जमा का संचय कर ठोस वित्तीय आधार तैयार किया है वही कमजोर वर्ग एवं कृषकों को ऋण के माध्यम से वित्तीय सहायता सुलभ कराकर कृषि और उससे सम्बन्धित कार्यकलापों को प्रोत्साहन प्रदान किया है। परिणामतः शोषित ग्रामीणों को किसी हद तक महाजनी शोषण से छुटकारा सम्भव हो सका है जिससे बैंक को अपेक्षित लाभोत्पादकता की दिशा में सराहनीय सफलता प्राप्त हुयी है।

बैंकों ने विभिन्न शाखाओं में जनता एवं कर्मचारियों के हित को ध्यान में रखकर ही कम्प्यूटर की सुविधा को प्रारम्भ किया है तथा ग्राहकों को आकर्षक सेवाओं से रिझाने का प्रयास किया है तथा भविष्य में सेवा क्षेत्र के प्रत्येक परिवार को उनकी आवश्यकतानुसार किसी न किसी रुप में अपनी सेवायें उपलब्ध कराने हेतु प्रतिबद्ध है।

छत्रसाल ग्रामीण बैंक की उपलब्धियां

2001–2002 में बैंकों ने 261772.36 लाख रुपये का व्यवसाय किया जिसमें ऋण 8141.72 लाख रु0 तथा जमा अंश 18,630.64 लाख रुपये था।बैंक द्वारा 281.73 लाख रु0 का शुद्ध लाभ अर्जित किया परन्तु अपनी संचयी हानि घटाने पर लाभ 442.29 लाख रु0 तक सीमित रहा। गत वर्ष तक जो 25 शाखाएं घाटे पर चल रही थीं वे सतत् प्रयासों व सर्तकताओं के द्वारा 15 ही रह गई।

बैंक की अधिकृत पूंजी 50,000 हजार रु0 है जिसमें चुकता अंश पूंजी 10,000 हजार रुपये है जो निम्न प्रकार से आवंटित है

1. केन्द्र सरकार 50 प्रतिशत
2. प्रवर्तक बैंक 35 प्रतिशत
3. राज्य सरकार 15 प्रतिशत

तालिका संख्या-७३

चुकता पूंजी एवं अंश पूंजी का विवरण (हजार रुपयों में)

क्र. सं.	अंशधारक	चुकता पूंजी	अंशपूजी जमा
1.	केन्द्र सरकार	5000	71981
2.	प्रवर्तक बैंक	3500	50387
3.	राज्य सरकार	1500	17326
	योग	**10,000**	**139694**

तालिका स्रोत : पूर्वोलेखित *पृश्ठ सं0 16*

बैंक जमाएं :-

यद्यपि छत्रसाल ग्रामीण बैंक को शाखाओं के ग्रामीण विस्तार के कारण अनेक प्रारम्भिक कठिनाइयों व बाधाओं को पार करना पड़ा तथा अनेक विपरीत परिस्थितियों व प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण के मध्य कई उतार चढ़ाव भी झेलने पड़े परन्तु इस सबके उपरान्त जमाराशियों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है जिससे बैंक की आर्थिक सुदृढ़ता बढ़ी है तथा लाभ देयता की स्थिति में भी आपेक्षित वृद्धि हुई है। जैसा कि निम्नाकिंत चित्र से स्पष्ट होता है :–

जमाराशि 2001	जमाराशि 2002
16549.98 रुपये	18630.65 रुपये

बैंक निवेश :-

भारतीय रिजर्व बैंक के निर्देशों का पालन करते हुये अग्रणी इलाहाबाद बैंक की सलाह पर तथा बोर्ड की अनुमति से 31 मार्च 2002 की समाप्ति पर बैंक ने 1102556 हजार रु0 का निवेश किया।

बैंक का ऋण एवं अग्रिम :-

इसी वर्ष के मध्य बैंक ने ऋण और अग्रिमों में पिछले वर्ष की तुलना में विभिन्न क्षेत्रों में 33.81प्रतिशत की रिकार्ड वृद्धि की जबकि निवेश में 4.26 की गिरावट हुई। वार्षिक ऋण योजना के अन्तर्गत चालू वित्तीय वर्ष में 369364 हजार का ऋण वितरित किया गया जो लक्ष्य से 137 प्रतिशत अधिक था। इसी वर्ष में किसान कार्ड में वित्त पोषण पर विशेष जोर दिया गया। छत्रसाल ग्रामीण बैंक, जैसा कि पूर्वोलिखित है अग्रणी बैंक योजना के अन्तर्गत इलाहाबाद बैंक उरई द्वारा प्रवर्तित बैंक के रुप में कार्यरत है। छत्रसाल ग्रामीण बैंक द्वारा संचालित उसकी 19 शाखायें भी कार्य कर रहीं है परन्तु इसके अतिरिक्त यदि अग्रणी बैंक के माध्यम से जो अन्य शाखायें छत्रसाल बैंक के नाम से कार्यरत हैं तो वे 19+18=37 शाखाएं जालौन, हमीरपुर व महोबा जनपदों में कार्यरत हैं। निम्नांकित पृष्ठों में छत्रसाल ग्रामीण बैंक के नाम से कार्यरत सभी शाखाओं द्वारा कृषि क्षेत्र के विकास के योगदान को दार्शाया गया है :–

नोट : इस विस्तार के लिये समस्त समंक (स्टेटिस्टिक्स) इलाहाबाद बैंक की वार्षिक ऋण योजना 2001–2002 से उद्घृत किये गये हैं :–

तालिका सं० - ७४ (अ)
जमा राशियाँ तथा अग्रिम और उनका अनुपात

(तुलनात्मक अध्ययन) (लाख रु0 में)

शाखायें	1998–1999			1999–2000			2000–2001		
	जमा	अग्रिम	सी.डी. अनुपात	जमा	अग्रिम	सी.डी. अनुपात	जमा	अग्रिम	सी.डी. अनुपात
छत्रसाल ग्रामीण बैंक शाखायें 37	5526	2047	37%	6447	2211	37%	8447.80	2886.28	37%
अग्रणीं इलाहाबाद बैंक शाखायें 27	13396.00	3487.00	26 %	15709.00	4010.00	35%	18264.16	4462.60	24%
जिला सहकारी बैंक शाखायें 17	6929.00	5037.00	73 %	6447.00	2211.00	34%	8447.80	2886.28	34%

तालिका सं० - ७४ (ब)

जनपद जालौन की 1998–99 की वार्षिक योजनान्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में निर्धारित लक्ष्य एवं प्राप्ति

(तुलनात्मक अध्ययन) मार्च 1999 की स्थिति (लाख रु0 में)

शाखायें	खेती			उद्योग			सेवाएं			योग		
	लक्ष्य	प्राप्ति	प्राप्ति प्रतिशत	लक्ष्य	प्राप्ति	प्राप्ति प्रतिशत	लक्ष्य	प्राप्ति	प्राप्ति प्रतिशत	लक्ष्य	प्राप्ति	प्राप्ति प्रतिशत
छत्रसाल ग्रामीण बैंक शाखायें 37	443.09	325.40	73%	55.46	56.82	104%	84.19	92.18	109%	528.64	475.40	82%
इलाहाबाद बैंक शाखायें 27	734.42	880.93	129%	143.40	73.48	51%	262.10	209.01	80%	11391	163.42	102%

उपरोक्त तालिकाओं की तुलना करने पर पहली बात तो यह स्पष्ट होती है कि इलाहाबाद बैंक की स्थापना के 136 वर्ष पूरे होने जा रहे हैं जबकि छत्रसाल ग्रामीण बैंक 1982 में स्थापित हुआ है और इसे 20 वर्ष ही हुये हैं। इसकी प्रवर्तक शाखाओं को यदि अलग करके देखें तो इसकी 19 ग्रामीण क्षेत्र की शाखायें अच्छी सेवा प्रदान कर कृषि विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। कुछ वर्षों तक इसका विस्तार तीवग्रगति से हुआ परन्तु अब यह अपना ध्यान मूलरुप से एक व्यापारिक बैंक के रुप में अधिक केन्द्रित कर रहा है। अग्रिम ऋण देने के अनिवार्यता के कारण जो आर्थिक कठिनाई इसे झेलनी पड़ी है, शायद यही इसका एक कारण रहा है।

जमा तथा अग्रिम राशियों तथा सी.डी. अनुपात में तालिका संख्या 72 (अ) के अनुसार सी.डी. (क्रेडिट डिपोजिट) में अनुपातिक कमी इलाहाबाद बैंक तथा छत्रसाल बैंक दोनों में ही हुई है। जमाराशि में भी वृद्धि भी दोनों में साथ साथ हुयी है। दोनों बैंकों में साथ – साथ अग्रिम राशियाँ भी बदी हैं इस प्रकार दोनों की स्थिति समान तुलनीय रही है।

ठीक इसी प्रकार से तालिका संख्या 72 (ब) का तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि लक्ष्य प्राप्ति की स्थिति कभी इलाहाबाद बैंक

के पक्ष में खेती के क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों के अपेक्षा अधिक अच्छी रही जहां उसके द्वारा 132 प्रतिशत का लक्ष्य प्राप्त हुआ जबकि छत्रसाल बैंक 73 प्रतिशत लक्ष्य प्राप्त कर सका। जबकि उद्योग और सेवाओं की तुलना में छत्रसाल बैंक ने लक्ष्य अधिक संतोषजनक प्राप्त किया। यदि समस्त क्रियाओं पर जोड़कर निगाह डालें तो इलाहाबाद बैंक बेहतर स्थिति में है जबकि छत्रसाल ग्रामीण बैंक भी संतोषप्रद स्थिति में कहा जा सकता है।

चूंकि शोध प्रबन्ध का विषय जालौन जिला सहकारी बैंक है अस्तु उपरोक्त दो बैकों की अपेक्षा इस बैंक की तुलनात्मक प्रगति अधिक महत्वपूर्ण होगी।

अब इस आधार पर जहां तक शाखा–विस्तार की व्याख्या की जाय तो समस्त जनपद में इलाहाबाद बैंक की वार्षिक योजना (2001–02) के आधार पर जनपद की कुल बैंकिग शाखायें में 103 थी तब छत्रसाल बैंक की 37 व लीड बैंक की 27 शाखाओं के बाद जालौन डिस्ट्रिक कोआपरेटिव बैंक की शाखायें 17 थी जबकि आज वे 19 हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि बैंक आपनी शाखाओं के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसार हेतु उत्तरोत्तर प्रयासरत है। पूंजी विनियोजन में भी इलाहाबाद बैंक तथा स्टेट बैंक आफ इण्डिया के पश्चात् तीसरा नम्बर जालौन जिला सहकारी बैक लि0 का है जिसके द्वारा 6929.00 लाख रु0 का विनियोजन किया गया है और यह विनियोजन वर्षानुवर्ष बढ़कर 1999–2000 में 7800 लाख और 2000–01 में 8938.00 लाख रु0 का हो गया। अग्रिम ऋण व सी.डी. अनुपात में भी इसका कार्य सराहनीय रहा है – यथा 5037.00 लाख रूपये/सी0डी0 अनुपात 73 प्रतिशत 3435.00 लाख रु0/सी0डी0 अनुपात 44 प्रतिशत व 3693.46 लाख रु0/सी.डी. अनुपात 41 प्रतिशत जो 1999 से 2002 तक जनपद के सभी बैंकों से सर्वश्रेष्ठ रहा है। अस्तु यह निष्कर्ष स्वाभाविक ही दृष्टिगोचर हो जाता है कि जालौन जिला

सहकारी बैंक जनपद के कृषि क्षेत्र में ही नहीं वरन् ग्रामीण क्षेत्र की सभी आर्थिक समस्याओं को हल करने में अग्रणी बैंक की भूमिका सफलता पूर्वक कर रहा है।

छत्रसाल ग्रामीण बैंक और वार्शिक अग्रणी बैंक ऋण योजना २०००-२००१

(मार्च 2001 तक)

इस योजना के अन्तर्गगत इलाहाबाद बैंक की लक्ष्य प्राप्ति 100.09 प्रतिशत तथा छत्रसाल ग्रामीण बैंक की लक्ष्य प्राप्ति 109.78 प्रतिशत रही, जिसे सराहनीय कहा जा सकता है। जालौन जिला सहकारी बैंक द्वारा यह 73.29 प्रतिशत व कृषि एवं ग्राम विकास बैंक द्वारा 60 प्रतिशत रहीं।

स्रोत वार्षिक ऋण योजना 2000–01 इलाहाबाद बैंक :–

तालिका संख्या - ७५

अग्रणी बैंक योजनान्तर्गत :-

31.3.2001 तक वार्षिक ऋण तथा वसूली (लाख रु0 में)

बैंक का नाम	शाखाएँ	वार्षिक ऋण योजना			वार्षिक ऋण योजना		
		लक्ष्य	प्राप्ति	% प्राप्ति	रकम वसूली	प्रतिशत	बकाया वसूली
1. इलाहाबाद बैंक	27	1594.44	1596.05	100.09	80.09	11	645.97
2. भारतीय स्टेट बैंक	8	553.30	713.02	138.86	15.65	17	74.31
3. सेन्ट्रल बैंक आफइण्डिया	7	268.95	222.12	82.59	5.89	10	54.33
4. पंजाब नेशलन बैंक	1	97.30	113.13	116.26	17.34	12	121.74
5. बैंक आफ बड़ौदा	1	55.00	55.22	100.40	3.03	16	14.66
6. बैंक आफ इण्डिया	1	51.50	143.06	277.40	–	–	–
7. छत्रसाल ग्रामीण बैंक	37	795.93	870.97	109.78	177.57	26	499.09
8. भूमि विकास बैंक	17	573.73	343.41	60.00	30.90	6	446.66
9. जिला सहकारी बैंक	4	2306.00	1692.59	73.29	6.77	12	47.61
योग	**103**	**6296.26**	**5749.57**	**91**	**337.24**	**15**	**1904.35**

स्रोत : वार्षिक ऋण योजना 2001–2002 *पृष्ठ संख्या (निल)*

1. **सर्वाधिक ऋण** देने के श्रेणी में जिला सहकारी बैंक, इलाहाबाद बैंक और उसके पश्चात् तीसरे स्थान पर छत्रसाल ग्रामीण बैंक आता है जो यह

दर्शाता है कि ऋण देनें में जनपद में शेष 6 बैंको से अधिक ऋण देकर कृषि विकास में पर्याप्त सहायता बैंक द्वारा दी गई है जबकि बैंक आफ इण्डिया ने इस ओर कोई विशेष प्रयास किये ही नहीं हैं।

2. ऋण योजना में लक्ष्य प्राप्ति मे भी छत्रसाल ग्रामीण बैंक ने सराहनीय भूमिका प्रदर्शित की है। इसमें भी तीन बैंको को छोड़कर जो कि व्यापारिक बैंक के श्रेणी के हैं तथा जिन तीनों बैंको ने जो ऋण दिये गये हैं वे तीनों के मिलाकर दिये गये ऋण से अधिक हैं। इसका तात्पर्य यह हूआ कि छत्रसाल ग्रामीण बैंक ने निःसंकोच जनपद की बहमुखी क्षेत्रों में विशेषकर कृषि क्षेत्र में अत्यन्त प्रशंसनीय भूमिका अदा की है। वर्ष 2001–2002 में कुल ऋण 608461 हजार रु0 से बढ़कर 814172 हजार रु0 हुये हैं। परिणामतः ऋण जमा अनुपात बढ़कर 36.77 प्रतिशत हुआ हैं।

3. ऋण वसूली में भी छत्रसाल ग्रामीण बैंक ने सबसे ज्यादा ऋण धनराशि 177.57 लाख रु0 वसूल की है जो अन्य आठ बैंकों की तुलना में कहीं अधिक सफल कही जायेगी। परन्तु एक तथ्य जिस पर बैंक को ध्यान देना अति आवश्यक लगता है, वह है कि बकाया धनराशि भी पर्याप्त है। इसको कम करने की चेष्टा इस प्रकार की जाय कि कृषि क्षेत्र में व सम्बन्धित कृषक को विशेष चोट न पहुँचे व प्रगति भी न रुके।

ऋण अपलेखन :-

बैंक द्वारा पुराने एवं वसूली योग्य न पाये जाने वाले ऋणों में 552.488 रु0 का अपलेखन किया गया। इसके अतिरिक्त वर्ष 2001–2002 के वित्तीय वर्ष में 13098 ऋण खातों में 55248 हजार रु0 का अपलेखन किया गया, जिनका समायोजन विभिन्न खातों से करना पड़ा। इस सम्बन्ध में निश्चित रुप से प्रारम्भिक सावधानी नहीं बरती गई। इस प्रकार के अपलेखन की प्रवृति

जनपद के विभिन्न बैंकों की प्रगति का तुलनात्मक – विश्लेषण

तालिका सं० -७६

वार्षिक कार्य योजना 31.3.200

(लाख रुपयों में)

क्र. सं.	बैंक का नाम	खेती			उद्योग			सेवाएं			योग		
		लक्ष्य	प्राप्ति	प्राप्ति प्रतिशत	लक्ष्य	प्राप्ति	प्राप्ति प्रतिशत	लक्ष्य	प्राप्ति	प्राप्ति प्रतिशत	लक्ष्य	प्राप्ति	प्राप्ति प्रतिशत
1.	इलाहाबाद बैंक	818.05	1121.96	137	162.10	27.98	17	439.75	109.15	25	1419.90	1259.09	89
2.	स्टेट बैंकआफ इण्डिया	350.79	543.00	155	28.30	23.72	83	68.75	91.51	133	447.84	658.23	146
3.	सैन्ट्रल बैंकआफ इण्डिय	99.55	96.32	97	26.60	14.55	54	119.30	45.95	38	245.45	156.82	63
4.	पंजाब नेशनल बैंक	19.08	25.00	131	35.50	72.00	202	25.80	45.00	174	80.38	142.00	176
5.	बैंक आफ बरौदा	13.60	23.32	171	0.70	2.36	337	35.00	45.14	128	49.30	70.82	143
6.	बैंक आफ इण्डिया	12.20	06.60	49	10.00	2.50	25	12.00	14.75	124	34.20	23.45	68
7.	छत्रसाल ग्रामीण बैंक	511.00	380.55	74	48.25	5.01	10	97.54	17.03	17	657.04	402.39	61
8.	.जिला सहकारी बैंक	2109.92	1492.11	41	—	—	—	6.08	—	—	2115.00	1492.11	70
9.	भूमि विकास बैंक	524.84	401.38	76	48.25	4.30	8	3.00	0.50	16	576.09	406.98	70
	योग	4458.03	4089.44	92	359.95	152.42	42	807.22	369.23	46	5025.20	4611.09	82

पर भी अंकुश लगाने की आवश्यकता है।

ऋण उधार :-

वर्ष 2001–2002 में दूसरी चौकानें वाली स्थिति उधार ऋण की रही है। इस वित्तीय वर्ष में पात्र ऋणों का 14.64 प्रतिशत अर्थात 98987 हजार रु0 पुनर्वित्त अवस्थित (आउटस्टेन्डिग) है और इसमें भी पिछले वर्ष की तुलना में वृद्धि ही हुई है जो वर्ष के सापेक्ष में 30.46 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाता है।

व्युत्पन्न व्यय :-

बैंक कार्यों पर पर्याप्त रकम व्यय की गई है जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होता है।

तालिका संख्या- ७७

ब्याज व्यय एवं कार्यगत व्यय (रूपयों में);

क्र. सं.	व्यय के स्रोत	व्यय	
		2000–2001	2001–2002
1.	जमा पर	86662	98826
2.	उधार पर	7097	6238
3.	कार्यगत व्यय	48308	68751
	योग	**142067**	**173815**

स्रोत : पूर्वोलेखित *पृश्ठ 32*

उपर्युक्त तालिका वर्षानुवर्ष बढ़ता हुआ व्यय दर्शाती है यद्यपि बैंक का व्यापार शाखाओंका विस्तार व कृषि विकासार्थ विनियोजित धनराशि व चतुर्दिक ग्रामीण विकास के परम लक्ष्य को प्राप्त करने की सतत चेष्टा अति सराहनीय ही कही जायेगी, फिर भी आवश्यकता इस बात की है कि बढ़ते हुये व्यय, विशेषकर कार्यगत व्यय में मित्तव्ययता बरतनी चाहिये जो बैंक व बैंक कर्मचारियों व लाभार्थियों के हित में अमूल्य योगदान होगी।

बैंक द्वारा जमा लागत में 6.27 प्रतिशत की कमी कर 6.07 प्रतिशत की गई एवं अग्रिम पर विगत वर्ष 2000–2001 उत्पादकता दर 8.97

प्रतिशत से बढ़कर 100.80 प्रतिशत हो गई जो एक उल्लेखनीय प्रगति की सूचक है। अन्ततः बैंक द्वारा 28176 हजार रु0 शुद्ध लाभ अर्जित किया जो पिछले वर्ष से 23666 हजार रु0 से अधिक है। परिणामतः सकल हानि उत्तरोत्तर घट रही है। यह 2001—2002 में 72402 हजार रु0 से घटकर 44229 हजार रु0 रह गयी। बैंक इसे यथा शीघ्र शून्य करने के प्रयास में है।

उपरोक्त तालिका में जनपद में कार्यरत विभिन्न बैंकों की जनपद के कृषि, उद्योग तथा सेवाओं के विकास की जो तुलनात्मक स्थिति उभरती है उसे उत्साहवर्धक कहा जा रकता है। तुलानार्थ यहाँ 1. स्टेट बैंक आफ इण्डिया, जिसे अन्य राष्ट्रीयकृत वाणिज्य बैंको में प्रमुख कहा जा सकता है, 2. इलाहाबाद बैंक जो जनपद का अग्रणी बैंक है, 3. जालौन जिला सहकारी बैंक और 4. भूमि विकास बैंक जो दीर्घकालीन विनियोजन करता है के माध्यम विभिन्न क्षेत्रों के एक तुलनात्मक विवेचन व विश्लेषण करने का प्रयास है।

जैसा कि तालिका से स्पष्ट है कि कृषि क्षेत्र में सर्वाधिक विनियोजन 2108 लाख रु0 शोध क्षेत्र के अन्तर्गत जालौन जिला सहकारी बैंक उरई द्वारा किया गया है। उसके पश्चात् इलाहाबाद बैंक तथा तीसरे स्थान पर कृषि क्षेत्र में विनियोजन पुनः जालौन जिला सहकारी बैंक व 4 छत्रसाल ग्रामीण बैंक द्वारा ही किया गया है। यद्यपि जालौन जिला सहकारी बैंक द्वारा उद्योग क्षेत्र में कोई भी धनराशि नहीं लगाई गई है, फिर भी यह विनियोजन जनपद के तीन बैंको से अधिक है और तत्पश्चात् सेवाओं पर मात्र 6.08 लाख रु0 की राशि का विनियोजन है। स्पष्ट है कि बैंक ने सर्वाधिक ध्यान कृषि क्षेत्र के विकास पर दिया है। यदि तीनों क्षेत्रों की समग्र धनराशियों को देखें तो जालौन जिला सहकारी बैंक ने ही सर्वाधिक विनियोजित किया है तथा लक्ष्य प्राप्ति में भी बैंक सबसे आगे है। सर्वांगीण लक्ष्य प्राप्ति का प्रतिशत भी निश्चय ही संतोष जनक है क्यों कि जब विनियोजन अधिक है तो बाधांए भी अधिक उत्पन्न होती हैं।

अस्तु 70 प्रतिशत लक्ष्य प्राप्ति उचित है, विशेषकर जब हम यह देखते हैं कि पूर्ण जनपद की लक्ष्य प्राप्ति मात्र 82 प्रतिशत ही है।

ग्रीन कार्ड/क्रेडिट कार्ड योजना

वर्ष 2001–2002 की वार्षिक ऋण योजना भारतीय जिरर्व बैंक व नाबार्ड के दिशा निर्देशों को ध्यान रखकर 81 करोड़ 65 लाख 10 हजार रु0 की जनपद के लिये इस प्रकार तैयार की गई है कि जनपद के अधिक से अधिक लाभार्थी इन ऋणों का समुचित उपयोग करके जनपद में हरियाणा पंजाब की भांति आधुनिक विधियाँ अपना कर सिंचाई के साधन बढ़ाकर, ट्रेक्टर हार्वेस्टर तथा उन्नत कृषि यन्त्र व उपकरणों का क्रय करके उनका उपयुक्त प्रयोग कर जनपद में हरितक्रन्ति को सफल बनाने का सार्थक प्रयास करें। इसी सन्दर्भ में जनपद के अग्रणी इलाहाबाद बैंक द्वारा ग्रीन कार्ड योजना दिनांक 17.3.99 को आरम्भ की थी। इसी के साथ–साथ जनपद के सभी बैंको ने क्रेडिट कार्ड योजना प्रारम्भ की थी जिसका तुलनात्मक लेखा जोखा निम्नांकित है।

तालिका संख्या - ७८
किसान क्रेडिट कार्ड/ग्रीन कार्ड योजना 2000–2001
प्रगति यथा 31.3.200 1

क्र.सं.	बैंक का नाम	लक्ष्य	प्राप्ति	
		भौतिक	भौतिक	धनराशि (रु0)
1.	इलाहाबाद बैंक	2500	2823	1244.25
2.	भारतीय स्टेट बैंक	1000	1180	230.98
3.	सेन्ट्रल बैंक आफइण्डिया	800	109	30.51
4.	पंजाब नेशलन बैंक	230	12	8.20
5.	बैंक आफ बड़ौदा	204	41	7.20
6.	बैंक आफ इण्डिया	200	–	–
7.	छत्रसाल ग्रामीण बैंक	3700	2022	747.85
8.	जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 उरई	11000	12500	731.88
	कुलयोग	**19634**	**18687**	**3000.87**

स्रोत : पूर्वोलिखित *पृष्ठ संख्या (निल)*

उपरोक्त तालिका यह प्रदर्शित करती है कि जालौन जिला सहकारी बैंक, तत्पश्चात् छत्रसाल ग्रामीण बैंक तथा जनपद के अग्रणी इलाहाबाद बैंक द्वारा क्रमशः 11000, 3700 व 2500, लाख रु0 की धनराशि जनपद के ग्रामीण व कृषि व ग्रामोद्योगों के विकास में सहायक हुई होगी।

परन्तु एक हल्की सी आशंका से ग्रस्त मन इस ओर संकेत करने से रोक नहीं पा रहा है कि यह सम्पूर्ण धनराशि जिस परम उद्देशार्थ ली गई हो उसी में लगी हो और सम्पूर्ण राशि का लाभ ग्रामीणों या कृषकों को मिला हो । ऐसा इसलिये क्योंकि जो अधिकारी या कर्मचारी भृष्टाचार में आकंठ डुबे हैं जैसा कि ओरियटल बैंक आफ कामर्स खुर्जा के मेहरबान पर बीती जहां क्रेडिट कार्ड पर 35000/ का ऋण देने के लिये 4200 रु0 अर्थात् 12 प्रतिशत राशि पूर्व घूस के रुप में शाखा प्रबन्धक व फील्ड आफीसर को देनी पड़ रही थी जो रंगे हाथों पकड़े गये थे। (दैनिक लागरण 13 जनवरी 2003 पृष्ठ 11)

राज्य सहकारी कृषि एवं ग्राम विकास बैंक

देश के सहकारी ढांचे के अन्तर्गत दीर्घकालीन एवं मध्यकालीन साख प्रदान करने वाली इस अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था को इसके प्रारम्भ से अब तक कई नामों से जाना जाता रहा है। इस राज्यस्तरीय बैंक को प्रारम्भ में 'भूमि बन्धक बैंक' बाद में 'भूमि विकास बैंक' और अब वर्तमान में 'कृषि एवं ग्राम विकास बैंक' का नाम दिया गया है। उत्तर प्रदेश में यह "उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी कृषि एवं ग्राम्य विकास बैंक" (वर्तमान में) के नाम से कार्यरत है। इस की स्थापना वर्ष 1959 में सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत निबन्धित एक शीर्ष संस्था के रुप में हुई थी। बैंक का व्यवसाय एक पृथक अधिनियम 'उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम विकास अधिनियम 1964' तथा उसके आधीन बनाये गये नियमों/उपविधियों के अनुसार संचालित किया जाता है। बैंक द्वारा प्रदेश के कृषकों को अपनी 335 शाखाओं के माध्यम से ऋण प्रदान किया जाता है। इन शाखाओं में 262 शाखायें तहसील स्तर पर हैं। इन शाखाओं को नियंत्रित करने व पर्यवेक्षण करने हेतु 18 क्षेत्रीय कार्यशालाओं में क्षेत्रीय प्रबन्धक नियुक्त किये गये हैं। प्रारम्भ से ही 1959 में इसनें अपनी 30 शाखाओं के माध्यम से उपज बढ़ाने हेतु दीर्घकालीन ऋण देना प्रारम्भ कर दिया था। 1965 में उत्तर प्रदेश शासन ने 17 जनपदों में तकाबी ऋण वितरण का कार्य बैंक को सौपा। बैंक द्वारा 1968 से सभी जनपदों में लधु सिंचाई कार्यों हेतु एवं समस्त ग्रामीण कृषि विकासार्थ ऋण वितरित किया जा रहा है। बैंक के माध्यम से अकृषि क्षेत्र में लधु उद्योगों की स्थापनार्थ ऋण वितरण के साथ-साथ ग्रामीण आवास समस्या हल करने के लिये ग्रामीण आवास योजनान्तर्गत ऋण की व्यवस्था की जा रही है।

ऋण वितरण के उद्देश्य

बैंक द्वारा निम्न उद्देश्यों के लिये ऋण दिये किये जा रहे हैं –

1. लघु सिंचाई योजना –: कुआँ, बोरिंग, रहट, डीजल, पम्पसेट, विद्युत नलकूप, सिंचाई–नाली, बंधी, स्प्रिंकलर, ड्रिप सिंचाई आदि के लिये।
2. कृषि यन्त्रीकरण–: ट्रेक्टर, पावर ट्रिलर, पावर थ्रेशर एवं टेक्टर की मरम्मत कम्बाइन हारवेस्टर व डनलप कार्ट के लिये।
3. विविधीकरण योजनायें –:

   (अ) डेयरी विकास (ब) पशुपालन (स) मुर्गीपालन

   (द) मत्स्य पालन (ब) बायोगैस व बागवानी आदि के लिये।
4. औद्यानिक एवं वनीकरण –: फलोद्यान विकास, नर्सरी विकास तथा ऊसर भूमि सुधार हेतु।
5. अकृषि क्षेत्रान्तर्गत –: लकड़ी का सामान, तेल–घानी, लघु एवं कुटीर उघोग हेतु, गन्ना कोल्हू, खाण्डसारी, कास्ट उधोग, बेकरी, मधुमक्खी पालन, लोहारगीरी, दरी कारपेट बुनाई, पत्थर की नक्काशी, उर्वरक एवं बीज की दुकान करने हेतु।
6. यही नही ग्रामीण नर्सिंगहोम, पशु चिकित्सालय, पी. सी. ओ., फेक्स मशीन लगवाना, फोटे कापियर्स मशीन व इसके अतिरिक्त स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरुप विभिन्न उद्योग लगाने आदि के लिये ऋण प्रदान किये जाते हैं।

ऋण वितरण

वर्ष 2001–2002 में मुख्यतः लघु सिंचाई हेतु जो ऋण वितरित किया गया वह सम्पूर्ण ऋण राशि का 50.89 प्रतिशत था, विगत 43 वर्षों में 43.13 लाख लाभार्थियों को 5202.85 करोड़ रु0 ऋण वितरित किया गया। वर्ष 2001–02 में बैंक का 630.00 करोड़ रु0 वितरित करने का लक्ष्य था जबकि

लक्ष्य से अधिक 680.15 करोड़ रु0 का ऋण वितरित किया गया। वर्ष 2002—03 में 725.00 करोड़ रु0 वितरित करने का लक्ष्य रक्खा गया है, जिसमें से 74.47 करोड़ रु0 का ऋण 31.5.2002 तक वितरित किया जा चुका था।

लघु सिंचाई के अतिरिक्त बैंक द्वारा कृषि यन्त्रीकरण (टेक्टर पावरथ्रेसर आदि) पशुपालन, मत्स्य पालन, औद्यानिक विकास, अकृषि क्षेत्र तथा ग्रामीण आवास हेतु विगत तीन वर्षों में उद्देश्यवार ऋण वितरित किया जा रहा है।

ऋण भुगतान

कृषक की भूमि का बन्धक निष्पादित करने के लिये कृषक से कोई शुल्क नहीं लिया जाता है, बल्कि बैंक यह स्वयं वहन करता है। निष्पादन के पश्चात् बैंक अपने ही खर्च पर भूमि का भार—मुक्ति प्रमाणपत्र भी प्राप्त करता है। इसके पश्चात् कृषक से माँग प्रपत्र एवं रसीद प्राप्त कर उसे प्रथम किश्त प्रदान की जाती है। प्रथम किश्त का सदुपयोगिता प्रमाणपत्र प्राप्त होने के पश्चात् उसे द्वितीय किश्त का भुगतान किया जाता है।

दुर्बल व्यक्ति को विशेष सुविधायें

1. लघु एवं सीमान्त कृषकों से 10 प्रतिशत के स्थान पर 5 प्रतिशत अंशदान लिया जाता है।
2. प्रशासनिक शुल्क 1 रु0 प्रति सैकड़ा के स्थान पर 50 पैसे प्रति सैकड़ा लिया जाता है, जिसकी अधिकतम सीमा 250/— रु0 मात्र होती है।
3. लघु व सीमान्त कृषकों की प्रतिभूति कम होने की दशा में संयुक्त ऋण की भी सुविधा प्रदान की जाती है।
4. शासन की योजनाओं में प्राप्त अनुदान कृषकों के खातों में समायोजित कर दिया जाता है।

ब्याज दर -:

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा समय समय पर निर्धारित ब्याजदर के अनुसार ऋण पर ब्याज लिया जाता है। वर्तमान दरें निम्नवत् हैं –:

(अ) 2500 रु0 तक 13 प्रतिशत

(ब) 2.00 रु0 लाख रु0 तक 14 प्रतिशत

(स) 2 लाख रु0 से ऊपर 16 प्रतिशत

समय पर ऋण चुकता करने पर ब्याज में 1.0 प्रतिशत की छूट प्रदान की जाती है।

अशंदान -:

लघु/सीमान्त कृषक 5 प्रतिशत व सामान्य कृषक 10 प्रतिशत।

ऋण वसूली -:

वितरित ऋणों की वसूली की प्रक्रिया अत्यन्त ही सरल एवं सुविधाजनक बनाई गई है, जिससे कृषकों को कोई कठिनाई न हो। ऋण की प्रथम किश्त फसल आने के बाद ही लगाई जाती है। वसूली प्रक्रिया निम्नवत् है –:

खरीफ की देय तिथि पहली अक्टूबर व रबी की देय तिथि पहली अप्रैल है। देय तिथि से एक सप्ताह तक कोई अतिरिक्त ब्याज नहीं लिया जाता है। इस बीच फील्ड आफिसर द्वारा भी व्यक्तिगत सम्पर्क कर कृषक को देय किश्त की जानकारी दी जाती है।

ऋण अदायगी के लिये समान किश्तें बनायी जाती हैं तथा लाभार्थी को मासिक अवधि में तीन साधारण नोटिसों के द्वारा धनराशि जमा करने के लिये सूचित किया जाता है।

गत वर्ष 2000–01 में बैंक द्वारा 86.20 प्रतिशत की वसूली की गयी, जबकि वर्ष 2001–02 में 57.79 प्रतिशत की वसूली की।

तालिका संख्या - ७९

वसूली प्रगति विवरण (करोड़ रु0 में)

वर्ष	माँग	वसूली की धनराशि	वसूली प्रतिशत
1997–98	390.58	316.89	81.13 प्रतिशत
1998–99	420.69	354.00	82.19 प्रतिशत
1999–2000	514.74	433.99	84.31 प्रतिशत
2000–01	648.68	559.16	86.20 प्रतिशत
2001–02	624.32	360.82	57.79 प्रतिशत

स्रोत –: सहकारिता विशेषांक पृष्ठ 10

उपर्युक्त तालिका यह दर्शाती है कि पिछले चार वित्तीय वर्षों में यथा 1997–98 से 2000–01 तक वसूली प्रगति उत्तरोत्तर अधिक हुई तथा उसे अतिसंतोषजनक कहा जा सकता है जबकि वर्ष 2001–02 में वसूली धनराशि का प्रतिशत बहुत नीचे आ गया जो मात्र 57.79 प्रतिशत ही था। कारण पूछने पर ज्ञात हुआ कि वर्षा कम होने के कारण जनपद को सूखा क्षेत्र घोषित कर दिया गया था, अस्तु वसूली स्थगित करनी पड़ी थी।

वित्तीय संसाधन

वित्तीय संसाधन जुटाने के लिये बैंक द्वारा ऋण पत्र निर्गमित किये जाते हैं। निर्गमित ऋणपत्रों में नाबार्ड के विनियोजन का अंश 92 प्रतिशत होता है। शेष धनराशि राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा विनियोजित की जाती है। वर्ष 2001–02 में बैंक द्वारा 729.22 करोड़ रु0 के ऋण पत्र निर्गमित किये गये, ज़बकि इससे पूर्व 550.00 करोड़ रु0 के ऋण पत्र निर्गमित किये गये थे। बैंक द्वारा नाबार्ड से अन्तरिम वित्त तथा उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी बैंक से

अधिविकर्ष प्राप्त कर ऋण वितरित किया गया। इस समय बैंक को दोनों संस्थाओं से 25–25 करोड़ की सीमां स्वीकृत है। 31–3–2001 तक बैंक के निजी संसाधन 283.99 करोड़ रु0 थे। बैंक उत्तरोत्तर लाभ की स्थिति में ही रहा है। 31–3–2001 को बैंक शुद्ध लाभ 17.69 करोड़ रु0 है।

बैंक प्रबन्ध

सहकारी अधिनियम की धारा 31 (ए) के अन्तर्गत शासन द्वारा निदेशक की नियुक्ति की जाती है। प्रबन्धनिदेशक की सहातार्थ बैंक के विभिन्न संवर्गो में कुल 4203 पद स्वीकृत हैं जबकि वर्तमान में मात्र 3637 अधिकारी व कर्मचारी नियुक्त हैं। बैंक द्वारा 5.00 लाख तक के ऋण शाखा प्रबन्धकों द्वारा स्वीकृत किये जाते हैं। बैंक के शाखा प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों के लिये नाबार्ड की सहायता से लखनऊ में एक प्रशिक्षण केन्द्र भी संचालित किया जा रहा है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष तो निकाला जा सकता है कि बैंक ने अनेक अनछुये क्षेत्रों में पदार्पण कर कृषक व कृषि विकास की प्रगति में प्रंशसनीय कार्य किया है। यद्यपि विशेष परिस्थितियोंवश वर्ष 2001–2002 में वसूली कम हुई है पर आशा की जा सकती है कि आने वाले वर्षों में यह कमी पूरी कर ली जायेगी। इस प्रकार जनपद में कृषि विकास की जो प्रबल सम्भावनायें बढ़ी हैं, व अनेक ग्रामीणों को विशेषकर शिल्पकारों व परम्परागत कारीगरों को जो लाभ हुआ है। उससे ग्रामीण जीवन को एक नई दिशा व नई दशा प्राप्त हुई है। फिर भी जनपद की बहुत सी कृषि योग्य भूमि उत्पादकता की वृद्धि से वंचित है व परती एवं बेकार पड़ी है। इसे कृषि योग्य बनाने के लिये सिंचाई की सुविधाओं की उपलब्धता बढ़ाने हेतु बैंक को विशेष ध्यान देना चाहिये, उर्वरक वितरण समय पर हो सके तथा बैंक के ऋणों का लाभ

लघु, सीमान्त व खतहर मजदूरों को अधिक से अधिक मिल सके तभी बैंक की सफलता को वास्तविक सफलता का प्रतीक व प्रमाण माना जा सकेगा।

स्वतंत्रता के बाद देश में योजनात्मक विकास की प्रक्रिया स्वीकार की गयी। इसका उद्देश्य त्वरित विकास एवं गोबरीय व्यवस्था के स्थान पर अणुवीय व्यवस्था में देश की अर्थव्यवस्था को लाना रहा है। दसवीं योजना में जी. डी. पी. की 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य भी इसी की एक कड़ी है।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये 90 वीं भारतीय विज्ञान कांग्रेस में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेई ने पूर्व प्रधानमंत्री स्व0 श्री लाल बहादुर शास्त्री द्वारा दिये नारे 'जय जवान – जय किसान' में 'जय विज्ञान' को जोड़कर त्वरित विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। राष्ट्रपति वैज्ञानिक डा0 अब्दुल कलाम ने भी अपने शोधपत्र 'विजन फार द ग्लोबल स्प्रेस कम्युनिटी' के माध्यम से भारत को 2020 तक एक पूर्ण विकसित देश बनाने का संकल्प लिया है। इसी उद्देश्य हेतु राष्ट्रीय स्तर पर बृहद पैमाने पर अगणित धनराशि के विनियोजन का प्रावधान किया जा रहा है। यह धनराशि प्रदेशों या राज्यों को उनके आकार के अनुसार आवँटित की जाती है। प्रदेश को आवँटित धनराशि जनपद के माध्यम से नगरों व कस्बों में निगमों या नगर पालिकाओं के द्वारा, गावों में पंचायत के माध्यम से चतुर्दिक विकासार्थ लगाई जाती है। कृषि विकास के बिना देश के विकास की कल्पना बेमानी है। विकास के इसी उद्देश्य के लिये जनपद में जिला सहकारी बैंक या केन्द्रीय सहकारी बैंक भी कृषि एवं गैर कृषि प्रयोजनों के लिये विभिन्न प्रकार की ऋण सुविधायें स्वयं तथा अपनी 19 ग्रामीण बैंक शाखाओं द्वारा उपलब्ध करा रहा है। इस प्रकार के ऋण जिला सहकारी बैकों द्वारा सीधे प्रारम्भिक कृषि ऋण सहकारी समितियों को (अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋण) वितरित किये जा रहे हैं। यही नहीं

व्यक्ति/लाभार्थी एक समय में कई आर्थिक गतिविधियों का संचालन कर सकता है। यदि वह एक बार मे समुचित पात्रता प्राप्त कर लेता है तो उसे 2.00 लाख रु0 तक का ऋण उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुये प्रदान किया जा सकता है। इस प्रकार 'कम्पोजिट' योजनान्तर्गत उसे सरलता से एक ही खिड़की पर रोजगारोन्मुखी योजनाओं के लिये वित्तीय सहायता प्राप्त हो जाती है।

तुलनात्मक दृष्टि से यदि जालौन जिला सहकारी बैंक उरई की प्रगति का मूल्याकंन करें तो जैसा कि पूर्व पृष्ठों से स्पष्ट है कि जिला केन्द्रीय बैंक हर स्तर पर कृषि और ग्रामीण विकास के लिये निरन्तर अग्रसर रहा है जैसा कि निम्नतालिका से भी स्पष्ट होता है –

तालिका संख्या - ८०

जनपद में जिला सहकारी बैंक एवं

सहकारी कृषि एवं ग्राम विकास बैंक की तुलनात्मक प्रगति

क्र.	मद	1997–98	1998–99	1999–2000
जिला सहकारी बैंक				
1.	शाखायें	18	18	18/19
2.	सदस्यता	314	314	320
3.	हिस्सा पूंजी (000 रु0)	583200	583561	38215
4.	कार्यशीलपूंजी (000 रु0)	60860	69526	953101
5.	ऋण वितरण (000 रु0)			
	अल्पकालीन	212449	214482	264021
	मध्यकालीन	26351	31269	26714
सहकारी कृषि एवं ग्राम विकास बैंक				
1.	शाखायें	4	4	4
2.	सदस्यता	15234	16625	16625
3.	हिस्सा पूंजी (000 रु0)	11095	11177	17989
4.	कार्यशीलपूंजी(000 रु0)	982	1268	1647
5.	ऋण वितरण (000 रु0)	20379	20747	54957

स्रोत –: सांख्यिकीय पत्रिका (जिला जालौन) वर्ष 2000 पृष्ठ सं 85

तुलनात्मक विवेचन करने से निम्नाँकित तथ्य उजागर होते हैं –:

1. शाखायें लगभग समान रहीं, परन्तु जिला सहकारी बैंक की 2002 में शाखयें बढ़कर 19 हो गईं।
2. सदस्यता में जिला सहकारी बैंक में प्रथम दो वर्षों में यथा स्थिति रही परन्तु 1999–2000 में वृद्धि हुयी जबकि सहकारी कृषि एवं ग्राम विकास बैंक वृद्धि तो प्रदर्शित करती है परन्तु बाद के दो वर्षों में (1998–99 व 1999–2000) में स्थिरता की स्थिति रही।
3. हिस्सा पूंजी में जिला सहकारी बैंक में आशा से अधिक गिरावट रही परन्तु सहकारी कृषि एवं ग्राम विकास बैंक में हिस्सा पूंजी में वृद्धि हुयी है, जबकि सदस्यता वृद्धि के साथ–साथ हिस्सा पूंजी भी बढ़ना चाहिये थी। इसका एक मात्र कारण जो ज्ञात हो सका, वह था बड़े हिस्सेदारों ने अपनी सदस्यता राशि को मन्तव्य पूर्ण होंने पर भावी हानि या अनिश्चितता के डर से निकाल लिया जबकि जो नये सदस्य बने उनका हिस्सा पूंजी अपेक्षाकृत कम रहा।
4. कार्यशील पूंजी तो दोनों बैकों द्वारा उत्तरोत्तर बढ़ोतरी दर्शाती है जो वस्तुतः सदस्यों की विशेष रुचि लेने को प्रदर्शित करती है।
5. ऋण वितरण में जिला सहकारी बैंक के अल्पकालीन ऋणों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है जिससे निश्चित रुप से कृषि विकास में सहयता मिली है। मध्यकालीन ऋण में वसूली की कठिनाई सामने आई जिससे वर्ष 1999–2000 में मध्यकालीन ऋण बहुत सोच समझकर व विश्वसनीय लाभार्थियों को ही प्रदान किया गया तथा पिछले शेष की वसूली का अभियान तेज किया गया। सहकारी कृषि एवं ग्राम विकास बैंक ने वर्षानुवर्ष दोनों प्रकार के ऋणों का समायोजन करते हुये वृद्धि की है जो वास्तव में इसकी कर्तव्य परायणता व निष्ठा का प्रतीक कहा जा सकता है।

अष्ठम अध्याय

जालौन जिला सहकारी लि. उरई द्वारा प्रदत्त साख की कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ

सहकारिता के विभिन्न क्षेत्रों की उपलब्धियाँ बहुत ही अस्त–व्यस्त स्थिति को प्रदर्शित करती हैं, जिनमें प्रधानता प्राथमिकता सहकारी ऋण समितियों व उससे सीधे व निकटतम जुड़े केन्द्रीय सहकारी बैंकों की है। यह तथ्य प्रकट करता है कि सम्पूर्ण सहकारी आन्दोलन, जिसकी नींव के दो महत्वपूर्ण पत्थर प्राथमिक सहकारी ऋण समितियां व केन्द्रीय सहकारी बैंक ही हैं और जिन पर ग्रामीण एवं कृषि विकास पूर्णतया निर्भर हैं, अनेकानेक कठिनाईयों व बाधाओं से आज भी ग्रसित हैं। इन सैद्धान्तिक, व्यावहारिक तथा वास्तविक कठिनाइयों एवं बाधाओं को समाप्त करने पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना दिया जाना चाहिए था। उच्चस्तरीय सहयोगी सहकारी ऋण समितियों से जुड़ी। संस्थायें यथा शीर्ष सहकारी या राज्य सहकारी बैंक व राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) आदि ने अपनी आर्थिक स्थिति तो सुदृढ़ कर ली परन्तु केन्द्रीय सहकारी बैंक व प्राथमिक समितियाँ आज भी ढेर सारे बोझ तले दबी हुयी हैं। परिणामतः जनपद जालौन का केन्द्रीय सहकारी बैंक भी अनेक दुष्परिणामों से बोझिल सा हो चला है। जैसा कि विदित है कि राज्य के लगभग 30 केन्द्रीय सहकारी बैंक ऐसे हैं जिनकी वित्तीय स्थिति अति असंतोषजनक है और रिर्जव बैंक आफ इण्डिया की नोटिस की तलवार उनके ऊपर लटक रही है। एक या दो ऐसे भी केन्द्रीय सहकारी बैंक हैं जो बन्द कर दिये गये हैं। निश्चय ही ये सभी केन्द्रीय सहकारी बैंक अनेक बाधाओं से ग्रसित हैं। इन बाधाओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. सैद्धान्तिक बाधायें 2. व्यवहारिक बाधायें तथा 3. वास्तविक बाधायें

इनमें से सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक कठिनाइयों व बाधाओं का उल्लेख करने से पूर्व मैं इनता अवश्य कहना चाहूंगा कि जहां तक सैद्धान्तिक कठिनाइयों या बाधाओं का प्रश्न है, यद्यपि इसकी पृष्ठभूमि में ग्रामीण व कृषकों की निरक्षरता, निर्धनता एवं किसी हद तक उनकी कपटता, निष्क्रियता व भाग्य–वादिता का बहुत बड़ा हाथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से रहा है, परन्तु सैद्धान्तिक कठिनाइयों व बाधाओं की उत्पति में सहकारी कर्मचरी एवं अधिकारी अधिक उत्तरदायी हैं, और उत्तरदायी है उनकी वह मानसिकता, जिसमें ग्रामीण जीर्णोद्धार के बीज का अभी अंकुरण तक नही हुआ है, वरना सहकारिता तो सहअस्तित्व और सहयोग का प्रतीक है, जिसमें निष्कपट व निष्छल लक्ष्य होना चाहिये। दूसरी ओर जहां तक व्यवहारिक पक्ष की बात है तो, मुख्य रुप से इसका दोषी मैं लाभार्थी व सहकारी समितियों के सदस्यों को मानता हूँ। यद्यपि इस प्रकार की कृत्रिम बाधाओं को वास्तविक बाधाओं में ढ़ाल देने में बैंक के कर्मचारी व अधिकारी पीछे नहीं है क्योंकि वे पढ़े लिखे हैं अपने कर्तव्यों और दायित्वों को भली–भांति समझते हैं, और 'सर्वजन हिताय' की जगह 'स्वजन हिताय' का मूल–मंत्र ही उनके क्रिया कलापों का आधार रहा है। आज यह एक स्थापित सत्य है कि देश में भृष्टाचार, बेईमानी, धोखाधड़ी और घोटालों की जड़ें इतनी गहराई से व्याप्त हैं कि योजनाएँ तो अच्छी से अच्छी बनाई जाती हैं और बनाई जाती रहेगीं लेकिन उनके क्रियान्वन का भगवान ही मालिक है। वे व्यवहार के धरातल पर आने से पहले ही चारों खाने चित्त हो जाती हैं। एक नहीं अनेक बार यह स्वीकारा गया है कि यदि 100 रुपये किसी योजना में लगाये जाने हैं तो नौकरशाही के विशाक्त घेरे से निकलते–निकलते लाभार्थी तक मात्र 15 रुपये ही पहुंच पाते हैं। वस्तृतः ये सभी हैं मूलभूत कठिनाईयाँ व बाधाएं जिनका न तो किताबों में उल्लेख किया जाता है और न

ही विभाग, नेतागणों व सम्बन्धित मंत्री द्वारा। सिर्फ कहीं–कहीं लीपा पोती कर दी जाती है और वही धिसेपिटे तर्क घटाबढ़ा कर नई द्विअर्थी शब्दावली में पिरोकर इस सफाई से प्रस्तुत कर दिये जाते हैं जिससे न साँप मरे और न लाठी टूटे की कहावत का यथार्थ में चरितार्थ हो जाती है। इस अन्तहीन प्रसंग को आगे न बढ़ा अपनी सीमाओं का ध्यान रख अब निम्नाँकित पंक्तियों में सर्वप्रथम सैद्धानितक कठिनाइयों या बाधाओं का विस्तार करना ही श्रेयस्कर रहेगा।

सैद्धान्तिक कठिनाईयाँ, बाधायें एवं दोष

१. सहकारी आन्दोलन में नेतृत्व क्षमता की कमी

हमारे देश में जनपदों में सहकारी आन्दोलन को विकसित करने तथा आन्दोलन को सुदृढ़ता प्रदान करने का दायित्व केन्द्रीय सहकारी बैकों को सौंपा गया है, और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये 'एक जिले में एक ही केन्द्रीय सहकारी बैक' की नीति अपनायी गई है। यद्यपि इस दिशा में जनपद जालौंन तो व्यावहारिक एवं फलदायी नीति का अनुसरण कर रहा है, परन्तु बहुत से जनपदों में कई केन्द्रीय सहकारी बैंक ऐसे हैं जो वित्तीय साधनों के आभाव में एक सुदृढ़ आर्थिक इकाई के रुप में कार्य करने असफल रहे हैं। आज भी प्रदेश स्तर पर लगभग 30 केन्द्रीय सहकारी बैंक कमजोर आर्थिक स्थिति में हैं। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्रीय सहकारी बैंकों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये ठोस कदम उठाये जाये तभी सहकारी आन्दोलन को सही दशा एवं उपयुक्त नेतृत्व प्राप्त हो सकेगा।

२. ऋण सीमा व अंशपूंजी के निर्धारित अनुपात के पारस्परिक सम्बन्ध की उपेक्षा

केन्द्रीय बैंकों ने यह सिद्धान्त स्वीकार किया है कि प्राथमिक सहकारी समितियों को दिये जाने वाले ऋण की मात्रा सदस्यों द्वारा खरीदे गये अंशों के अनुपात में निश्चित की जायेगी। इस सिद्धान्त का उद्देश्य अंश पूंजी

में वृद्धि करना था। लेकिन् देखा यह गया है कि केन्द्रीय बैंकों ने इस सिद्धान्त की उपेक्षा करते हुये निश्चित सीमा से अधिक ऋण स्वीकार किये हैं, जो हर दृष्टिकोण से घातक सिद्ध हुये हैं।

३. फसल-ऋण लागू न करना

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने केन्द्रीय सहकारी बैकों को फसल ऋण प्रणाली के आधार पर आवश्यक परिवर्तन व संशोधन करने का सुझाव दिया था। इससे पूर्व अधिकांश ऋण देने के लिये भूसम्पत्ति का मूल्य ही ऋण देने का आधार माना जाता था, जो अधिकांश कृषक पूर्णतया अनुचित मानते थे। आज भी बहुत से केन्द्रीय बैंकों ने फसल–ऋण प्रणाली नीति की पूर्णतया उपेक्षा कर दी है। उनकी ऋण–नीति में आज भी निम्नाँकित दोष व्याप्त हैं –:

1. ऋण के प्रभावकारी प्रयोग के निरीक्षण की पर्याप्त व्यवस्था का अभाव।
2. किश्तों व वस्तुओं के रुप में ऋण देने की व्यवस्था का न होना।
3. फसल बोने तथा काटने के समय से ऋण के प्रदान करने के समय का सम्बन्धित न होना तथा वर्ष भर ऋण देने की व्यवस्था होना।
4. साख तथा विपणन में पारस्परिक समन्वय का अभाव।

फलस्वरुप ऋणों का दुरुपयोग हुआ है और उनके पुनर्भुगतान में कठिनाई उत्पन्न हुयी है। यही कारण है कि शेष ऋणों व अवधिपार ऋणों की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है।

४. अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋणों में अन्तर न करना

ऐसा लगता है कि ऋण देने के सम्बन्ध में अति लचीला दृष्टिकोण अपनाना बैकों ने अपनी नियति बना ली है। अस्तु वे अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋण में कोई अन्तर न करते हुये समान ब्याज पर ही मध्यकालीन ऋण भी दे देते हैं। इस प्रकार विशेष व्यक्तियों को अल्पकालीन ऋण के स्थान पर मध्यकालीन ऋण देकर अधिक ऋण दिये जाते हैं।

५. ब्याज की दर अधिक होना

कुछ केन्द्रीय बैंक अपनी ब्याज की दर बहुत ऊँची रखते हैं। विभिन्न बैंकों में यह अन्तर लगभग 3 प्रतिशत तक होता है। वस्तुतः ये बैंक एक प्रकार से वाणिज्य बैंकों के समान नीति अपनाते हैं व यह भूल जाते हैं कि उनकी स्थापना का मूल उद्देश्य वाणिज्य बैंकों की भाँति लाभार्जन न होकर निर्धन व जरुरतमन्द कृषकों के स्तर को बेहतर करना तथा कृषि विकास में सहायता करता होता है। ये बैंक ऐसा इसलिये भी करते हैं क्योंकि इनके ठाठ–बाट तथा प्रशासनिक खर्चे उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहें हैं, साथ ही प्रबन्धकीय अकुशलता भी इसके लिये किसी हद तक उत्तरदायी है। इन अपव्ययों को पूरा करने के लिये वे ऊँची ब्याज दर रखते हैं और भूल जाते हैं कि सहकारिता का मूलमंत्र सस्ती साख सुविधायें उपलब्ध कराना है।

६. दोषपूर्ण विनियोग नीति

केन्द्रीय बैकों ने ऐसे क्षेत्रों में जहाँ इन्हें विनियोजन नहीं करना चाहिये था, लाभ कमाने के लिये अधिकाधिक विनियोजन किया है। वास्तविकता यह है कि बैंक के प्रबन्धकों व निदेशकों को मात्र लाभ से मतलब रहता है इसीलिये ये व्यापारिक बैकों में, नये उद्यमों में, सरकारी प्रतिभूतियों में या अन्य संस्थाओं की अंशपूंजी में अपनी धनराशि विनियोजित कर देते हैं और विशेष जाँच पड़ताल भी नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि कृषि व ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनों के हितों के लिये इनके पास धन की कमी हो जाती है।

७. केन्द्रीय सहकारी बैंकों तथा प्राथमिक सहकारी समितियों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध का अभाव

केन्द्रीय बैंक अधिकांशतः शहरों या बड़े कस्बों में ही स्थापित हैं जबकि अधिकांशतः प्राथमिक सहकारी समितियाँ शहर या कस्बों से दूर ग्रामँचलों में स्थापित हैं। अस्तु यह स्थान की दूरी एक प्रकार से केन्द्रीय बैंक के मानसिक पटल में भी दूरी बनाये रखने में सहायक रही है। अतः न तो सामान्य पारस्परिक

सम्पर्क हो पाता है और न सहकारी कार्यों में वह अभिरुचि उत्पन्न होने पाती है जो वास्तव में हितकारी ही नहीं अपेक्षित भी है।

८. मध्यकालीन ऋणों के लिये उचित नियोजन का अभाव

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक से सम्पर्क स्थापित करने पर यह तथ्य उजागर हुआ कि अल्पकालीन ऋणों पर तो बैंक ने ध्यान दिया है परन्तु मध्यकालीन ऋण के सम्बन्ध में कोई अलग से योजना नहीं बनायी है, और न कोई व्यवस्थित अध्ययन ही कराया है। जो मध्यकालीन ऋण दिये भी गये हैं उनमें ऋण देते समय विनियोजन सम्बन्धी प्रस्तावित परिव्यय का और न ऋण लेने वाले की पुनर्भुगतान की क्षमता का ही ध्यान नही रक्खा गया है।

९. अन्य प्रकार की समित्तियों की उपेक्षा

केन्द्रीय बैंक को सहकारिता के क्षेत्र में पनपने वाली हर प्रकार की अकृषि सहकारी समितियों, औद्योगिक सहकारी समितियों, परम्परागत उद्योग या कुटीर उद्योग सहकारी समितियों को धनराशि रुपी जल का विनियोजन करके फलता फूलता व सफल बनाने का ध्येय लेकर चलना चाहिये। यह सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भी उचित ही है। परन्तु अनुभव बतलाता है कि केन्द्रीय बैकों ने किसी हद तक इस दृष्टिकोंण को अपने से ओझल ही रक्खा है। इसे सभी प्रकार की समितियों को ऋण देना चाहिये। रकम फँस जाने या डूब जाने के भय से जनपद से अनेक क्षेत्र आज भी साख सुविधाओं से अछूते रह गये हैं।

व्यवहारिक बाधायें, दोष एवं कठिनाइयाँ

1. प्राथमिक सहकारी समितियों की कमजोर निरीक्षण व्यवस्था

जनपद की सर्वोच्च सहकारी संस्था होने के नाते केन्द्रीय बैंक को प्राथमिक सहकारी समितियों का निरीक्षण, संप्रेषण कराना चाहिये। अनेक राज्यों में यह कार्य केन्द्रीय बैंक कर रहे हैं परन्तु उत्तर प्रदेश में यह व्यवस्था

आज तक नहीं है। आज भी प्राथमिक सहकारी समितियों का निरीक्षण, परीक्षण या संप्रेषण राज्य सरकारों के कर्मचारियों के द्वारा कराया जा रहा है। जालौन जिला सहकारी बैंक उरई में भी ऐसे ही संप्रेक्षक नियुक्त हैं। वास्तव में केन्द्रीय बैकों के संतोषजनक संचालनार्थ सहकारिता विभाग के अपने कुशल व प्रशिक्षित कर्मचारी होना चाहिये।

२. वित्तीय साधनों का अभाव

केन्द्रीय सहकारी बैंक के पास इनकी आवश्यकतानुसार साधनों का अभाव है। केन्द्रीय बैंक सम्बद्ध सहकारी समितियों की बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये अपने वित्तीय साधन बढ़ाने में असमर्थ रहे हैं यद्यपि जनपद जालौन के केन्द्रीय बैंक की जमाराशियों तथा निजीकोष में पर्याप्त वृद्धि हुई है तथापि ये राशियाँ या तो अन्य आकर्षक मदों में लगा दी गई हैं या फिर सदस्य समितियों की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं की पूर्ति करने में खरी नहीं उतरी हैं। समितियों द्वारा नई सदस्यता ग्रहण करने से अंशपूंजी में वृद्धि होती है। ऐसे में समितियों की आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाना उचित नहीं कहा जा सकता है।

३. कुशल सेवाओं का अभाव

केन्द्रीय बैंकों की एक बड़ी कमी यह है कि ये जमा के रुप में धन प्रदान करने वाले व्यक्तियों को पर्याप्त तथा कुशल सेवायें प्रदान नहीं करते। उत्तर –प्रदेश में इस सम्बन्ध में कुछ प्रगति अवश्य ही हुई है तथा जहाँ तक जालौन जिला सहकारी बैंक का प्रश्न है तो यहाँ सहकारी कर्मचारी न होकर सरकारी कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं जो पूर्ण निष्ठा व लगन से सम्बद्ध समितियों का निरीक्षण व संप्रेक्षण नहीं करते। वे और उनकी उपयोगिता सिर्फ केन्द्रीय बैंक तक ही सीमित है। नाबार्ड जैसी महत्वपूर्ण संस्था से सम्बद्ध कर्मचारी तो अधिकांशतः नगर से बाहर ही रहते हैं जो उनके उपेक्षाभाव का प्रतीक है।

४. ऋणों की स्वीकृत में विलम्ब होना

केन्द्रीय बैकों की ऋण स्वीकृति की प्रक्रिया में, जिसका अपवाद जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 भी नही है, असाधारण देरी होती है। बहुधा आवेदन–पत्र वहाँ अटके रहते हैं। बैंक केवल संचालक मण्डल के द्वारा ऋणों की स्वीकृत देता है। संचालक मण्डल की बैठक वर्ष में तीन या चार बार ही होती है। कभी धन की अपर्याप्तता, कभी सम्बन्धित सूचनाओं की विफलता के कारण ऋण स्वीकृति का समय पर प्राप्त न होना ऋण की उपयोगिता को ही समाप्त कर देती हैं।

ऋण विलम्ब होने का एक अन्य कारण यह भी है कि केन्द्रीय बैंक में आवेदनों की जाँच पड़ताल के लिये समय नष्ट करने वाली विस्तृत कार्यविधियाँ अपनायी जाती हैं और आवेदन पत्रों को चार या पाँच चरणों से यथा ऋण लिपिक, सहायक एकाउन्टेन्ट, प्रबन्धक और प्रबन्ध संचालक आदि से गुजरना पड़ता है। तब तक ऋण की आवश्यकता ही समाप्त हो जाती है। बैंक का कार्यालय व ग्रामीण समितियों के मध्य की दूरी के फलस्वरुप प्रपत्रों के आदान–प्रदान में भी देरी होती है।

५. ऋण देने में समितियों की उपेक्षा

प्रायः ऐसा भी पाया गया है कि केन्द्रीय बैंक द्वारा सम्बद्ध समितियों के बजाय व्यक्तियों को ऋण अधिक दे दिये जाते हैं। जनपद जालौन के केन्द्रीय बैंक द्वारा अनेकानेक प्रकार की आरामदायक वस्तुओं के क्रय के लिये विभिन्न कर्मचारियों को व्यक्तिगत स्तर पर ऋण दिये गये हैं जबकि वास्तव में ऋण देने में सम्बद्ध समित्तियों को अधिकाधिक महत्व प्रदान करना ही बैकों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये, जिससे समितियों को समुचित, सस्ती, सामयिक साख या वित्तीय साधन सुलभ हो सकें।

६. कर्मचारियों के हितों की उपेक्षा

केन्द्रीय बैंक होने के नाते बैंक द्वारा अपने कर्मचारियों को वे सभी सुविधायें, वेतनमान, पदोन्नति व स्थान्नतरण की जैसी सुविधायें तथा अन्ततः पैन्शन की सुविधायें भी सुलभ करानी चाहिये जो कार्य कुशलता वृद्धि के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। पेन्शन की सुविधा अभी तक प्रदान नहीं की जा रही है। इसके अतिरिक्त सामयिक प्रेरणाओं का भी अभाव जालौन जिला सहकारी बैंक में पाया गया है।

७. अकुशल कर्मचारी

चूंकि बैंक के कर्मचारियों की उपर्युक्त सुविधाओं एवं प्रशिक्षण पर गम्भीतापूर्वक ध्यान नहीं दिया गया है अस्तु कुशल प्रशिक्षित कर्मचारियों के न होने से बैंक के कार्यकलाप प्रभावी ढंग से नहीं हो पाते हैं।

वास्तविक दोष, कमियाँ या कठिनाइयाँ

१. बढ़ते असंतुलन की समस्या

सहकारी कृषि ऋण समितियाँ प्रायः अपने व्यवसाय हेतु पूर्णरुपेण ऋण और अमानतों पर निर्भर रहती हैं। सहकारी समिति अधिनियम 1965 की धारा 60 के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि सहकारी समिति ऋण एवं निक्षेपों को केवल उस सीमा तक और उन्हीं शर्तों के आधीन लेगी जो निबन्धक द्वारा निर्धारित की जांय। समिति के व्यवसाय के लिये जिला सहकारी बैंक मुख्य वित्तीय पूर्तिकर्ता की भूमिका निभाता है। समिति जिला सहकारी बैंक से ऋण प्राप्त करती हैं और उसे अपने सदस्यों को ऋण के रुप में उपलब्ध कराती है। जिला सहकारी बैंक ऋण की अदायगी सदस्यों से वसूल कर प्राप्त करता है। जिला सहकारी बैंक से प्राप्त ऋण पर समिति को ब्याज भी देना पड़ता है तथा समिति सदस्यों से ब्याज प्राप्त करती है।

असंतुलन

यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिवर्ष केन्द्रीय बैंक से प्राप्त ऋण की शतप्रतिशत अदायगी समिति द्वारा कर दी जाय, क्योंकि समिति स्तर पर कुछ सदस्यों के ऊपर ऋण बकाया रह जाता है। वर्तमान समय में यह अनुभव किया गया है कि अधिकांश समितियों में जिला सहकारी बैक का लगा ऋण अधिक है और उसकी अपेक्षा समिति के सदस्यों पर लगा ऋण कम है। इस प्रकार की स्थिति वित्तीय असंतुलन उत्पन्न करती है। प्रदेश की लगभग 80 प्रतिशत समित्तियाँ वित्तीय असंतुलन से प्रभावित हैं और इसी कारण जिला सहकारी बैंक को एक विशेष अवाँछित समस्या का सामना करना पड़ता है।

एक और तथ्य कोढ़ में खाज का काम करता हैं, और वह यह कि एक बार समिति में वित्तीय असंतुलन उत्पन्न हो गया तो केन्द्रीय बैंक को विवश होकर उस पर भी उत्तरोत्तर ब्याज लगाना पड़ता है। इसे बचने का एक दुष्परिणाम यह सामने आया है कि ऐसे सदस्यों के लिये लेनदेन को समिति स्तर पर उनके खाते में दर्ज न किया जाना या समिति स्तर पर ऋण सम्बन्धी रिकार्ड को गायब कर देना। इस समस्या से जिला सहकारी बैंक को भी जूझना पड़ता है और प्रायः एक अच्छी खासी रकम डूब जाती है या राइट आफ करना पड़ जाती है, जो सर्वथा अनुचित प्रयत्न ही कहा जायेगा। जालौन जिला सहकारी बैंक के 92 वें वार्षिक अधिवेशन की पत्रिका में 23 दिसम्बर 1999 में पृष्ठ संख्या 13 पर दो विशेष तथ्यों का उल्लेख है।

1. निर्धारित सीमा से अधिक स्टाक व
2. अधिक वेतन व्यय व उत्पन्न असन्तुलन व हानि की वृद्धि को रोकने के ठोस प्रयास किये जायेंगे।

२. ऋण सीमा व अंशपूंजी के निर्धारित अनुपात की उपेक्षा

केन्द्रीय बैकों द्वारा यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया है कि प्राथमिक सहकारी समितियों को दिये जाने वाले ऋण की मात्रा उनके द्वारा खरीदे गये अंशों के अनुपात में निर्धारित की जायेगी। इसका वास्तविक उद्देश्य अंशपूंजी में वृद्धि करना रहा है परन्तु इस सिद्धान्त की उपेक्षा करते हुये निश्चित सीमा से अधिक ऋण दिये हैं। जालौन जिला सहकारी बैंक लि0 भी इस प्रवृत्ति का शिकार है। परिणामतः पिछले तीन वित्तीय वर्षों में ब्याज शेष की रशि उत्तरोत्तर बढ़ती गई है और इसके लिये अतिरिक्त प्रावधान करना पड़ा है जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है।

तालिका संख्या - ८१ (रुपयों में)

मद	वित्तीय वर्ष1998–99 वास्तविक व्यय	1999–2000 प्रस्तावित / अनुमानित	2000–2001 प्रस्तावित / अनुमानित
प्रावधान बकाया ब्याज	80,00,000	90,00,000	95,00,000
प्रस्तावित बकाया बेडडेट	10,00,000	30,00,000	30,00,000

स्रोत –: पूर्वोलिखित – वार्षिक अधिवेशन पुस्तिका–आय व्यय का ब्यौरा से।

इसी प्रकार संतुलन पत्र वर्ष 2000–2001 में भी प्रावधान करना पड़ा है।

स्पेशल बेडडेट रिजर्व	7, 37, 908.94 रुपये	वार्षिक 2000 –01
बकाया ब्याज हेतु रिजर्व	293, 34, 525.48रुपये	अधिवेशन

३. अतिदेय ऋणों में वृद्धि

उपरोक्त तालिकाओं के समंक इस बात के द्योतक हैं कि केन्द्रीय सहकारी बैंक दिये गये ऋणों को समय पर वसूलने में असफल रहा है। इस कारण इनमें वर्षानुवर्ष वृद्धि होती रही है, और इनके लिये आवश्यक प्रयास

अभी भी नहीं किये जा रहे हैं। कुछ राज्यों में विशेषकर उत्तर प्रदेश में केन्द्रीय बैंको की स्थिति अति गम्भीर हो गई है। इस समस्या का एक और गम्भीर पक्ष यह भी है ये केन्द्रीय बैंक उन समितियों को भी ऋण देते जा रहे हैं जिनमें अवधिपार ऋण पहले से ही अत्यधिक हैं। सन् 1997–98 में केन्द्रीय बैंकों की अवधिपार ऋणों की मात्रा 1520 करोड़ रु0 थी। इसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि भारी अतिदेयों की मात्रा ने उच्च स्तरीय वित्त एजेन्सियों से ऋण लेने की क्षमता को नगण्य कर दिया है। रिजर्व बैंक व नाबार्ड ऐसे ऋण सम्बन्धी आवेदनों को स्वीकार ही नहीं कर रहे हैं, जहाँ अवधिपार ऋणों की मात्रा 60 प्रतिशत से अधिक है। जालौन जिला सहकारी बैंक ने अपने 94 वें वार्षिक अधि ावेशन दिनांक 7 जनवरी 2002 में पृष्ठ संख्या 8 पर ऋण वसूली अच्छी न होने के कारण योजनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की बात का उल्लेख किया है।

४. झूठेलेखे

केन्द्रीय बैकों के लिये ऐसा लगता है कि यह एक सामान्य प्रक्रिया हो गई है कि बैंक खातों में समायोजन कर ऋणों की वसूली व पुनः ऋण जारी की प्रविष्ठियाँ कर दी जाँय। इस कारण से बैकों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता है। ये ऋण वसूल नहीं हो पाते हैं तथा इन्हें बकाया दिखाने के स्थान पर बार–बार वसूली दिखाकर पुनः ऋण दर्शा दिये जाते हैं। जालौन जिला सहकारी बैंक भी इससे अछूता नहीं है।

५. व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व

केन्द्रीय बैकों की प्रबन्ध व्यवस्था में एक बहुत बड़ा दोष यह भी है कि उनके संचालक मण्डल में व्यक्तियों का बहुत अधिक प्रतिनिधित्व तथा प्रभाव है जो समितियों के स्थान पर निजी व्यक्तियों के हितों में निर्णय करवा लेते हैं। यह दोष जालौन जिला सहकारी बैंक में स्पष्टतः समझ में आता है कि

पिछले कई वर्षों से प्रबन्धक मण्डल ही एक नही है। यह एक वर्ग विशेष से भी सम्बद्ध लगता है तथा कई चेहरे तो ऐसे हैं जो आवश्यक तकनीकी व विभागी प्रक्रिया का पूर्णज्ञान नहीं रखते। ऐसे में संचालक मण्डल में कुछ लोगों का प्रभुत्व सा हो जाता है और वे फिर अधिकांश निर्णय अपने या अपनों के हित में या फिर जिनसे उनका कोई अप्रत्यक्ष हित सधता हो, उनके पक्ष में लेने में सफल हो जाते हैं।

६. राजनीतिक हस्तक्षेप

केन्द्रीय बैंकों के संचालक मण्डल में राजनीतिक दलों के सदस्य चुनाव लड़कर प्रविष्ट हो जाते हैं। ये सदस्य बैंक की व्यवस्था में सुधार करने की अपेक्षा अपने या अपनी पार्टी के हित में कार्य करते हैं। इससे बैंक गुटबन्दी व राजनीति के अखाडे बन जाते हैं और बैंक के साथ–साथ समितियों के सुध ाार की बात स्वप्निल हो जाती है।

यह अनुभव किया गया है कि अधिकांश महत्वपूर्ण बैठकों में सदस्यों की संख्या नगण्य सी रहती है, कभी–कभी कोरम भी पूरा नहीं होता। इसकी स्वीकारोक्ति सहकारी सचिव द्वारा भी की गई है कि लगभग 60–70 प्रतिशत सदस्य बैंक या समितियों के कार्यो व उत्थान में अभिरुचि नहीं लेते। जब कोई चुनाव होता है तभी उनकी उपस्थिति स्वतः या फिर जबरदस्ती से होती है।

देश की बैंकिग संस्थाओं पर राजनीतिक घटकों के प्रभाव की चर्चा करते हुये अखिल भारतीय साख समीक्षा समिति ने लिखा है कि अनेक दशाओं में एक विशेष राजनीतिक दल का सहकारी संस्था पर प्रभुत्व सा स्थापित हो जाता है परिणमातः अन्य दलों के सदस्यों को विशेष कर प्राथमिक स्तर पर सदस्यता या साख प्रदान करने की मनाही हो जाती है। कभी–कभी

प्रतिद्वन्दी गुट के सदस्य लोगों को अपने देय न चुकाने के लिये उकसाते हैं ताकि प्रबन्धकारणी समिति परेशानी में पड़ जाये। कभी–कभी तो राजनीतिक प्रभाव के कारण बैंकों के प्रबन्धक मण्डल मनमाने ढंग से निरस्त (सस्पेन्ड) कर दिये जाते हैं या फिर उसमें कुछ राजनीतिक दलों या गुटों के व्यक्तियों को सम्मलित कर लिया जाता है।

एक अन्य विशेष तथ्य जो सामने आया है वह यह है कि जो सहकारी संस्थायें आज एक विशेष राजनीतिक दल की छत्रछाया में पनपती दिखाई देती हैं, राज्य में शासक दल के बदलते ही दुर्भाग्य ग्रस्त हो जाती हैं। इस प्रकार पिछले कुछ वर्षों का अनुभव यह स्पष्ट करता है कि राजनीतिक घटक सहकारी संस्थाओं की कार्य संचालन नीतियों एवं विधियों पर गहरा अप्रत्याशित प्रभाव डालने लगे हैं और इसीलिये आज यह कहना कि केन्द्रीय बैंक एक मित्र, दार्शिनिक व पथ प्रदर्शक का दायित्व निभा रहे हैं, मात्र खोखला नारा बनकर रह गया है और वास्तविकताओं से इसका कोई लेना देना या सरोकार नहीं रह गया है। परिणामतः केन्द्रीय बैकों में निरन्तर हानि की स्थिति बढ़ती जा रही है। यथा सहकारी केन्द्रीय बैंकों में संचित हानि निम्न रही –:

वर्ष	1994–95	1995–96	1996–97
राशि(करोड़ रु0 में)	679	755	1324

कुछ तथ्यात्मक एवं उजागर वास्तविकताओं का विवरण

शोधकार्य के अन्तर्गत इस अन्तराल में कुछ ऐसे तथ्य प्रकाशित तथा उजागर हुये हैं जो उपर्युक्त दोषों, कठिनाइयों तथा कमियों की पुष्टि करते हैं। वास्तव में इस जानकारी की पृष्ठभूमि में ही सही निष्कर्ष निकालना सम्भव हो सकेगा, जिससे ऐसे सुधारात्मक सुझाव प्रस्तुत किये जायें जो

वाँछित परिणाम दे सके और समस्याओं का सार्थक सरल व व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत हो सकेगा। अस्तु :-

1. प्रदेश में तीन सहकारी बैकों यथा अवध सहकारी बैक, सिटी कोआपरेटिव बैंक व गोण्डा जिला सहकारी बैंकों में घपले इतने अधिक हुये हैं कि उनकी पुर्नस्थापना के प्रयास अभी तक तो निरर्थक लग रहे हैं। रोज कोई न कोई नया पहलू सामने आ रहा है जो केन्द्रीय बैंकों की कार्यप्राणाली पर प्रश्न चिन्ह लगाता है।
2. सिटी कोआपरेटिव बैंक लखनऊ की प्रेमनगर शाखा से फर्जी कागजात के आधार पर ऋण प्राप्त कर लेने पर मुकदमा चलाने की जानकारी हुई है, जिसमें 3200 वर्ग फुट जमीन पर 6 लाख 69 हजार 489 रु0 का ऋण लिया गया। वस्तुतः यह खोये हुये कागजात का मामला है।
3. इसके पश्चात् इसी सिटी कोआपरेटिव बैंक के लाकर से नौ सौ ग्राम सोना गायब होने का मामला सामने आया है जिसमें सहायक प्रबन्धक की मिली भगत से सोना गायब करने का आरोप है।
4. केन्द्रीय सहकारी बैकों में दोहरे नियमन की व्यवस्था भी चिन्ता का विषय बनी है। सरकार अपनी राजनीतिक बाधाओं के कारण कोई निर्णय ही नहीं कर पा रही है। रिजर्व बैंक के लिये भी यह एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। रिजर्व बैंक नें एक तरह से चेतावनी देते हुये कहा है कि अगर इस बारे में ज्यादा देरी हुई तो निकट भविष्य में सहकारी बैकों पर प्रभावशाली ढंग से नियमन करना बहुत मुश्किल हो जायेगा। वस्तुतः केन्द्र और राज्य दोनों की नियमन प्रणाली के कारण कई व्यवहारिक दिक्कतें पैदा हो रही हैं।
5. एक रिपोर्ट के अनुसार प्रदेश में अग्रणी बैकों तथा नाबार्ड द्वारा 21 अक्टूबर 2002 तक 11 लाख कृषकों को क्रेडिट कार्ड वितरित किये गये

हैं, और दूसरी ओर देहरादून (अब उत्तरांचल में) से प्रकाशित 12 जनवरी 2003 के एक समाचार के अनुसार ओरियण्टल बैंक आफ कामर्स के शाखा प्रबन्धक व फील्ड अफसर द्वारा क्रेडिट कार्ड के लिये आवेदक कृषक से 4200 रु9 की रिश्वत लेने का मामला प्रकाश में आया है। इस प्रकार यह तो एक उदाहरण पकड़ में आ गया है, परन्तु इस प्रकार की गड़बड़ियाँ कितनी हुई हों, कहा नहीं जा सकता। कागजी कार्यवाही में सब बिल्कुल स्वच्छ और ईमानदारी से वितरण हो जाना कोई नई बात नहीं है। ऐसा कहा जाता रहा है कि 'खेत और खतौनी' में सदैव अन्तर रहा है परन्तु ऊपर से देखने में सभी पूर्णतया ठीक लगता है।

6. इसी प्रकार की कागजी घोड़े दौड़ने के प्रक्रिया लखनऊ में 'किसान मेले' के कार्यक्रम में देखने को मिली, जिसका उद्धाटन जिलाधिकारी नवनीत सहगल ने दीप प्रज्जवलित करके किया और जब उन्होंने उपस्थित भीड़ से प्रश्न किया कि आप लोगों ने मेले से सहकारी योजनाओं का लाभ प्राप्त किया, इसका जनसमूह से लगभग एक ही उत्तर मिला 'नहीं'। अनभिज्ञता के चलते समस्याओं से जूझते ग्रामीण व किसान अपनी समस्याओं के लिये शीध्र निवारण होने की आशा लेकर आये जरुर थे किन्तु प्राप्ति के नाम पर सब कुछ शून्य ही रहा। कहीं–कहीं मेंले में लगे स्टाल में अधिकारी व कर्मचारियों का उपेक्षा भाव और कहीं–कहीं उनकी अनुपस्थिति उनकी सारी आकाक्षांओं को चकनाचूर करती दिखाई दी। भारी भरकम व्यवस्था व ताम–झाम के बीच लखनऊ महानगर में सैकड़ों लोग जमा तो हुये, लेकिन यहाँ आये किसानों व फरियादियों को सुविधा के नाम पर व्यर्थ की भागदौड़ तथा परेशानी झेलनी पड़ी।

7. ऐसी ही एक भागदौड़ की बेअसर कसरत लघु एवं सीमानत कृषकों को

प्रदेश के सूखाग्रस्तता की चपेट में आने पर 'मुफ्त बीज पाने' की योजना के कारण झेलनी पड़ी। यह घटना सन् 2002 के नवम्बर माह की है जब इस 'मुफ्त बीज' प्राप्त करने की मरीचका में फँस कर प्रदेश के किसानों को अपने धन व समय की बर्बादी से दो चार होना पड़ा। इसके लिये राजकीय बीज गोदामों पर सात सौ कुन्तल प्रति ब्लाक के हिसाब से बीज उपलब्ध कराया गया था। इस सहायता का कितना भाग वास्तविक लाभार्थियों तक पहुँचा, यह जाँच का विषय है। प्रदेश के वर्तमान सहकारिता मंत्री श्री रामप्रकाश त्रिपाठी ने सहकारिता विभाग के वर्तमान दोषों के निराकरण एवं सहकारिता आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिये कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय लिये हैं यथा 'सहकारिता आपके द्वारा पर' व 'कल्पतरु' जैसी योजनाओं का प्रारम्भ तथा 'कोई सहकारी या बैंक अब फेल नहीं होने दिया जायगा', जैसे संकल्प। स्वयं श्री त्रिपाठी के अनुसार "सहकारिता को पेशेवर मठाधीशो से मुक्ति दिलाने का अभियान जारी है। कई अन्य महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं जिनके सकारात्मक परिणाम दिखेगें। प्रदेश के लिये नया सहकारी एक्ट लगभग तैयार है। प्रदेश में सहकारी निर्वाचन आयोग के गठन की प्रक्रिया चल रही है व भविष्य में सभी सहकारी संस्थाओं के चुनाव इसी आयोग की देख–रेख में होगें। इस प्रकार आधी कुरीतियाँ व विसंगतियां स्वयमेव दूर हो जायेंगी।"

योजनायें एवं निर्णय तो सदैव विकासोन्मुख एवं जनकल्याणकारी रहे हैं परन्तु सबसे बड़ी बाधा राजनीतिज्ञों, अफसरशाही, लालफीताशाही व बाहुबली अपराधियों की वह धुरी रही है जो कल्याणकारी योजनाओं का एक बड़ा हिस्सा हड़पती रही है। ऐसे में सहकारिता मंत्री के उपरोक्त प्रयास कितने कारगर होगें इसका उत्तर भविष्य के गर्त में तो है ही, सन्देहास्पद भी है।

नवम् अध्याय

सहकारी कृषि साख की सम्भावनायें व सुधार के सुझाव

मेरा अभिमत है कि राष्ट्रपिता महात्मां गान्धी के विचार दर्शन का अनुसरण करते हुये यदि भारतवर्ष को उपलब्ध स्थानीय संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में विकसित किया जाता तो शायद आज यह देश विश्व के सर्वाधिक विकसित देशों में अग्रणी होता । परन्तु विशेषकर उत्तर प्रदेश में नीतियों के सुविचारित और सुनियोजित न होने के कारण सम्यक अवस्थापना सुविधाओं का विकास सम्भव न हो सका। इसीलिये देश के अनेक प्रदेश तो उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होते गये परन्तु उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय असंतुलन की स्थिति बनती गई और विशेष रुप से पूर्वोत्तर क्षेत्र व बुन्देलखण्ड विकास की दौड़ में पिछड़ गये।

यदि हम विश्व के सामाजिक एवं राजनीतिक उन्नयन को देखें तो निस्संदेह सहकारी आन्दोलन की महत्वपूर्ण और विशिष्ट भूमिका रही है। भारतवर्ष में भी सहकारी संस्थाओं के विकास का एक लम्बा इतिहास रहा है। जाति, रंग, धर्म भेद से कोंसों दूर सहकारिता आन्दोलन का विश्वव्यापी विकास और अगणित उपलब्धियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं कि समाज की कोई भी आर्थिक आवश्यकता ऐसी नहीं है, जिसकी पूर्ति सहकारिता के द्वारा सम्भव न हो परन्तु हमारे देश के परिपेक्ष्य में यह भी सत्य है कि सहकारिता के माध्यम से जिस प्रकार के सामाजार्थिक त्वरित विकास की परिकल्पना की गई थी उसे पूरी तरह चरितार्थ करने हेतु इस आन्दोलन से जुड़े लोगों को और अधिक निष्ठा एवं परिश्रम के साथ सार्थक व व्यावहारिक एवं वास्तविक सुधार के

प्रयास करने होंगें, तभी (और तब तक नहीं) इस देश के ग्रामीण क्षेत्र का कायाकल्प व कृषि विकास की सुनहरी आशामयी तस्वीर सम्भव हो सकेगी। महत्वाकांक्षी योजनाओं पर जो भृष्टाचार, बेईमानी एवं लूटखसोट का ग्रहण लग गया है उसे नये सिरे से नये निश्चित सुधारों से, नये विचारों से समाप्त करना होगा। नौकरशाही व इन्सपेक्टर राज के कागजी धोड़ों पर लगाम लगानी होगी, योजनाओं से कोरी घोषणाओं का मुलम्मा उतारकर उन्हें निष्ठापूर्ण व्यवहारिकता का जामां पहनाना होगा, और इस पुनीत व राष्ट्रीय हित में बाधक देशद्रोहियों को कठोरतम ढंग से दण्डित कर इस सर्वहितकारी, महत्वाकांछी आन्दोलन को उनके अदृश्य व हानिकारक हथकन्ड़ों से मुक्ति दिलानी होगी।

ऐसी कदापि नहीं है कि मर्ज लाइलाज हो गया है, इसके उपचार हैं और यह उपचार हम सभी जानते हैं, आवश्यकता है तो बस निर्भीक, निच्छल, निर्णियात्मक व साहसिक कदम उठाने की, और हम पायेंगे कि निराशा, असफलता के सारे बादल छँट जायेंगे और उदय होगा सहकारिता का वह स्वर्णिम प्रभात जिसमें चारों ओर विकास होगा उन्नति होगी और सभी निर्धन, लघु व सीमान्त कृषक सुख की साँस ले सकेंगे और जी सकेंगे एक सुखी मानवीय जीवन।

योजनाओं की समीक्षा में जुटा ग्रामीण विकास मंत्रालय भी आज प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी जी की इस टिप्पणी से पूर्णतया अवगत तथा सहमत है ''कि योजनाओं की घोषणायें तो ठीक हैं परन्तु जमीनी स्तर पर काम नज़र नहीं आ रहा है।'' ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा आयोजित दो दिवसीय सम्मेलन के समापन समारोह (28 जनवरी 2003 दैनिक जागरण पृष्ठ 15) में ग्रामीण विकास मंत्री श्री शांता कुमार जी की उपस्थिति में अटल जी तो यहाँ तक कहने से नहीं चूके कि ''कहीं मंत्रालय योजनाओं के सब्जबाग तो नहीं दिखाता है।'' 'आँकड़ों के तिलिस्म' की ओर संकेत करते हुये उन्होंने यह

जिज्ञासा व्यक्त की ''कि मंत्रालय अपनी योजनाओं की समीक्षा करे और यह देखे कि यथार्थ में कितना अमल हो पा रहा है।''

जिस प्रकार की चिन्तायें व आशंकायें प्रधानमंत्री ने व्यक्त की हैं, इसी प्रकार की कमियों, दोषों व दुर्बलताओं की ओर समय–समय पर गठित होने वाले आयोग, अध्ययनदल व समितियों ने भी विचार व्यक्त कियें है, तथा सुधार हेतु महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। परन्तु विचार तो विचारमात्र ही हैं, वास्तविकता तो उनके समग्र एवं सफल कार्यान्वन पर निर्भर करती है जो शायद ही कभी सही ढंग से और सच्चे मन से लागू किये गये हैं। अभी भी, जों कुछ विखराव व संसाधनों की बार्बादी व दुरुपयोग हुआ है, यदि उसे भुलाकर नवस्फूर्ति व नवीन आशा से पुनः निम्नाँकित पृष्ठाकिंत विचारों व सुझावों पर पूर्णरुपेण संगठित व संयमित प्रयास करेंगे तो 'देर आये दुरुस्त आये' निश्चय ही अभीष्ठ लक्ष्य को यथाशीध्र प्राप्त कर सकेंगे। अस्तु निम्नाँकित पृष्ठों में उन सभी सुधारों का निचोड़ प्रस्तुत करने का सरलतम प्रयास किया गया है जो विषय के मनीषियों व विशेषज्ञों ने समय समय पर प्रस्तुत किये हैं और साथ–साथ अभिनव और मौलिक चिन्तनयुक्त अर्वाचीन व समीचीन विचार पिरोने की निष्ठापूर्ण निष्पक्ष चेष्टा की है जो व्यवाहारिकता व वास्तवकिता की कसौटी पर शतप्रतिशत खरी उतरे और राष्ट्रहित व जनहित में कल्याणकारी हो।

सैद्धान्तिक सुधार

१. पात्रों की सदस्यता

प्रायः यह अनुभव किया गया है कि एक गाँव जहाँ समिति नहीं होती, या जहाँ समितियाँ बनाने का दायित्व क्षेत्रीय उपग्राम अधिकारी (इन्सपेक्टर) का होता है, वहाँ कुछ ऐसे स्वार्थी तत्व (यथा साहूकार) अप्रत्यक्ष रुप से समितियों के सदस्य बन जाते हैं जो अन्य सीधे–साधे सदस्य, जिन्हें वास्तव में आर्थिक सहायता चाहिये, का शोषण एवं दुरुपयोग करने लगते हैं। कुछ शक्तिशाली लोग बार–बार

चुनकर समिति में आ जाते हैं। वस्तुतः जिन व्यक्तियों पर समितियाँ गठित करने का दायित्व है उन्हें ऐसे लोगों पर निगाह रखनी चाहिये और चाहे कितनी ही मजबूरी हो उन्हें प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से सदस्य नहीं बनने देना चाहिये। इसके लिये मेरा सुझाव यह है कि सहकारी संविधान में ऐसा संशोधन हो कि पेशेवर या शक्तिशाली लोग या तो समिति की सदस्यता ग्रहण ही न कर सकें या किसी कारण गिने चुने लोगों को सदस्य बनाने की अनिवार्यता हो, तो दीर्घकाल तक समिति के सदस्य न बने रहें।

२. ऋण सीमा अंश पूंजी के ही अनुपात में देने के सिद्धान्त का पूर्णतः पालन

केन्द्रीय बैंक द्वारा स्वीकृत इस सिद्धान्त का अधिकतर उल्लंघन देखने में आया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सदस्यों की अंशपूंजी बढ़ाने का कोई सुविचारित प्रयास नहीं किया जाता। यदि इस सिद्धान्त को ऋण देने का आधारभूत सिद्धान्त मान लिया जाय, तो फिर अंशपूंजी में भी वृद्धि होगी और समिति व सदस्यों के ऋण प्राप्त करने की क्षमता भी बढ़ जायेगी, साथ–साथ जो अप्राप्य या संदिग्ध ऋण का बोझ, व वसूली की कठोर अनावश्यक क्रिया करनी पड़ती है, उसकी आवश्यकता ही नहीं होगी। समिति सफलतापूर्वक चलेगी, इससे लोगों में और अधिक विश्वास व गैर सदस्यों मे भी समिति के सदस्य बनने की अभिरुचि उत्पन्न हो सकेगी। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि बैंक का ऋण न चुकाया जाय, या उसमें विलम्ब हो। ऐसे व्यक्तियों का ग्रामीण समाज द्वारा बहिष्कार हो, उनकी पंचायतों द्वारा अवमानना हों, उन्हें पंचायत द्वारा प्रदत्त लाभों से वंचित किया जाय, ताकि दूसरे ऋणप्राप्तकर्ता उचित सीख ले सकें।

३. भूमि सम्पत्ति को आधारभूत प्रतिभूत न मान कर फसल ऋण प्रणाली लागू की जाय

आज भी जब कोई सदस्य समिति से ऋण लेना चाहता है तो

व्यवहार में प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से उसकी भूमि का मूल्यांकन करं उसी आधार पर ऋण दिया जाता है। यद्यपि अब इस दृष्टिकोण में परिवर्तन तो आया है, परन्तु ऋण लेने वाले सदस्य की भू–सम्पदा का मूल्य परोक्ष रुप से ऋण का आधार अवश्य बना रहता है। दूसरी ओर भारतीय कृषक का अपनी भूमि से लगाव इतना अधिक होता है कि वह किसी कीमत पर उसे छोड़ना नहीं चाहता, अतः इस भय से कि कहीं उसकी भूमि उसके हाथ से न निकल जाय वह समिति से ऋण लेने में हिचकता है, जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि वह ग्रामीण महाजन या साहूकार के द्वार विवशतावश जाता है और फिर परेशानी के अथाह सागर में पड़ जाता है। अस्तु भूमि को आधार मानकर ऋण देने को पूर्णतया तिलांजलि दे, सदस्य की फसल के आधार पर ऋण दिये जाँय और फसल के पककर बिक्री होने पर ऋण की वसूली सरल किश्तों में की जाय, तभी सहकारी प्राथमिक ऋण समिति की सार्थकता सिद्ध होगी तथा सदस्यता बढ़ेगी। साथ ही इससे सदस्यों का केन्द्रीय बैंक एवं उसकी कार्यशैली में विश्वास भी बढ़ेगा।

४. ऋण स्वीकृति से पूर्व जाँच का व्यवहारिक सिद्धान्त

बहुधा यह देखने में आया है कि सहकारी साख समितियों के माध्यम से दिये गये ऋण अनुत्पादक कार्यो में प्रयुक्त हो जाते हैं, इससे समय पर ऋण वापसी नहीं हो पाती। फलतः साख समिति का व बैंक का उद्देश्य ही विफल नही होता अपितु ऋण डूब जाने का भय रहता है ओर समिति खोखली हो जाती है। अतः ऋण देने से पूर्व प्रयोजन पात्रता आदि की सघन जाँच करा ली जाय, इसके लिये उप ब्लाक विकास अधिकारी को उत्तदायी बनाया जाय या अन्य निरीक्षकों की नियुक्ति की जाय', जो पूर्ण निष्ठा व सेवा की भावना से कार्य करें।

५. अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋणों में अन्तर करना

अधिकांश सहकारी समितियाँ व स्थानीय ग्रामीणं बैंक कृषक या ग्रामीण को ऋण देते समय ब्याज की दर में अन्तर नहीं करते, व मध्यकालीन ऋण के समान ही अल्पकालीन ऋण पर भी ब्याज लेते हैं, ऐसा करने का एक कारण यह भी है कि गाँवों में जो स्थानीय बैंक हैं उनके खर्चे व तौरतरीके उसी प्रकार खर्चीले हैं जैसे व्यापारिक बैकों के। यह सर्वथा अनुचित है। वस्तु अल्पकालीन ऋण की ब्याजदर कम या नगण्य जैसी होनी चाहिये जबकि मध्यकालीन ऋण की दर भी अधिक ऊँची न होनी चाहिये, वरना बैंक समिति व साहूकार में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा।

६. विनियोजन नीति नियंत्रण

केन्द्रीय बैंक की विनियोजन नीति में वर्तमान समय में यह अनुभव किया गया है कि इन बैकों को अपनी धनराशि ऋण के रुप में ग्रामीण कृषि विकासार्थ प्राथमिक सहकारी समितियों में ही लगाना चाहिये। इस कार्य हेतु इनकी जो ग्रामीण बैंकिग शाखायें हैं उन पर विशेष ध्यान देना चाहिये, परन्तु प्राथमिक समितियों में हानि होने की आशंका या वसूली समय से न होने की समस्या के कारण व दूसरी ओर अन्य क्षेत्रों में आकर्षक ब्याज तथा लाभ के लालच में ये बैंक अपनी धनराशि अन्य क्षेत्रों में लगा देते हैं। इनकी एक दबी इच्छा यह भी रहती है कि बैंक को वर्षानुवर्ष लाभ दिलवाना है, हानि की स्थिति में बैंक बदनाम होगा और फिर आर्थिक समस्याओं को झेलना पडेगा। केन्द्रीय बैकों की इस समझी बूझी नीति के कारण कृषक व ग्रामीण शिल्पकार लाभान्वित नहीं हो पाते। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि इन बैंकों को स्पष्ट कड़े आदेश दिये जांय कि अपनी ऋणयोग्य धनराशि का कम से कम 75 प्रतिशत भाग हर हालत में इन्हें प्राथमकि समितियों में विनियोजित करना होगा, अन्यथा शीर्ष बैंक से या नाबार्ड से हर सहायता से इन्हें बांचित कर देना चाहिये।

७. विनियोजन नीति के आधारभूत सिद्धान्त

चूँकि जालौन जिला सहकारी बैंक लि० व्यक्तियों से जमायें लेता है तो उसका यह भी दायित्व हो जाता है कि उनकी मांग पर उन्हें उनकी चाही रकम वापिस करें। इसके लिये बैंक को तरलता तथा सुरक्षा दोनों आधारभूत सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर ऋण देना या विनियोजन करना चाहिये।

इसी संदर्भ में केन्द्रीय बैकों को यह भी नहीं भूलना चाहिये कि उनकी कार्यशैली का आधार सहकारिता है व उन्हें ऋण देने या विनियोजन करते समय हर हाल में सहकारी समितियों को ही अधिक से अधिक ऋण देने की प्राथमिकता का सिद्धान्त अपनाना चाहिये, और अन्य उत्पादन के क्षेत्रों में या परिवहन या विपणन आदि में अपनी रकम का विनियोजन नहीं करना चाहिये। इस सम्बन्ध में अधिक उपयुक्त यही होगा कि ऐसे नियम बना दिये जाय जिससे सहकारिता के क्षेत्र के अतिरिक्त किसी अन्य क्षेत्र में विनियोजन करना असंवैधानिक माना जाय, या अन्य सभी क्षेत्र केन्द्रीय सहकारी बैकों के लिये वर्जित क्षेत्र माने जायँ। सिद्धान्त और व्यवहार दोनों दृष्टिकोण से ऐसे विनियोग हतोत्साहित किये जायँ।

७. अंश-पूंजी में राज्य का अंशदान बढ़ाना तथा विशेष अनुदान देना

जनपद के जिन क्षेत्रों में सहकारी साख की प्रगति संतोषजनक नहीं है वहाँ केन्द्रीय सहकारी बैकों की अंशपूंजी में राज्य सरकार या नाबार्ड इतनी पर्याप्त सीमा तक अंशपूंजी बढ़ा दे, जिससे केन्द्रीय बैंक अपने निजी साधनों का विस्तार कर सकें तथा अधिक मात्रा में उधार दे सकें। यद्यपि जनपद जालौन के केन्द्रीय सहकारी बैंक के अतिदेय तो अधिक नहीं कहे जा सकते, फिर भी अतिदेयों की बढ़ती मात्रा एवं भावी आशंका को निर्मूल करने के लिये यदि राज्य सरकार का भी अंशदान बढ़ाया जाय तो जनपद के अनेंक क्षेत्र जहाँ सहकारी साख की नितान्त आवश्यकता है पूरी हो सकेगी। इससे

विशेष परिस्थितियों में डूबे ऋणों को अपलिखित (राइटआफ) करने में सुविधा रहेगी। इस हेतु राज्य द्वारा विशेष अनुदान की व्यवस्था होनी चाहिये।

९. विशेष अधिकारियों की नियुक्ति

केन्द्रीय बैंक तथा उनकी ग्रामीण शाखाओं पर प्रायः यह दोषारोपण मढ़ा जाता रहा है कि वे कृषक कृषक में भेद करते हैं और इस नाते छोटे कृषक या सीमान्त कृषक के हितों की अनदेखी कर बड़े कृषकों को ऋण प्रदान कर देते हैं। जनपद जालौन में कई ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ अधिकांश कृषक सीमान्त या लघुकृषक हैं, विशेषकर माधौगढ़ व नदीगाँव क्षेत्र जहाँ इस प्रकार की शिकायतें मिली है। इसके लिये मेरे मतानुसार एक ऐसे विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिये जिसका कार्य केवल इस प्रकार के उपेक्षित वर्ग के हितों की रक्षा करना हो।

इसी संदर्भ में मेरा मानना यह भी है कि लघु कृषक या सीमान्त कृषक या खेतिहार मजदूरों को कृषि कार्य के लिये वित्तीय सहायता की जो भी योजनायें बने, वे कम से कम दो तीन वर्ष की अवश्य हों, ताकि लाभार्थी या ऋण लेने वाला व्यक्ति उस योजना से अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

१०. बहुउद्देशीय समितियों के निर्माण पर बल

सहकारिता आन्दोलन के व्यापक विस्तार के कारण प्रायः एक ही गाँव में कई प्रकार की सहकारी समितियाँ गठित हो गई हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि यदि कोई कार्य पूर्णरूपेण सिद्ध करना है तो एक समिति से दूसरी समिति भागना पड़ता है, इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ होने के कारण यदि कोई व्यक्ति कई समितियों की सदस्यता ग्रहण करता है तो उसे अंश पूंजी के रुप में कई स्थानों पर अलग–अलग धनराशि जमा करनी पड़ती है, इससे अनावश्यक दुहराव बढ़ता है। अस्तु मात्र सहकारी

कृषि ऋण की प्राथमिक समितियाँ बनाने से अधिक अच्छा यह होगा कि बहुउद्देशीय सहकारी समितियों का ही गठन किया जाय, यहीं समय की मांग भी है। इससे सदस्यों को न केवल सुविधा प्राप्त होगी वरन् समिति के संचालन के लिये निष्ठावान तथा समर्थ कर्मचारी भी उपलब्ध होंगे।

व्यवहारिक सुझाव

1. प्रभावी अंकेक्षण व अंकेक्षक दल का गठन

केन्द्रीय बैंक द्वारा सहकारी समितियों का अंकेक्षण प्रतिवर्ष समय से कराना अनिवार्य कर दिया जाय और यदि कोई समिति वार्षिक अंकेक्षण समय से नहीं करा पाती, तो केन्द्रीय बैंक अपने यहाँ के अंकेक्षक दल को भेज कर वार्षिक अंकेक्षण करवायें इससे समितियों के पदाधिकारी धन का दुरुपयोग नहीं कर सकेंगे, साथ–साथ समितियों की कार्यकुशलता में भी वृद्धि होगी।

यहाँ उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय बैंक जनपद जालौन में अंकेक्षण व संप्रेक्षण के कार्य हेतु अंकेक्षक नियुक्त हैं। वे हर वर्ष अपनी अंकेक्षण रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। वे एक प्रकार से बैंक के ही कर्मचारी हैं। अतः वे सम्भवतः संचालक मण्डल से प्रभावित रहते हैं। उनके विचार स्वतन्त्र हों व सही हों, यह कहा नहीं जा सकता। आय और व्यय का संतुलन तो अंकेक्षक या संप्रेक्षक की कार्यकुशलता का परिचायक होता है परन्तु समंकों के बारे में कहा गया है 'संमक झूठ की श्रृंखला हैं' अस्तु यह तो बनाने वाले का चातुर्य है जो संतुलन दर्शाता है, परन्तु फिर भी अनेक बैंक फेल हो गये हैं या अर्थिक संकट को झेल रहे हैं। अस्तु मेरे विचार में एक या दो ऐसे निष्पक्ष स्वतन्त्र अंकेक्षक दल बनाये जायँ, जो अकस्मात् किसीभी केन्द्रीय बैंक व उसकी सम्बद्ध शाखाओं का परीक्षक करें, इससे जो हाल अवध बैंक, सिटी बैंक या गोण्डा जिला सहकारी बैंक का हुआ, अन्य बैकों के साथ वैसा ही हादसा न हो पाये।

२. सहकारी शिक्षा व प्रशिक्षण का विस्तार

प्रायः यह पाया गया है कि समितियों के असफलता का एक बड़ा कारण कर्मचारियों व सदस्यों में प्रशिक्षण का अभाव होता है। इंगलैण्ड, स्वीडन, डेनमार्क तथा कुछ अन्य देशों में, जहाँ भी सहकारी शिक्षा व प्रशिक्षण पर जोर दिया गया है, आन्दोलन सफलता के साथ तेजी से आगे बढ़ा है। हमारे देश में इस पर और अधिक बल देने की आवश्यकता है। सहकारी शिक्षा से सहयोग की भावना का विकास होगा। समिति के सदस्य निष्ठावान होंगे। सहकारी प्रशिक्षण से कर्मचारियों को वह निपुणता और कार्यक्षमता प्राप्त होगी जिससे समितियों का तथा बैंक का संचालन कुशलता पूर्वक होगा, और फिर अन्य लोगों में भी सहकारिता की भावना बढ़ेगी और सहकारी संस्थाओं में विश्वास भी बढ़ेगा।

इसके लिये मुख्यालय एवं ग्रामीण बैंकस्तर पर कर्मचरियों की आवश्यकतानुसार वृद्धि की जानी चाहिये। प्रशिक्षण के दौरान कर्मचारियों को नवीन कृषि तकनीकि, कृषि ऋण सम्बन्धी प्रक्रिया तथा ऋणों की देखरेख व जाँच पड़ताल की जानकारी प्रदान की जानी चाहिये, ताकि उनमें गुणात्मक सुध ाार सम्भव हो सकें।

प्रबन्धकीय स्तर पर समुचित वर्ग (कैडर) का निर्माण किया जाय जिससे कर्मचारी स्वतन्त्ररुप से कार्य कर सकें। इससे बैंक की सेवा के लिये योग्य व अनुभवी व्यक्ति आकर्षित होंगे।

३. अवधिपार व संदिग्ध ऋणों को वसूलने से सम्बन्धित अभियान चलाया जाय

अधिकांश बैंक जो असफल हुये हैं या जो आर्थिक संकट ग्रस्त हैं, उनका मूल कारण बैकों में अतिदेय, अवधिपार या संदिग्ध ऋणों की मात्रा अत्याधिक है। ऐसे प्रत्येक बैंक, जो कालातीत ऋणों के कारण ठीक से कार्य

नहीं कर पा रहें है में वसूली के लिये विशेष अभियान या पुनर्गठन कार्यक्रम चलाना चाहिये। मेरा इस सम्बन्ध में मानना है कि इस प्रकार के अवधिपार या संदिग्ध ऋणों का जो अम्बार सा लगता चला जाता है, इसमें कहीं न कहीं संचालक मण्डल के शक्तिशाली या प्रभावशाली व्यक्तियों की प्रत्यक्ष या परोक्ष मंशा किसी व्यक्ति का हित साधने की रहती है। वह येनकेन प्रकारेण अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से यह काम करवा लेता है और इस प्रकार जो ऋण समय से वसूल हो जाना चाहिये, वह नहीं हो पाता। ऐसे में जिस बैंक में इस प्रकार की गड़बड़ी है उसी बैंक द्वारा सरलता से इसे समाप्त नहीं किया जा सकता। अस्तु इसके लिये भी एक ऐसा निष्पक्ष व स्वतन्त्र दल हो जो इस प्रकार के ऋणों की सामायिक वसूली न होने के कारणों की तह में जाये और वसूल करने के तरीके सुझाये या स्वयं इसका उत्तरदायित्व सम्भाले।

मेरे पिछले सुझावों में अंकेक्षण व संप्रेक्षण हेतु प्रदेश के लिये दो या तीन स्वतन्त्र एवं पूर्ण अधिकार सम्पन्न दल बनाने का जो सुझाव दिया गया था, उनको ही यह कार्य भी सौंपा जा सकता हैं। इस प्रकार गठित ऐसे आकस्मिक निरीक्षक दल के पास वर्ष भर के लिये कार्य भी होगा, और इस दल के प्रतिफल भी लाभकारी सिद्ध होंगे। ऐसा इसलिये भी आवश्यक है, जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है कि, बैंक में जो संप्रेक्षक (आडीटर) स्थायी रुप से नियुक्त रहते हैं या एक या दो उन्हीं व्यक्तियों को वर्षानुवर्ष इस कार्य का ठेका दे दिया जाता है, वे बैंक के संचालकों का हित साधने में ही अपना हित समझते हैं। अस्तु उनके इशारों पर काम करते है। अतः अतिदेय या अवधिपार ऋणों की वृद्धि होती जाती है। प्रायः इस प्रकार की कुरीतियाँ अकेले एक व्यक्ति के कारण नही पनपती वरन् ऐसे आर्थिक संकट जब बैंक पर आते हैं तो इसमें प्रायः एक से अधिक व्यक्ति संलग्न पाये जाते हैं।

४. ऋण-स्वीकृति प्रक्रिया का विकेन्द्रीयकरण

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि अधिकांश ऋण की स्वीकृति देने में अत्यधिक विलम्ब हो जाता है, जिससे ऋण लेने का मुख्य उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता। ऋण लेने से पूर्व सम्बन्धित कार्यवाही करने वाले बहुत से हाथों से इस प्रकार के प्रार्थना पत्र को गुजरना पड़ता है और अन्ततः प्रधान संचालक के हस्ताक्षर से अन्तिम स्वीकृत मिलती है, जबकि संचालक मण्डल वर्ष में दो या तीन बार ही बैठता है। ऐसे में जिस उद्देश्य के लिये ऋण मांगा जाता है, वह पूरा नहीं हो पाता, और प्रायः अनचाहे व अनुत्पादक मदों पर व्यय हो जाता है। अस्तु केन्द्रीय बैंक को ऋण स्वीकार करने वाली शक्तियों को विकेन्द्रीयकृत कर देना उपयुक्त होगा। यह विकेन्द्रीयकरण दो चरणों में किया जा सकता है। प्रथम केन्द्रीय सहकारी बैकों की प्रत्येक शाखा पर सलाहकारी समितियाँ (एडवाइजरी कमेटी) गठित कर दी जायँ और इन्हें सम्बद्ध शाखा के अर्न्तगत आने वाली समितियों को ऋण देने की सीमित शक्तियाँ सौंप दी जायँ अर्थात् यह स्पष्ट कर दिया जाय कि ये कितने ऋण स्वीकृत कर सकती हैं। दूसरे, कुछ चुनी हुई समितियों को, जिनके कुशल कर्मचारियों का रिकार्ड अच्छा रहा हो तथा वसूली कार्यक्रम संतोषजनक रहा हो, या जिनके निजी कोष पर्याप्त हों, भी अपने सदस्यों को बिना बैंक के पूर्व अनुमोदन के ऋण प्रदान करने की अनुमति हो। इस योजना को धीरे–धीरे सम्पूर्ण क्षेत्र पर लागू किया जा सकता है।

वास्तविक सुझाव

१. प्रलेखीय समायोजन रोकना

यद्यपि इस ओर बैकों व समितियों दोनों के सम्बन्धित अधिकारियों व कर्मचारियों का ध्यान बार–बार आकृष्ट किया गया व अगाह किया गया है परन्तु फिर भी वे अल्पकालीन या मध्यकालीन ऋण जो समय पर चुकता नहीं किये जाते, आपसी व्यवहार, अनावश्यक ऊपरी प्रभाव के कारण पहले वाले ऋण को चुकता दिखाकर, दूसरे ऋण काजगों में दिखा दिये जाते हैं। ऐसा अधिक ब्याज वसूलने की गरज से भी किया जाता है, जो सर्वथा अनुचित ही नही अन्याय पूर्ण भी है। अस्तु जहाँ कहीं भी इस प्रकार की हस्तांतरण किया जानबूझ कर की गई हो, उस सम्बन्धित व्यक्ति को दण्डित करने का प्रवधान होना चाहिये, व ऐसे सदस्य को सदस्यता से बंचित कर देना चाहिये, तभी ये कुप्रथा रुकेगी। अन्यथा अनेक बैंक इसी कारण अर्थिक संकट में फँसते रहेगें।

२. न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप

सहकारिता एक जन आन्दोलन है। इसका आदर्श है, 'परस्पर सहायता द्वारा आत्म सहायता' इसका मूलमंत्र है, 'हरेक एक के लिये व एक हरेक के लिये'। ऐसे में जब तक सहकारिता का अंकुरण प्रत्येक व्यक्ति के मन– मन्दिर में स्वतः द्वैदीप्तमान नही होता, तब तक इसे सहकारिता नहीं कहा जा सकता। भारत में अभी तक सहकारिता उस दीप के समान है जिसके दोनों और सरकारी सहायता का हाथ लगा है तभी यह बार–बार बुझने से बच रहा है। ज्यों ही सरकारी आर्थिक सहायता में कमी आई या बन्द हो गई तो सहकारिता के इस दीप के बुझ जाने का खतरा है। सरकारी हस्तक्षेप ने, चाहे वह सहायता के ही रुप में क्यों न हो, सहकारी आन्दोलन को सरकारी आन्दोलन बना दिया है। जिला सहकारी अधिकारी, सहकारी निबन्धक, सहकारी ग्राम विकास अधिकारी, उपग्राम विकास अधिकारी, अंकेक्षक सभी तो सरकार

द्वारा नियुक्त किये जाते हैं जिनके सहारे आज भी कहने को राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी आन्दोलन प्रगति के पाँवड़े बढ़ा रहा है परन्तु जो मूल भावना, जिससे प्रजातांन्त्रिक जन आन्दोलन की कल्पनां की गई थी वह तो स्वप्निल हो गई है। ग्रामीणों, कृषकों व गरीबों के मन में स्वस्फूर्ति की भावना जागी ही नहीं। सब कुछ सरकार पर निर्भर रहा है। सरकारी सहायता का कुप्रभाव यह हुआ है कि जन सहयोग की शक्ति इसे मिल ही नहीं पाई, जैसा कि विदेशों में हुआ है। सहकारिता के पौधे पर सरकारी नियंत्रण की छाया ने इसे इतना दुबर्ल बना दिया है कि जो स्वतन्त्र व स्वच्छन्द विकास व विस्तार होना चाहिये था वह नहीं हो सका। अस्तु इस कृत्रिम प्रगति को यदि वास्तविक सहकारी प्रगति में बदलना है तो इस सरकारी छत्रछाया को निश्चित रुप से हटाना होगा। तभी सहकारिता, व सहकारी संस्थाओं की सही प्रगति की तस्वीर सामने आयेगी। मेरा यह मत है कि एक बार कठोर कदम उठाकर सरकारी सहायता हटा दी जाय, परिस्थितियाँ बदल जायेंगी और सहकारिता का पौधा संधर्ष करते हुये जीवित व सुदृढ़ हो जायेगा।

३. राजनीति व राजनीतिक प्रभाव की समाप्ति

सहकारिता एक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था है। इसमें जो भी सदस्य हैं, उसका अपना एक मत व अपनी बात को सहकारी समिति में रखने का पूर्णाधिकार है। साख समिति हो या सहकारी बैंक हो, सभी शीर्ष से लेकर ग्राम स्तर तक इस ऊर्जा से भरे पूरे होते हैं कि एक दूसरे की सहायता कर अपनी सामाजार्थिक दशा को शीध्र सुधरेंगे। इसी उद्देश्य से प्राथमिक समितियाँ व संस्थायें बनायी जाती हैं। परन्तु विगत अर्धशताब्दी से कुछ सरकारी नीति के कारण और कुछ राजनीतिज्ञों व प्रभावशाली व्यक्तियों के कारण समितियों व केन्द्रीय एवं शीर्ष सहकारी बैकों में राजनीतिज्ञों का बोलबाला व हस्तक्षेप बहुत बढ़ गया है। इससे केन्द्रीय बैकों की कार्य प्रणाली भी अछूती नहीं रही।

परिणामतः आज यदि एक राजनीतिक पार्टी का प्रभुत्व है तो वह अपनी पार्टी की छवि सुधारने के लिये, व चुनाव में मत बटोरने के लिये अपनी गोटें बैठाती है। मनमाने ढ़ंग से कर्मचारी, अधिकारी, संचालक मण्डल सभी बदल जाते हैं और एक पार्टी के द्वारा जो भी नीति बनाई जाती है वह दूसरी पार्टी के आते ही या तो बदल दी जाती है या अपनी वाहवाही लूटने के लिये, पहले वाली पार्टी के नियमों को ताक में रख कर अपना उल्लू सीधा करती है।

वर्तमान उत्तर प्रदेश सरकार में सहकारिता मंत्री श्री रामप्रकाश त्रिपाठी ने बार–बार यह स्पष्ट कहा है कि पूर्व सरकारों ने मनमाने ढंग से तमाम ऋण एक झटके में माफ कर दियें, परिणाम आज सामने है कि कई बैंक फेल हो गये अथवा आर्थिक संकट में पड़ गये। इस प्रकार अनुचित व अवाँछनीय राजनीतिक हस्तक्षेप एक या दो क्या, सभी सहकारी संस्थाओं का समापन ही कर देगा।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह प्रकाश में आयी कि प्रदेश में सत्तारूढ़ दलों ने संचालक मण्डल में व कर्मचारियों में अपने ऐसे लोगों को बिठा दिया जो किसी प्रकार का सहकारी प्रशिक्षण नहीं लिये थे तथा जिन्हें सहकारिता के सिद्धान्तों का कोई ज्ञान नहीं था। बस हर ओर मनमानी की गई और अनेक बैंकों की दशा दिवालिये की तरह हो गई। अस्तु सहकारिता से यदि जनता जनार्दन का हित साधना है, उन्हें गरीबी के धरातल से निकालना है, तो ऐसे नियम कानून बनाने होंगे जिससे सहकारिता के सही संदेश सुदूराँचलों तक पहुँचे व सहकारिता के अभीष्ट लक्ष्य व फल प्राप्त हो सकें।

४. दुर्बल केन्द्रीय बैकों की पुनर्वास योजना

प्रदेश में आधे से ज्यादा केन्द्रीय सहकारी बैंक ऐसे हैं जिनमें अतिदेय, डूबे ऋण, संदिग्ध ऋण, इतने अधिक बढ़ते गये हैं कि बैकों के निजी कोष अटककर रह गये हैं। ऐसे सभी बैकों के लिये 1972–73 में एक विस्तृत

योजना बनायी थी तथा उसका कार्यान्वन भी हुआ था। पूना में राज्य सहकारी बैकों के मुख्य अधिकारियों द्वारा यह निर्णय लिया गया था कि निर्धारित मानक के अनुसार उन केन्द्रीय बैकों को दुर्बल माना जाय जिनके डूबे और संदिग्ध ऋण, संचित हानियाँ एवं अतिदेय पिछले तीन वर्षों में 50 प्रतिशत से भी ज्यादा बढ़ गये हैं और जिनके असमाप्त निजी कोष 25 लाख रु0 सें कम रह गये हों। ऐसे बैकों को सरकार से सहायता तब तक प्राप्त हो जब तक पुनर्वास प्रक्रिया इस प्रकार पूरी न हो जाय कि वह दुर्बल बैंक जीवन योग्य इकाई के रुप में कार्य करने लगे।

चूंकि उत्तर प्रदेश के अधिकाँश बैंक इस स्थिति के आस पास ही है अतः यह योजना प्रदेश में लागू की जाय, तो स्थिति सुधर सकती है। प्रदेश के वर्तमान सहकारिता मंत्री ने यह आश्वासन दिया है कि भविष्य में किसी बैंक को फेल नहीं होने दिया जायेगा। इसके साथ–साथ उन्होंने नये चुनाव आयोग के गठन की बात कही है तथा प्रदेश में सहकारित आन्दोलन को सफल बनाने तथा आर्थिक झँझावात से बैंको को मुक्ति दिलाने के लिये नई योजनायें 'सहकारिता आपके द्वार' तथा 'कल्पतरु' प्रस्तुत की हैं। ये वस्तुतः बहुउद्देशीय सहकारी समितियों का ही एक बदला स्वरुप होगा, जिससे प्राथमिक सहकारी समितियाँ सुदृढ़ आधार प्राप्त कर सकेगी, अनेक व्यवहारिक व्यवधान भी समाप्त होंगे, और जब समितियाँ प्रगति और विकास के नये कीर्तिमान बनायेंगी तो निश्चय ही केन्द्रीय सहकारी बैंक ग्रामीण व कृषि विकास की नवीनतम प्रभावशाली धुरी का काम करेंगे।

निष्कर्ष स्वरुप यह कहा जा सकता है कि सहकारिता के क्षेत्र में चाहे वह प्राथमिक सहकारी समितियाँ ग्रामीण स्तर पर हों या केन्द्रीय बैंक जनपद स्तर पर हों, विगत सौ वर्षो में अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके हैं। मुख्य रुप से सहकारिता के सिद्धान्तों की अनभिज्ञता, स्वस्फूर्ति की भावना का

आभाव, अकुशल प्रबन्ध, स्वार्थी तत्वों का प्रभुत्व एवं समीचीन समन्वय का अभाव आदि कारणों से देश की अर्थव्यवस्था में प्रभावशाली कार्यक्रम एवं आन्दोलन क्रियान्वित न होने से गम्भीर चुनौतियों का समाना करना पड़ रहा है। अतः यदि सहकारिता क्षेत्र की कार्यप्रणाली में नये परिवर्तनों के साथ नये आयाम स्थापित किये जायें तो आर्थिक विकास में आत्मसहायता के मौलिक आधार प्राप्त हो सकेंगे।

बैंक पदाधिकारीगण संस्थागत उपलब्धियों एवं कमजोरियों का पूरी निष्ठा के साथ आत्मविश्लेषण करते हुये भविष्य में विकास एवं विस्तार के लिये दीर्घकालीन नीतियाँ बनायें, और अपनी संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठ अपनी सेंवाओं में पर्याप्त विस्तार करें और कटिबद्ध होकर यथेष्ठ गुणवत्ता बनाये रक्खें तथा पर्याप्त आत्मचिन्तन एवं आत्ममन्थन करें तो आज उभरती अगणित चुनौतियों का मुकाबिला कर सकते हैं। वस्तुतः आज आर्थिक उदारता के नवीन परिवेश में सहकारी संस्थाओं को सक्रिय रखने का आधार उनका शुद्ध व्यवसायीकरण, सहकारी प्रजातंत्र के वास्तविक स्वरुप में विश्वास तथा प्रबन्धकीय श्रेष्ठता के साथ–साथ सहकारी मूल्यों की रक्षा में निहित है।

कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र में परम्परागत विधियों की समाप्ति तथा तकनीकी विकास व कृषि अनुसंधान से जो परिवर्तन आ रहे हैं, आवश्यकता है केन्द्रीय बैंकों के माध्यम से इसे सीमान्त कृषक व ग्रामवासी तक पहुँचाने की प्रयोगशालाओं से खेतों तक का यह सफर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विगतवर्षों में सहकारिता के माध्यम से ऋण, खाद, बीज यंत्र व रसायन आदि उपलब्ध कराने में बहुत कुछ किया जा चुका है। आवश्यकता यदि है तो लागत घटाने, लाभ एवं औसत उत्पादकता तथा गुणवत्ता बढ़ाने की, जिससे वर्तमान खेती का वाणिज्यिक लाभदायी स्वरुप उभरकर आये ना कि कृषि केवल पेट पालन का व जीवका उपार्जन मात्र का साधन ही बनकर रह जाय।

निष्कर्ष

लघु एवं लघुतम उपनिवेश (मिनी व टाइनी कोलनी)

एक परिकल्पना

यह एक निर्विवाद सत्य है कि कृषि एक उत्तरोत्तर प्रगतिशील एवं बहुउद्देश्यीय उद्योग है। इसका पहला उद्देश्य कृषि योग्य भूमि का विस्तार व दूसरा आधुनिक तकनीक तथा सघन आदानों के प्रयोग से उत्पादकता में वृद्धि है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये व कृषि उद्योग की प्रगति एवं विकासार्थ, सस्ती, समुचित व सामयिक साख या पूंजी की उपलब्धता एक पूर्व शर्त है, तभी आधुनिक तकनीक पर आधारित ग्रामीण कृषि विकास योजनाओं का बृहत स्तर पर सफल होना सम्भव है। कृषि में आधुनिक तकनीक के प्रयोगार्थ उन्नतबीज, उर्वरकों का प्रयोग, कीटाणुनाशक दवाओं का छिड़काव, लकड़ी के हल व बैल के स्थान पर विविध कृषियंत्र यथा टेक्ट्रर, विनोअर, हारवेस्टर, ब्लोअर तथा सामयिक सिंचाई के लिये रेहट व ढ़ेंकी के स्थान पर पम्पिंग सेट जैसे संयत्रों की आवश्यकता पड़ती है। अस्तु इन सभी आवश्यक साधनों को जुटाने के लिये एक स्वावलम्बी, सक्रिय व सजग साख प्रदान करने वाली प्रभावी पद्यति या साख संस्था का होना एक पूर्व शर्त है जहाँ से आवश्यकतानुसार निर्वाध साख या ऋणराशि उपलब्ध हो सके। यह आवश्यकता एक अनिवार्यता या पूर्व शर्त उस समय और अधिक हो जाती है जब कृषि योग्य भूमि आवश्यक ढंग से उपजाऊ न हो, वर्षा भी अनिश्चित व अपर्याप्त हो और सर्वोपरि भूमि पर अनाज उगाने वाला कृषक या अधिकांश जनसंख्या निर्धन ही नहीं वरन् निर्धनता रेखा के नीचे रह रही हो, स्थानीय कर्जदारों या महाजन के चंगुल में हो। वास्तव में यह चित्र कहीं और का नहीं वरन् शोध सघन अध्ययन क्षेत्र जनपद जालौन का ही है।

अब जहाँ तक जनपद में कार्यरत संस्थागत साख प्रदान करने वाली संस्थाओं या बैकों का प्रश्न है तो वाणिज्य बैंकों में इलाहाबाद बैंक जनपद का अग्रणी बैंक है व अन्य वाणिज्य बैंक हैं, परन्तु जो बैंक लगभग एक शती (1907) से कृषि व कृषकों से जुड़ा रहा है एवं स्वयं व अपनी 19 शाखाओं जो ग्रामाँचलों में दूर–दूर तक फैली हैं, के माध्यम से कृषि विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता रहा है, वह है 'जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि0 उरई' (पंजीकृत नाम) जो जनपद का केन्द्रीय सहकारी बैंक है। शोघ संरचना के सन्दर्भ में आकस्मिक निर्दशन पद्वति (रैण्डम सैम्पलिंग मैथड) के आधार पर जनपद के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में लाभार्थियों, सहकारी समितियों के सचिवों एवं बैंक की शाखाओं के प्रबन्धकों को लगभग 100 शोध प्रायोजित प्रश्नावलियां दी गई थी जिनमें से अथक प्रयास के बाद 58 भरी हुई प्रश्नावलियां प्राप्त हो सकीं। इनके गहन अध्ययन से दो प्रकार के विपरीत तथ्य उभरकर सामनें आये।

1. जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि0 उरई या उसके मार्ग निर्देशन पर जो व्यक्तिगत ऋण दिये गये, उनकी वसूली समय से हुई। लाभार्थियों द्वारा साख का सही प्रयोग करने से उत्पादन में प्रति एकड़ वृद्धि हुई, परिणामतः उनकी आय में वृद्धि हुई व उनके आर्थिक स्तर पर प्रभाव पड़ा। परन्तु ऐसे व्यक्तिगत ऋण जो थोड़ी रकम वाले व थोड़े समय के लिये थे (लगभग एक वर्ष के लिये), अधिकतर छोटे या सीमान्त कृषकों द्वारा लिये गये थे। उन्हीं से सम्पर्क करने पर सामान्यतया औसतन उनकी उपज में 10 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक की वृद्धि की सम्भावना व्यक्त की गई। इस हद तक कृषि का विकास सम्भव हुआ जिससे वे अपनी जीवका उपार्जन संतोषजनक ढंग से कर पा रहे थे, व ऋण राशि को समय से चुकता कर रहे थे। मेरे हिसाब से ये प्रगति उनके संतोष का परिचायक तो थी परन्तु विकास की गति धीमी थी या यूं कहें कि 'ऊँट के मुँह में जीरा' के समान थी।

2. ठीक इसके विपरीत बड़े व प्रभावशाली ग्रामीण कृषक थे जिन्होंने बैंक की ग्रामीण शाखाओं के सदस्य होने के नाते लम्बे चौड़े ऋण प्राप्त कर लिये थे, जो

किसी भी प्रकार से लाखों रुपये से कम नहीं थे बल्कि 10 लाख व 20 लाख रुपये से भी ऊपर थे। ऐसे बड़े व प्रभुत्व वाले कृषकों को मिली ऋण राशि से कृषि यंत्र खरीदने में, पर्याप्त मात्रा में उर्वरक व उन्नतबीज तथा सामयिक सिंचाई करने से होने वाला लाभ उनकी लहलहाती फसलों, भरे हुये खलिहानों को देखने तत्पश्चात् उन्हीं से प्राप्त जानकारी के अनुसार उत्पादकता में दूनी और कहीं-कहीं इससे अधिक वृद्धि हुई है। मौसमी कृषि बाधायें कम हुई हैं व उत्पादन लागत में भी कमी आई है। विडम्बना यह थी कि इनमें से अधिकांश ने अवधिपार होने पर भी ऋण राशि नहीं चुकाई, व जनपद में सूखे की दुहाई देकर उधार राशि के प्रति लापरवाह दिखे। यह भी सुनने को मिला कि बाद में यह उधार धन तो माफ कर दिया जाता है। कुछ प्रश्नावलियाँ ऐसे थी जो प्रतिहस्ताक्षरित (काउन्टर साइन) नहीं थी। कुछ पर मुहर नहीं लगी थी, अर्थात् अधिकांश अपूर्ण थीं, व उनके प्रतिहस्ताक्षरित न होने का एक ही कारण समझ में आया, कि वे सबकी सब फर्जी थीं। और इन फर्जी या नकली प्रश्नावलियों में प्रदत्त ऋण राशि बहुत अधिक थी।

एक छोटा संशय दूसरे बड़े संशय को जन्म देता है और फिर संशय का भयावह अन्तहीन दुःचक्र प्रारम्भ हो जाता है। जब इसकी पुष्टि प्रयत्क्ष प्रमाणों से प्रमाणित व प्रभावित होने लगती है तो बैंकों द्वारा प्रदत्त साख हो, या अन्य प्रकार की साख सुविधायें हों, सभी संदेहात्मक लगने लगती हैं और स्पष्ट रुप से समझ में आ जाता है कि बैंक द्वारा प्रदत्त साख का दुरुपयोग अधिक और सदुपयोग नाम मात्र का हुआ है। इसके प्रमाण वे सब बैंक हैं जो आर्थिक झुंझाबातों में फँसकर रह गये हैं व उनके अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिन्ह लग गया है। इसके प्रमुख कारण हैंः-

1. इम्बेलेन्स (आर्थिक असंतुलन) के कारण।
2. बैकों के अध्यक्ष, सचिव तथा कोषाधिकारी की बदनियती व फर्जी लेन-देन के कारण।
3. नौकरशाही अर्थात् ब्लाक डेवलपमेन्ट आफीसर तथा अन्य सहायक ग्राम अधिकारियों की मिलीभगत के कारण।

4. प्रभावशाली बड़े कृषकों के नाजायज तरीके से साख व अन्य कृषि साधनों के येनकेन प्रकारेण प्राप्त कर लेने के कारण ।
5. बड़े कृषकों पर आश्रित अपढ़ श्रमिकों या खेंतिहर मजदूरों को धौंस में ले लेकर व उनकों थोड़ा बहुत लालच देकर प्रपत्रों पर अंगूठा या हस्ताक्षर कराने के कारण।
6. इसी प्रकार के अनेक घपले, घूसखोरी, सेवा–शुल्क के नाम पर कमीशन लेने के कारण।
7. गाँव के पटवारी से खेत और खतौनी में अन्तर करवाने के कारण।
8. संस्थागत साख के नियमों व सिद्धान्तों की अवहेलना के कारण।
9. सांख्यिकीय संमकों के भ्रमात्मक प्रयोग के कारण।
10. समय–समय पर सरकार से प्राप्त होने वाली धनराशि का गलत प्रयोग करने के कारण।
11. जो ऋणराशि समय से प्राप्त नहीं हुई उसे गलत तरीके से समाप्त करने के कारण।
12. आवश्यक आवश्यकताओं तथा लक्ष्यों का सही अनुमान न लगा पाने के कारण।

आज प्रदेश में 51 सहकारी केन्द्रीय बैंकों में से कई तो फेल होकर बन्द हो गये हैं और लगभग 31 केन्द्रीय सहकारी बैंकों में रिजर्व बैंक इण्डिया की कार्यवाही व बन्द करने के आदेश की तलवार लटक रही है।

इसी संदर्भ में निम्नांकित कथनों पर ध्यान देने व गम्भीर मनन करने की अनिवार्यता पर दो राय नहीं हो सकती :–

"विकासशील देशों के सम्पूर्ण जन जीवन में धूस और भ्रष्टाचार लाल फीताशाही की डोर से सक्रिय रुप से लिपटा हुआ है। भ्रष्टाचार हर क्षेत्र में इतना तीक्ष्ण ढंग से प्रभावी है कि यह सामान्य मनुष्यों की दृष्टि में अब समस्या नहीं वरन् एक स्वीकृत जीवन शैली बन गया है।"

न्यायमूर्ति सुधीर चन्द्रवर्मा 23.2.2003

प्रदेश लोकायुक्त

"गाँव हो या कस्बा, शहर हो या महानगर, सभी भ्रष्टाचार के सैलाब में आकंठ डूबे हैं। मकसद सिर्फ एक है पैसा और अधिक पैसा हर क्षेत्र दलाल व माफियावाद की गिरफ्त में है, कोई उनके खिलाफ बोल नहीं सकता। यह अर्थ व्यवस्था को चौपट करने के साथ–साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मूल्यों पर भी प्रहार कर रहा है।" *(भरतशाह केस)*

"फर्जी ऋणों के द्वारा बैकों के माध्यम से सरकार को लाखों का चूना लगाया जा रहा है, चारा मशीन, आटा चक्की, इंजन, बोरिंग, डेयरी योजना के तहत अनेक किसानों के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है।" *(दैनिक जागरण 2/2/2003)*

"आज भ्रष्टाचार का इतना अधिक वोलबाला है कि गाँव के विकास के लिये जो धन सरकार मुहैया कराती है उसका अधिकांश हिस्सा प्रशासनिक अधिकारियों के पास में ही रह जाता है। जो पैसा सरकार भेजती है उसका 90 प्रतिशत रास्ते में ही समाप्त हो जाता है सिर्फ 10 प्रतिशत ही गाँव तक पहुँच पाता है।"

(उत्तर प्रदेश सहकारिता विशेषांक 2002)

"वर्तमान में केन्द्र और राज्यों के स्तर पर अनेक योजनायें, परियोजनायें चल रही हैं। ये सभी नौकरशाही की अकर्मण्यता का शिकार है। आर्थिक उदारीकरण के मार्ग पर चलने के बाबजूद देश की नौकरशाही उन तौर तरीकों को अपनाये हुये हैं जो अनुत्पादक ही नहीं वरन् अर्थव्यवस्था पर बोझ है। हमारी नौकरशाही की कछुआ चाल, भ्रष्टाचार और संवेदनहीनता ने कई सवाल खड़े किये है।"

इस सबसे एक ही ध्वनि प्रतिध्वनित होती है कि नकद रकम का जहाँ कहीं भी हस्ताँतरण होता है वहीं धपला, घोटाला चालफरेब, हेराफेरी दिन प्रतिदिन घटित होना अब कोई दण्डनीय अपराध न होकर एक सामान्य व सर्वस्वीकृत प्रक्रिया बन गई है।

"भ्रष्टाचार, जातिवाद, अनुशासनहीनता हमारी व्यवस्था के रगरग में समाया हुआ है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से राजकीय पूंजीवाद मजबूत हुआ है जिससे अकुशलता, बार्बादी व भ्रष्टाचार में वृद्धि हुई है। श्रमिक वर्ग व सामान्य आदमी का इस ढ़ाँचे में कोई स्थान नहीं है। नगर कस्वों व ग्रामों में फैले करोड़ों लोग सर्वहारा होते जा रहे हैं।"

(दैनिक जागरण 1अप्रैल 2003 पृष्ठ 9)

अन्ततः उत्तर प्रदेश सरकार के वर्तमान सहकारिता मंत्री श्री राम प्रकाश त्रिपाठी ने केन्द्रीय सहकारी बैंकों पर खिन्नता, मजबूरी व मायूसी जाहिर करते हुये निम्न उद्‌गार व्यक्त किये हैं –:

"मैं इस बारे में बोलने को अधिकृत नहीं हूँ....................हाँ मैं इतना अवश्य कहूँगा कि कुछ लोग आग में घी डाल रहे हैं तो कुछ आग पर राख डालनें में जूटे है।"

उपरोक्त कारणों तथा प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से घपलों, घूस, जाल साजी, फर्जी लेन–देन, गबन के कारनामे तथा भ्रष्टसमाज की कथनी और करनी का अन्तर ही अनेक अच्छी से अच्छी योजनाओं को औधे मुँह गिराने व धूल चटाने में सहायक हुये हैं और केन्द्रीय सहकारी बैंक या उसकी ग्रामीण बैकिंग शाखाओं द्वारा सहकारी समितियों या उनके माध्यम से व्यक्तियों, ग्रामीण लघु या सीमान्त तथा बड़े प्रभावशाली लोगों को रुपयों के रुप में मिलने वाली घनराशि या ऋण राशि का कृषि उत्पादक कार्यों सदुपयोग न होकर अधिकतर दुरुपयोग ही नहीं हुआ बल्कि कृषि–उत्पादक कार्यो में इसके साथ–साथ एक दृश्पवृत्ति भी जागी है और इस बात की तेजी से प्रसार हुआ है, कि बैंक से रुपया मिल रहा है, सरकार रुपया दे ही रही है तो क्यों न ले लिया जाय और हड़प कर लिया जाय। जहाँ तक ऋण राशि के सदुपयोग की बात है तो कागजी पेटा भरवा दिया जायेगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब नस–नस में बेईमानी चालाकी, फरेबी कूट कूटकर भरी हो और स्वजन हिताय का आदर्श ही सर्वोपरि हो, तो सहकारिता का

माध्यम या केन्द्रीय सहकारी बैंक भी कोई उसकी सहायता नहीं कर सकते। कितनी भी धनराशि उड़ेल दी जाय, सब बर्बाद हो जायेगी, बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा यदि उसे इस प्रकार की साख या धनराशि न मिलती तो कम से कम वह अनेकानेक दुर्व्यसनों व दुरुपयोगों की ओर झाँकता ही नहीं।

अस्तु जब–जब और जहाँ–जहाँ मुद्रा या ऋण–राशि का हस्ताँतरण हुआ है, वहीं घपले, गबन, जालसाजी हुई है। इसी से मेरी अग्राँकित परियोजना को बल मिलता है। यही आधार है मेरी कल्पना का जिसके अन्तर्गत ऋण राशि के स्थान पर वे सब वस्तुयें यथा बीज, उर्वरक, कीटाणुनाशक दवायें, कृषि यंत्र की सेवायें हर ग्रामीण क्षेत्र में हर व्यक्ति को सस्ती दर पर, सामयिक व समुचित एक ही स्थान पर या एक ही छत के नीचे लघु या लघुतम उपनिवेशों द्वारा उपलब्ध करायी जाँय, न कि मुद्रा या ऋण राशि के रूप में। इससे कृषि का वांछित विकास व विस्तार तो होगा ही, बेईमानी, बदनियती पर अंकुश भी लगेगा और जो बैंक की ग्रामीण शाखायें व केन्द्रीय बैंक आर्थिक झंझावात में फँसकर असफल हो रहे हैं वे भी सक्रिय व सार्थक भूमि का निभा सकेंगे।

परियोजना का प्रारुप व प्रक्रिया

विनम्र निवेदन व अनुरोध के साथ इस परियोजना के प्रस्तुत करने से पूर्व मैं इतना अवश्य जोड़ना चाहता हूँ कि स्वाभाविक रूप से यह संशय सम्भव है कि योजनात्मक अर्थव्यवस्था के अर्धशती से ऊपर लम्बे अन्तराल में अच्छी से अच्छी, विद्धजनों द्वारा सोची–समझी योजनायें तो अवश्य आयीं, परन्तु वे कागजी अधिक रहीं व व्यवहारिक धरातल पर आशानुरुप खरी न उतर सकीं, तो फिर यह परियोजना कहाँ से और कहाँ तक सफल व सार्थक सिद्ध हो सकेगी, निश्चय ही यह एक प्रश्नचिन्ह प्रस्तुत करती है। कारण स्पष्ट है कि वे सभी व्यापक आर्थिक दृष्टिकोण रखकर राष्ट्र के सामान्य हित को तो समाहित करती थीं, परन्तु विशेष क्षेत्र की विशेष समस्याओं के आधार पर अणु या

चतुर्भुजी आदर्श उपनिवेशीय परियोजना - परिदृश्य
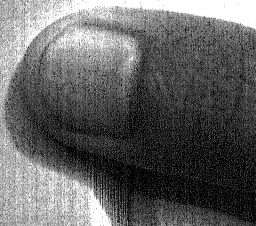
सघन दृष्टिकोण को अपनाकर लाभकारी एवं व्यवहारिक हल प्रस्तुत नहीं करती थीं। परन्तु मेरा पूर्ण विश्वास है कि मेरा यह लघु प्रयास निश्चित व निःसंदेह लघु जनपदीय स्तर पर यदि व्यावहारिक प्रयोग की कसौटी में कसा गया तो अवश्य ही सफलता का रंग लायेगा, व जनपद के कृषि विकास ही नहीं वरन् ग्रामीण जीवन में चतुरंगी विकास में चमत्कारी ढंग से चार चाँद लगाने में सहायक होगा।

विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्त पर आधारित प्रस्तुत चतुर्भुजी परियोजना के प्रमुख स्तम्भ निम्नलिखित हैं :-

1. केन्द्रीय सहकारी बैंक एवं अन्य सम्बद्ध बैंक संस्थागत साख संस्थायें।
2. कृषि एवं लघु व कुटीर उद्योग क्षेत्र।
3. पंचायतराज संस्थायें।
4. लघु, लघुतर व लघुतम उपनिवेश (मिनी,टाइनी व टिनी कालोनी)

बैंकिंग स्तम्भ

प्रथम स्तम्भ

(क) नाबार्ड (राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक।

(ख) राज्य सहकारी या शीर्ष बैंक।

(ग) वाणिज्य बैंक व अग्रणी बैंक।

(ध) ग्रामीण सहकारी बैंक या ग्रामीण बैंक।

द्वितीय स्तम्भ

कृषि एवं लघु व कुटीर उघोग स्तम्भ

(क) कृषि क्षेत्र :-

1. लघु सिंचाई योजनायें।
2. उच्चकोटीय तकनीकी कृषि।

3. सहकारी कृषि।

4. वन संरक्षण तथा बागवानी।

(ख) अकृषि क्षेत्र

1. कुटीर उद्योग :– डेयरी उद्योग, मुर्गी पालन, भेड़ पालन, व अन्य

2. लघु उद्योग :– हथकरघा उधोग, काष्ठकला, बर्तन उद्योग, व अन्य

तृतीय स्तम्भ

पंचायतराज स्तम्भ

(क) केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित योजनायें।

(ख) राज्य या प्रदेश सरकार द्वारा अग्रसारित योजनायें।

(ग) अन्य महत्वपूर्ण ग्राम विकास योजनायें।

(ध) संस्थागत साख संस्थाओं का योगदान व महत्वपूर्ण आर्थिक कार्यक्रम।

(ङ) सहकारी साख नियंत्रण।

(अ) ब्लाक स्तर पर :– खण्डवार आर्थिक समीक्षा।

(ब) ग्राम सभा :– प्रत्येक गाँव में।

(स) ग्राम पंचायत :– 5000 जनसंख्या या इससे अधिक पर।

(द) न्याय पंचायत :– 20,000 से ऊपर जनसंख्या पर।

चतुर्थ स्तम्भ

उपनिवेश स्तम्भ

(क) लघु उपनिवेश (मिनी कॉलौनी) ब्लाक स्तर पर।

(ख) लघुतर उपनिवेश (टायनी कालौनी) 5000 जनसंख्या से 20000 की जनसंख्या।

(ग) लघुतम उपनिवेश (टिनी कालौनी) 5000 से कम जनसंख्या या उससे कम में दो तीन गाँव के मध्य स्तर पर।

विभिन्न स्तम्भों का विस्तार

१. बैंकिग स्तम्भ

यदि हम गम्भीरता से सूक्ष्मावलोकन करें तो यह तथ्य उजागर होता है कि आज भी कृषि विस्तार व ग्रामविकास ऋण की उपलब्धता पर निर्भर है, और जब तक ऋण राशि उपलब्ध होती रहती है चाहे वह प्राथमिक सहकारी साख समिति के माध्यम से हो या फिर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अथवा केन्द्रीय सहकारी बैंक के माध्यम से आ रही हो, यह कृषकों के लिये संजीवनी का काम करती है। खेत लहलहाने लगते हैं, खलियान अनाज से भर जाते हैं सम्पन्नता दिखने लगती है और ज्यों ही यह ऋण राशि मिलना बन्द हो जांती है त्यों ही सुनसान व शमसान सा दृश्य उपस्थित होने लगता है। एक ओर कृषि 'मानसून का जुआ' की कहावत को चरितार्थ करती है वहीं दूसरी ओर ऋण राशि का समुचित व समय से उपलब्ध न होना 'गरीबी में आटा गीला' करने की पुष्टि करती है। एक अन्य दोष ऋण राशि प्रदान करने के साथ आज भी अभिन्न रुप से जुड़ा है कि प्रत्येक संस्थागत साख प्रदान करने वाली संस्था ऋण राशि देने के पूर्व उसकी प्रतिभूति मांगती हैं। पैसे की व्यवस्था गाँव में पहले से ही कमजोर रही हैं, विशेषकर लघु एवं सीमान्त कृषक व खेतिहार मजदूरों की। उसके पास भूमि ही उसकी पहचान है, और उसके साथ जुड़ी हुई हैं उसकी असंख्य आस्थायें और पारम्परिक व्यवस्थायें। ऐसे में वह सरलता से भूमि की प्रतिभूत देने से कतराता है। वह महाजन को अधिक ब्याज दर देने को तैयार है न कि अपनी भूमि के टुकड़े को जिसे वह हृदय के टुकड़े से अधिक महत्वपूर्ण समझता है, अपेक्षाकृत कम ब्याज दर पर गिरवी रखने को। अस्तु बैंक की इस पूर्व शर्त के कारण कृषक महाजन के चंगुल से उबर नहीं पा रहा है और ग्रामीण कृषि विकास अवरुद्ध हो रहा है।

इसके अतिरिक्त एक दूसरा तथ्य भी विचारणीय है कि नाबार्ड तथा उच्च स्तरीय संस्थाओं को छोड़ जहाँ कही भी बैंक नाम जुड़ गया है, चाहे वह केन्द्रीय सहकारी बैंक हों, या क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, यहाँ तक कि शीर्ष सहकारी बैंक भी, सभी पाश्चात्य ढ़र्रे का अनुसरण अक्षरशः कर रहे हैं और नौकरशाही के शिकंजे से बाहर नहीं आ पा रहे हैं। प्राथमिक सहकारी समितियों भी इससे अछूती नहीं रह पा रही हैं। हर जगह घूसखारी, कमीशन, सेवाशुल्क, दलाली का घन्धा पनपा और पसरा हुआ है। आज संस्थागत साख की कमी नहीं है परन्तु जो संस्थायें ग्रामोत्थान का लक्ष्य लेकर स्थापित की गईं थीं, उनमें सेवाभाव, सहकारिता की भावना, एक दूजे की सहायता करना जैसे भाव पूर्णतया विलुप्त हैं। भौतिकता का भंयकर भूत इस कदर हावी है कि स्वहित में नैतिकता, कर्तव्यपरायणता सभी को भुला दिया गया है। हाँ ऐसे में लाभ हुआ है तो सम्पन्न कृषक वर्ग का, वह पहले दो रुपये दाँव पर लगाता है और बाद में दस वसूल करता है। उसके लिये सभी नियम ताक में रख दिये जाते हैं, वह इच्छानुसार उन्नत बीज, पर्याप्त उर्वरक, कीटाणुनाशक दवायें ही नहीं लाखों की ऋण–राशि येन केन प्रकारेण प्राप्तकर आधुनिकतम कृषि यंत्र प्राप्त करने मे सफल है, और तभी उसके खेत लहलहाते हैं, खलिहान लदे व भण्डार अनाज से भरे हैं। यही है ग्राम कृषि विकास का वास्तविक परिदृश्य। प्रगति तो हुई है, परन्तु इससे जो निर्धनता समाप्त होनी थी, जो असंख्य लघु और सीमान्त कृषकों को लाभ मिलना चाहिये था, उससे आज भी वे वंचित हैं। ग्राम सुधार की नई बैंकिग नीतियों से प्रदेश व जनपद जालौंन के गरीबी के महासमुद्र में कुछ वैभव के टापू अवश्य उभर आये हैं, लेकिन लाखों निर्धनता रेखा के नीचे निरक्षर लोग आज भी निरा पाशविक जीवन निर्वाह कर रहे हैं।

अतः मेरा विश्वासभरा अभिमत यह है कि हम ऋण राशि के रुप में मुद्रा के हस्ताँतरण को यथा सम्भव हटा दें और जिन उद्देश्यों के लिये ऋण

लिया जाना है, उन्हीं कृषि आदानों को यथा बीज, उर्वरक कीटाणुनाशक दवायें तथा कृषि यंत्रों की सेवायें यथा पम्पिंग सेट, ट्रेक्टर, ब्लोअर, हरवेस्टर, थ्रेशर आदि की सेवायें उचित मूल्य पर उचित समय पर दें। इसी हेतु उपनिवेशों की कल्पना प्रस्तुत की गई है, जो इन आवश्यक सेवाओं को गरीब किसानों व लघु व सीमान्त कृषकों को सुलभ करायें।

जालौंन जिला सहकारी बैंक, लि0 आज जिस प्रकार उर्वरक का भण्डारण करके प्राथमिक सहकारी साख संस्थाओं के माध्यम से सदस्यों को लाभान्वित कर रहा है, उसी प्रकार से अन्य कृषि उत्पादन सहायक आदानों को भी सुलभ करा सकता है। यहीं नहीं जालौन जिला सहकारी बैंक के पास पर्याप्त पूंजी भण्डार है। वह बड़े कृषि यन्त्रों की सेवायें भी उचित मूल्य पर सुलभ करा सकता हैं। इस प्रकार बैंकिग के क्षेत्र में नया अध्याय जुड़ सकता है तथा कोआपरेटिव फेडरेशन से अनुबन्ध करके विभिन्न आदानों की आपूर्ति थोकभाव पर लेकर फुटकर बाजार भाव पर कृषकों को सुलभ करा सकता है। जब इस प्रकार की आवश्यक सामग्री व सेवायें कृषकों को उत्तरोत्तर विश्वासनीय तरीके से मिलने लगेंगी, तो फिर उत्पादन बढ़ेगा, कृषक लाभान्वित होगा व यथासमय ऋण–राशि का भुगतान सरलता से सम्भव होगा। अवधि पार ऋणों की वसूली की समस्या में कमी आयेगी, संदिग्ध ऋण की समस्या व बैकों में आर्थिक असंतुलन (इम्बेलेन्स) की समस्या समाप्त होगी। परिणामतः बैंक के फेल होने तथा आर्थिक संकटग्रस्त होने पर विराम लगाना सम्भव होगा।

२. कृषि एवं लघु व कुटीर उद्योग स्तम्भ

आज भारतवर्ष के गाँव–गाँव में 'हरित क्रान्ति' आ चुकी है, अस्तु देश में अनाज के भण्डार भरे हैं, देश खाद्यान्न में आत्मनिर्भर हैं, 'श्वेतक्रान्ति' शनैः शनैः आ रही है। गावों का सड़क–सम्पर्क बढ़ रहा है। डेयरियों की

स्थापना हो रही है व दुग्ध उत्पादन में मात्रात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार की वृद्धि हो रही है। 'नीली क्रान्ति' अर्थात् मछली पालन के क्षेत्र में क्रान्ति आने को है, इस हेतु ग्राम–वासियों का ध्यान इस लाभप्रद उद्योग की ओर तथा कुक्कुट या मुर्गी पालन पर आकृष्ट किया जा रहा है। इसी के साथ–साथ हमारे परम्परागत कुटीर उद्योगों को हर सम्भव सहायता दे पुर्नविकसित व संगठित करने के सराहनीय प्रयास किये जा रहे हैं। जनपद जालौन इन्हीं सब कृषि व कुटीर उद्योगों में लगे लोगों का एक लघु स्वरुप प्रस्तुत करता है।

(क) लघु सिंचाई योजनायें

1960–70 के दशक के मध्य के पश्चात् से ही जनपद में पारम्परिक कृषि पद्यति को आधुनिक तकनीक एवं फार्म–कृषि पद्यति से जोड़ दिया गया है। आई. ए. डी. पी मार्गदर्शी परियोजनाओं से जनपद को जोड़ा गया, अधिक उपजाऊ किस्म के बीज को प्रयोगार्थ प्रारम्भ किया गया तथा रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है। परन्तु पूर्व अध्यायों में जैसा वार्णित है कि आज भी जनपद की कृषि 70 प्रतिशत वर्षा के जल पर ही निर्भर है। जनपद की नदियों से नहरों द्वारा सिंचाई पूर्णतया भरोसेमन्द आज भी नहीं है। जनपद जालौन में तो कोई उल्लेखनीय नदी भी नहीं है। सुदूर पूर्व से नहरें हैं, इसीलिये इन्हीं नहरों से लघु सिंचाई योजनाओं व उनका विस्तार कृषि के विकास के लिये नितान्त आवश्यक है। नहरों के आभाव में व उनसे वर्ष भर पानी न मिलने के कारण तथा जनपद में 20'' से 30'' इंच ही वर्षा होने के कारण तथा इसमें भी अनिश्चितता होने के कारण टयूबबैल का सहारा लिया जाना अनिवार्य सा है। परन्तु पानी के स्रोत गहरे हैं व विद्युत–आपूर्ति भी निश्चित न होने से प्रायः कृषि उत्पादन प्रभावित होता है। साधारण कुयें या तालाब तो मुश्किल से जानवरों की जल आवश्यकता तथा पीने के पानी की आपूर्ति भर कर पाते हैं। इसलिये छोटी–छोटी सिंचाई योजनाओं का अधिकाधिक

महत्व है। इसके लिये जो भी 'मिनी या टायनी' उपनिवेश बनाये जायें, वे कृषि क्षेत्र के मध्य हों जिससे उपनिवेशों से प्रयोग किया हुआ पानी खेतों तक सिंचाई या बागवानी या साग–सब्जियाँ उगाने के काम उसी प्रकार से आ सके जिस प्रकार 'इजरायल में बने उपनिवेशों ने वहाँ की मरुभूमि की कायाकल्प करके भरे खेतों में बदल दिया है।

(ख) उच्चकोटीय तकनीकी कृषि

आज भी जनपद जालौन की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान ही हे क्योंकि 70–72 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य, पशुपालन व दुग्ध उत्पादन में लगी है। जनपद में कृषि से कुल आय की 40–41 प्रतिशत आय प्राप्त होती है। यहाँ आज भी लघु व सीमान्त कृषकों का बाहुल्य है। पिछले कुछ वर्षों में अन्य क्षेत्रों के तुलना में कृषि के महत्व में तथा विकास दर में गिरावट दर्ज की गई है, जिससे ग्रामीण सम्पन्नता में गिरावट व अपर्याप्तता आयी है। जो कुछ भी सम्पन्नता व वृद्धि सम्भव हुई है वह उन्हीं क्षेत्रों में सम्भव हो सकी है जहाँ सामयिक वर्षा हुई है या फिर जहाँ उच्चकोटीय तकनीकी कृषि का प्रयोग सम्पन्न वर्ग के लोगों के द्वारा उनके फार्मो या भूखण्ड़ों में सम्भव हो पाया है। कृषि यन्त्रों का भरपूर प्रयोग हुआ है, तथा उन्नतबीज व उर्वरकों का प्रयोग किया गया है। प्राप्त संमकों के अनुसार जिले की कुल ग्राम संख्या 1151 है। समस्त विकास खण्ड़ों में 10577 ट्रेक्टरों का प्रयोग हो रहा है जिसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रति एक गाँव में 9–10 ट्रेक्टर ही हैं। दूसरे शब्दों में बड़े कृषकों व सम्पन्न वर्ग के लोगों के पास ही अधिकांश आधुनिक कृषि यन्त्र हैं, और उनसे ही गाँव की सम्पन्नता दृष्टिगोचर होती है, परन्तु अधिकांश कृषक लघु और सीमान्त ही हैं। वे तो अब भी लकड़ी व लोहे के हल आदि से ही काम चलाते हैं, वे आज भी विपन्न हैं।

उन्नतबीज व उर्वरक का प्रयोग भी सम्पन्न ग्रामीण ही प्रयोग कर पाते हैं। गाँवों में इनका भण्डारण सामान्य बात नहीं है। उर्वरकों में नाईट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश का प्रयोग किया जा रहा है। परन्तु बढ़ते हुये उर्वरकों के मूल्य व घटती हुई सब्सिडी लघु और सीमान्त कृषकों की क्रय–शक्ति से बाहर है। इसी प्रकार उन्नतबीज भी छोटे कृषकों की क्रयशक्ति से बाहर हैं, साथ ही संस्थाओं में व्याप्त भृष्टाचार समस्या को और गम्भीर बना देता है। इसी वर्ष मुफ्त उन्नतबीज वितरित करने में जो घाँघली हुई वह हर समाचार पत्र में छपी तथा कृषकों को होने वाली अत्याधिक परेशानी व 'लोमड़ी के अंगूर खट्टे' की कथा की पुष्टि कर गई। इसीलिये आवश्यकता या यूं कहिये मेरे हिसाब से मिनी व टाइनी कालोनी बनाई जाँय तथा उनमें ग्राम विकास अधिकारी के देखरेख में कुछ गोदाम हों जिनसे हर कृषक को सुविधानुसार ग्राम पंचायत की निगरानी में यह सभी उच्च तकनीकी कृषि यन्त्र सेवायें, रुस के 'मशीन ट्रेक्टर स्टेशन' की तर्ज पर स्थापित कर उन्हें प्रदान की जाँय। जब सभी कृषक इन सेवाओं व साधनों के सरलता से उपलब्ध होने पर प्रयोग करेगें तो वास्तविक कृषि विस्तार व ग्राम विकास हो सकेगा।

(ग) सहकारी कृषि

जनपद जालौन में अधिकांश लघु व सीमान्त कृषक आज भी अपने अपने खेतों के व्यक्तिगत मालिक हैं, व सम्पूर्ण कृषि कार्य–भार व जोखित स्वयं उठाते हैं। इससे छोटे पैमाने की होने वाली अनेक हानियाँ उन्हें सहना पड़ती हैं, और कभी–कभी प्रकृति के प्रकोप का पहाड़ उन पर ऐसा विकराल रुप लेकर टूटता है कि वे उसे सहन नहीं कर पाते और पूर्णतया टूट जाते हैं व उनका परिवार बिखर जाता है। इसलिये मेरे अभिमत में यदि कृषक सहकारी खेती–पद्यति अपनाता है तो वह किसी भी प्राकृतिक आपदा का मिलजुल कर सामना कर सकता है, बड़े पैमाने की कृषि के लाभ प्राप्त कर

सकता है, भूमि का भरपूर प्रयोग कर सकता है, यान्त्रिक कृषि सम्भव हो सकती है, जोखिम में कमी सम्भव हो सकती है, भूमि की उत्पादकता में वृद्धि सम्भव हो सकती है, विपणन की सुविधायें सुलभ हो सकती हैं और इस प्रकार जीवन स्तर में भी वृद्धि सम्भव हो सकती है।

ग्रामीण उपनिवेशों की स्थापना से उसे कृषि सम्बन्धी सेवायें व बीज, खाद आदि की आपूर्ति में सहायता शीध्र सम्भव हो जाती हैं, सिंचाई की सुविधायें सस्ती पड़ती हैं। एक पम्पिंग सेट सभी सहकार कृषकों के काम आ सकता है। इसी प्रकार अन्य कृषि यन्त्र जो व्यक्तिगत थोड़े से कार्य के लिये लाभदायक न होते, कई किसानों के मिल जाने से उनका अधिकतम व लाभदायक प्रयोग सम्भव हो जाता है। इसके साथ ग्रामीण उपनिवेशों में ग्रामीण प्रबन्धन (रूरल मैनेजमेन्ट) के अन्तर्गत देख–रेख या निगरानी से अनेक प्रकार की सावधानियाँ समय से पूर्व लेना सम्भव हो जाता है, जिससे कई प्रकार की फसली–हानियाँ होने से बच जाती हैं। ग्रामीण अपनिवेश व्यवस्था व सहकारी कृषि साथ–साथ अपनाकर कृषि–लाभ कई गुना बढ़ाया जा सकता है।

(ध) वन संरक्षण तथा बागवानी

ग्रामीण मिनी व टायनी उपनिवेश की परिकल्पना का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ ग्राम–पंचायत भी है। इनके पास गाँव की कृषि योग्य भूमि वन या जंगल के क्षेत्र का भी लेखा जोखा रहता है। ग्राम उपनिवेशों में जहाँ खेत व खलिहानों पर विशेष ध्यान दिया जाता है, वहीं वन–कृषि को सफलता के लिये महत्वपूर्ण अंग मानकर, उन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बाग, बगीचे, तथा साग सब्जियों को उगाने में विशेष ध्यान दिया जाता है। उपनिवेशों से प्रयोग किया गया पानी, नालियों द्वारा उपनिवेशों से लगे कृषि क्षेत्र में पहुँचाया जाता है, जहाँ सब्जियाँ व फल फूल पर्याप्त मात्रा में उगाये जा सकते है जिससे कुछ बेरोजगार लोगों को वर्ष भर रोजगार सम्भव हो सकता है।

(ब) अकृषि क्षेत्र

1. कुटीर उद्योग।
2. लघु उद्योग।

डेयरी उद्योग ग्राम वासियों का एक परम्परागत उद्योग ही कहा जायेगा, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से कृषि से जुड़ा है। कृषि के लिये बछड़े या बैल गौ पालन की ही व्योत्पत्ति हैं, अस्तु गाय व भैंस, भेड़, बकरी आदि का पालन हर ग्रामवासी की पहली पसन्द रहा है। मांसाहारी प्रवृत्ति का कम होना व दूध का प्रयोग एक भोजन की तरह भाँति–भाँति से किया जाता रहा है। इधर जब से कृषि यन्त्रों का चलन या मशीनीकरण बढ़ा है व आने–जाने के मार्ग सरल हुये हैं, गाँव–गाँव में सहकारी डेयरी या एक स्थान पर दूध एकत्र कर उसे समीप के कस्बाई या शहरी क्षेत्र में शीध्रगामी साधनों द्वारा भेजने की सुविधा बढ़ी है, तबसे गाँवों में दूध का उद्योग पनपा है। ग्राम–उपनिवेश के अन्तर्गत ऐसे ही डेयरी व दुग्ध उत्पादन एकत्र करने के केन्द्र सरलता से बनाये जा सकते हैं, जहाँ दुग्ध संयत्र लगे हों, जिनसे दूध को कीटाणुरहित (पैस्चुराइज) कर व घी या मक्खन निकालकर सरलता से बाहर भी भेजा जा सकता है। आज यह प्रक्रिया जनपद के मुख्यालय उरई में सहकारी डेयरी खोलकर कार्यान्वित की जा रही है।

पशुपालन के साथ–साथ पशु चराना जिसमें बकरी, भेड़, गाय भैंस आती हैं, यह भी कुछ लोग करते हैं। बकरी, गरीबों की गाय कही जाती है और सरलता से पाली जा सकती है। कहीं–कहीं जनपद के गाँवो में बकरियों व भेड़ों के झुण्ड भी देखने को मिले। भेड़ों से ऊन प्राप्तकर कुछ लोग अपनी जीवका उपार्जन करते हैं। जनपद में दो मुर्गी पालन स्थल भी हैं एक कालपी रोड़ पर है दूसरा माधौगढ़ रामपुरा क्षेत्र में है, परन्तु यह नाम मात्र के ही मुर्गी पालन केन्द्र हैं। मुझे तो कुछ ऐसा ज्ञात हुआ है कि केन्द्र पर जो

सरकारी सहायता उपलब्ध कराई जाती है, मात्र उसे प्राप्त करने के लिये स्थापित किये गये हैं। अस्तु ग्राम उपनिवेश के अर्न्तगत यदि इन्हें बजाय धनराशि देने के उच्च नस्ल के मुर्गी–मुर्गे उपलब्ध कराये जायें व अन्य रख रखाव की सुविधायें प्रदान की जाय, चुगने के लिये उपयुक्त आहार प्रदान किया जाय, तो वास्तव में यह अति लाभदायक उद्योग सिद्ध हो सकता है। इसके साथ–साथ ग्राम उपनिवेश इनके रख रखाव के भी सुरक्षित व उपयुक्त स्थल बन सकते हैं।

हथकरघा उद्योग तथा अन्य उद्योग

जनपद के कालपी तहसील में कई करघें कार्यरत हैं। इसके अतिरिक्त कालपी में हस्त कागज उद्योग एवं चमड़े का काम भी छोटे पैमाने पर चल रहा है। परन्तु यह सब व्यक्तिगत प्रयास से ही चलते हैं तथा यह भी किसी हद सरकारी अनुदान पर निर्भर हैं। यदि अनुदान समय से मिलता हैं तो कार्य चालू रहता है, अन्यथा फिर यह सब नाम मात्र के उद्योग बनकर रह जाते हैं। केवल हस्त कागज उद्योग ही सबसे पुराना व स्थापित उद्योग है परन्तु इसमें भी समय–समय पर समस्यायें आती रहती हैं। इनमें कच्चे माल की आपूर्ति, विद्युत आपूर्ति प्रमुख हैं। अस्तु यदि यह सभी कुटीर और लघु उद्योग ग्राम उपनिवेशों के समीप व देखरेख में स्थापित हों तो अधिक लाभप्रद व रोजगार परक बन सकते हैं। माधौगढ़ की मिनी शुगर फैक्ट्री आज बन्दी का शिकार है। यदि यह मिनी सेक्टर के अन्तर्गत संचालित होती और इसकी कार्य प्रणाली में पारदर्शिता होती तो इसका यह दुखद अन्त न होता। अस्तु यदि हमें जनपद में कुटीर और लघु उद्योगों का जाल बिछाना है व स्थानीय रोजगार के अवसर बढ़ाने है तो मिनी व टाइनी उपनिवेश (कालोनी) खोलकर उसमें आवश्यक संयत्रों की व्यवस्था कर तथा जनपद की आई0 टी0 आई0 संस्था व ग्राम प्रबन्धन से प्रशिक्षित व्यक्तियों की सेवायें उपलब्ध कराकर कृषि व कुटीर

उद्योगों का जनपद में पूर्ण विकास किया जाना कोई कठिनाई नहीं उत्पन्न करेगा, वरन् कृषि व ग्रामीण विकास व विस्तार में सहायक हो सकेगा।

भावी कृषि-नीति निर्धारण

जनपद में कृषि क्षेत्र के विस्तार व विकास पर जो भी प्रकाश डाला गया है, हमें आज के भूमण्डलीकरण व उदारीकरण के इस युग में यह नहीं भूलना है कि इन नव–आर्थिक प्रवृत्तियों व नीतियों के परिवर्तन से भावी कृषिक्षेत्र प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकेगा। कृषि क्षेत्र के विकास के साथ–साथ प्रति व्यक्ति आय व आत्मनिर्भरता में वृद्धि होगी व अतिरिक्त उत्पादन निर्यात भी जनपद से सम्भव हो सकेगा। परन्तु यह तथ्य भी ध्यान में रखना है कि औद्योगिक तकनीकि के विकास के साथ कृषि की राष्ट्रीय स्तर पर तथा जनपदीय स्तर पर महत्व में कमी आने की प्रबल सम्भावनायें हैं। यथा :–

तालिका संख्या - ८२

सरल घरेलु उत्पादन में कृषि का सापेक्षिक भाग (प्रतिशत में)

क्षेत्र	1950–51	1995–96	2001–02
कृषि	56	29	26
उद्योग	15	29	30
यातायात व व्यापार	11	20	21
बैंकिग	9	11	11
प्रशासनिक तथा रक्षा	9	11	12

पूर्व अनुभव यह सिद्ध करते हैं कि जनपद में प्रति हेक्टेयर उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करने पर ही ध्यान केन्द्रित किये जाते रहे हैं न कि श्रम व पूंजी की मात्रा व उनकी उत्पादकता में वृद्धि के। इसलिये जनपद की कृषि नीति में आज आदानों की उत्पादकता सुधार की नीति पर भी ध्यान देना होगा। इसी सम्बन्ध में यह तथ्य भुलाया नहीं जा सकता कि अभी तक कुछ

महत्वपूर्ण फसलें खासकर ज्वार, बाजरा, मूंग, उड़द, अरहर आदि लगभग नगण्य हो गई हैं। इनमें प्रोटीन की प्रचुरता व कैलोरिज की मात्रा अधिक पाई जाती है। इसलिये यदि हम, रेशम की खेती, फलों व बागवानी करना, व मधुमक्खी पालन पर विशेष ध्यान दें, तथा हालैण्ड या डेनमार्क की भांति परिवर्तित उत्पादन प्रणाली (रोटेशन आफ क्राप्स) अपनायें तो जनपद की कृषि अर्थव्यवस्था में बहुत उन्नति सम्भव हो सकेगी और अन्ततः जैसा राष्ट्रपिता गान्धी जी ने भी कहा था कि हमें कृषि से अधिकतम लाभ तभी प्राप्त होना सम्भव होगा जब हम सहकारी खेती पद्यति का अनुसरण करेंगे।

तृतीय स्तम्भ :-

ग्राम पंचायत राज स्तम्भ

स्वतन्त्रोत्तर काल में राष्ट्रीय सरकार द्वारा भारतीय कृषि अर्थ व्यवस्था तथा समग्र ग्रामीण विकास के महत्व को समझते हुये अनेक ग्राम योजनायें, लगभग 66 समुदायिक ग्रामीण–उत्थान कार्यक्रमों के अन्तर्गत चलाई गई। इन सभी योजनाओं के दो प्रमुख उद्देश्य थे :–

1. आर्थिक विकास दर को तेजी से बढ़ाना।
2. योजनाओं से अर्जित लाभों को सभी वर्गों के लोगों में समान रुप से वितरित करना।

इसी के निहितार्थ नवीं पंचवर्षीय योजना का प्रमुख उद्देश्य 'सामाजिक न्याय व समानता के साथ विकास' था, जिससे ग्रामीण निर्धनों का सामाजार्थिक उत्थान, करना निर्धनता में कमी या समाप्ति करना, बेरोजगारी का अन्त करना, आयों की असमानता तथा क्षेत्रीय असमनताओं व असंतुलन को दूर करना था। परन्तु इस लम्बे अन्तराल में इन समस्याओं के समाधान की बात तो स्वप्नवत हो गई और भ्रष्टाचार, घुटाले जालसाजी, कामचोरी, गबन जैसी कुरीतियाँ जैसे –जैसे समय बीतता गया भारतीय जीवन में अंकुरित हो आज

इतनी जड़ जमा चुकी हैं कि इनसे उबर पाना और गरीब ग्राम–वासियों को आशामय सुखी जीवन दिलाना एक दिवास्वप्न सा बनकर रह गया है।

परन्तु इससे एक और तथ्य उभरकर सामने आया है कि जो भी योजनायें आई, वह ग्रामवासियों की उपेक्षा कर व ग्राम पंचायत जैसी महत्वपूर्ण स्थानीय संस्थाओं का ध्यान न रखकर, बाहरी संस्थाओं द्वारा संचालित व नियंत्रित की गयीं। शहरी वातावरण में पले ये लोग वस्तुतः उच्च किताबी शिक्षा तो पाये हुये थे लेकिन उनमें सरल व्यवहारिकता का सर्वथा अभाव था। इस कमी व दोषपूर्ण दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर अब साख प्रदान करने वाली सेवाओं (क्रेडिट डिलीवरी सिस्टम) को बजट में अधिकाधिक महत्वपूर्ण मानकर ग्राम पंचायत जैसी संस्थाओं पर निर्भरता पर अधिक जोर दिया जा रहा है जिससें कृषि व ग्रामीण कल्याणकारी योजनाओं को सही ढंग से नियंत्रित करके सफलता पूर्वक कार्यान्वित किया जा सके। आज तो सम्पूर्ण केन्द्रीय ग्राम विकास योजनाओं की निगरानी का दायित्व भी केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्री शान्ताकुमार जी ने पंचायतों के कन्धों पर डाल दिया है।

योजना आयोग के उपाध्यक्ष के0 सी0 पन्त के द्वारा पंचायतों जैसी संस्थाओं को स्वागत योग्य संस्था बताया गया है। यथा "स्थानीय महत्वपूर्ण सेवाओं को प्रदान करने का दायित्व पंचायत राज संस्थाओं पर तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं पर डाल देना चाहिये, बजाय इसके कि उनका नियंत्रण व निर्देशन उच्च स्तरीय संस्थाओं द्वारा किया जाय।"

ऐसे विद्वजन जिन्होंने न तो ग्रामीण जीवन में कभी सांस ली और न ही ग्रामीण जीवन उन्हें कभी फूटी आखों सुहाया, न जिन्होंने निर्धनता रेखा से नीचे रहने वालों का उत्पीड़न ही देखा, और न उनके अविरल गति से बहते आह कराह के आसुओं से उनका हृदय द्रवित हुआ, वे उनका उद्धार कैसे करते। योजना आयोग के उपाध्यक्ष के. सी. पन्त का यह सुझाव संविधान के 73 वें 74 वें संशोधित

अधिनियम 1992 के अनुरुप ही है। नौवी पंचवर्षीय योजना (1997–2002) के उद्देश्यों में एक उद्देश्य, उन जन सहयोगी (पंचायत राज जैसी) संस्थाओं को बढ़ावा देना व आत्मनिर्भर बनाना था, जिनमें ग्रामीण क्षेत्र का विकास तेजी से सम्भव हो सके। यह स्वीकार किया गया कि लोकतान्त्रिक व्यवस्था के सुदृढ़ व सफल होने के लिये आवश्यक है कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण इस प्रकार किया जाय कि स्थानीय ईकाइयाँ उसी क्षेत्र के लोगों की सहभागिता द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर लोकतान्त्रिक आधार पर स्थापित की जा सकें और अन्ततः ''ग्रामीण प्रजातन्त्र'' एक वास्तविकता बन सके।

भारतीय संविधान में पंचायत के गठन के लिये प्रावधान किया गया है। संविधान का भाग–9 पंचायतों के विषय में है। इसमें अनुच्छेद 243 (क) से 243 (ण) तक के अनुच्छेद हैं। स्थानीय शासन जिसके अन्तर्गत नगरीय और ग्रामीण क्षेत्र दोनों ही हैं, अनन्य रुप से राज्य का विषय हैं।

बलवन्तराय मेहता समिति 1956, अशोक मेहता समिति 1977 तथा एल0 एम0 सिंघवी समिति 1986 सभी कुछ परिवर्तनों के साथ पंचायत राज को सवैधानिक दर्जा देने की सिफारिश की थी। उसी के बाद 1992 में पंचायत राज विधेयक पास हुआ जो महात्मा गान्धी के ग्राम स्वराज के स्वप्न साकार होने की दिशा में एक सार्थक प्रयास का शुभारम्भ था। 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 में राज्यों में गाँव पंचायत द्वारा जिला स्तरों पर ठोस सक्षम और उत्तरदायी पंचायतों की त्रिस्तरीय प्रणाली स्थापित करने की परिकल्पना की गई। राज्यों से आशा की गई कि इन निकायों को पर्याप्त शक्तियाँ, उत्तरदायित्व व वित्तीय साधन प्रदत्त कराये जायेंगे ताकि वे आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिये योजनायें तैयार करा सकें और इन्हीं सभी भावनाओं व विचारों को साकार रुप प्रदान करके सत्ता का विकेन्द्रीयकरण सम्भव हो सके। संविधान की 11वीं अनुसूची के तहत पंचायतों को अपने

आर्थिक विकास से सम्बद्ध 29 विषयों की योजनायें और कार्यक्रम तैयार करके और उससे लाभ प्राप्त करने का अधिकार है, जिससे सामाजिक न्याय सम्भव हो सके।

पंचायती राज संस्थाओं पर सरकार द्वारा प्राशासकीय नियंत्रण किया जाता है, जिलाधीश व प्रखण्ड विकास अधिकारी प्रमुख पदाधिकारी होते हैं, जिनके द्वारा सरकार इन पर नियंत्रण रखती है। पंचायत समिति और जिला परिषद के प्रपत्रों की समय–समय पर जाँच उच्च पदाधिकारियों द्वारा होती रहती है। राज्य सरकार द्वारा दिया गया ऋण तथा अनुदान इन संस्थाओं पर नियंत्रण रखने के प्रमुख साधन हैं।

उत्तर प्रदेश में जब से (12 अप्रैल 1999) सरकारी आदेश हुआ है, विकेन्द्रीयकरण की लहर तेजी से गाँव–गाँव में फैल रही है तथा शिक्षा, सिंचाई, पेयजल, युवाकल्याण, खाद्यान्न, चिकित्सा सेवायें एवं स्त्री व बाल कल्याण, पशुधन, कृषि व ग्रामीण विकास योजनायें तेजी से संचालित की जा रही हैं और इसके लिये त्रिस्तरीय पंचायत राज संस्थाओं की स्थापना हो रही हैं। ये त्रिस्तरीय संस्थायें निम्नलिखित हैं :–

1. ग्राम पंचायत।
2. ब्लाक या प्रखण्ड पंचायत।
3. जिला पंचायत।

(१) ग्राम पंचायत

उपरोक्त त्रिस्तरीय संस्थाओं में प्रत्येक गाँव में ग्राम पंचायत सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों को कार्यान्वित करती है। ग्राम पंचायत ग्राम सभाओं व ग्राम समितियों का गठन व प्रबन्ध करती हैं, जिनका कार्य लाभार्थियों की सम्पूर्ण जानकारी रखना तथा लाभार्थियों को हर प्रकार की योजनाओं की जानकारी देना होता है। कभी–कभी विशेष ग्रामसभायें भी गठित की जा

सकती हैं जैसा कि केरल राज्य में है।

(२) ब्लाक या प्रखण्ड पंचायत

त्रिस्तरीय ढाँचे के मध्यभाग के अन्तर्गत ब्लाक या प्रखण्ड पंचायत आती है। इनका कार्य खण्डवार आर्थिक समीक्षा करना होता है। इसकी भूमिका ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम सभाओं आदि का गठन करना न होकर ग्रामीण क्षेत्रों में चल रही अनेक ग्रामोत्थान योजनाओं के मध्य समन्वय स्थापित करना होता है। कुछ लोगों के मतानुसार इन ब्लाक पंचायतों का कोई महत्व नहीं है जबकि मेरा कहना यह है कि जब ग्रामोत्थान की अनेकानेक योजनायें विभिन्न विभागों से व सरकार के आदेशों और निर्देशों पर ग्रामीण क्षेत्रों में लागू की जाती हैं और वे प्रखण्डवार बनाई जाती हैं तो यदि उनमें आवश्यक समन्वय न किया गया तो अनावश्यक दुहराव व मौद्रिक हानि एवं फिजूलखर्ची सम्भव हो सकती है। अस्तु त्रिस्तरीय ढाँचे की प्रखण्ड या ब्लाक पंचायत एक अनिवार्यता है।

(३) न्याय पंचायत या जिला पंचायत

न्याय पंचायत या जिला पंचायत 1991 में एक सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार प्रारम्भ की गई थी। इनके पास ग्राम ही नहीं वरन् नगर पालिकाओं पर भी नियंत्रण का अधिकार है। जिला पंचायतों ने डिस्ट्रिक्ट काउन्सिल का स्थान ले लिया है। जिला पंचायतों को 80 प्रकार के ग्रामोत्थान के कार्यों में से 21 कार्य ही करने का अधिकार दिया गया है। प्रखण्ड पंचायत की भाँति, जिला पंचायतों को कर लगाने का अधिकार नहीं होता बल्कि इनको आर्थिक आवश्यकताओं के लिये सरकार पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

निष्कर्षतः यह कहना होगा कि पंचायत राज में सफलतायें कम व विफलतायें अधिक उजागर हुई हैं, तथापि हमें ग्रामोत्थान करना है तो गाँव से

जुड़ी (ग्रासरुट लेविल) इन्हीं संस्थाओं को सुधारना व इन्हीं के माध्यम से ग्रामीण समस्याओं का सभीचीन हल निकालना होगा। महात्मा गान्धी के अनुसार ''पंचायत हमारा बड़ा पुराना और सुन्दर शब्द है। गाँव के लोगों के द्वारा चुने हुये पाँच आदमियों की सभा होगी, प्रत्येक गाँव में प्रजातंत्र या पंचायतराज होगा, उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। हर एक गाँव को अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा, तभी नवभारत का निर्माण सम्भव होगा।''

विनोबा भावे के अनुसार ''सारी भौतिक सत्ता गाँव में रहे और केन्द्र में नीतिवान चारित्रिक लोग जाँय, जिनकी नैतिक सत्ता चले, भौतिक सत्ता गाँव में ही रहना चाहिये।''

वर्तमान में भी संविधान के 73 वें संशोधन में पंचायती राज संस्थाओं का सवैंधानिक दर्जा स्वीकार किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत ग्राम स्तर पर 227698 पंचायमें, मध्यवर्ती स्तर पर 5906 पंचायतें व जिला स्तर पर 474 पंचायतें देश भर में गठित की गई हैं। इन संस्थाओं को स्वशासन–संस्थाओं के रुप में काम करने के अधिकार सौंपे गये हैं और इनको लागू करने का दायित्व भी सौंपा गया है। इन पंचायतों को कर लगाने व वसूलने का भी अधिकार दिया गया है। इतना ही नहीं संविधान मे पंचायतों के संसाधनों को बढ़ाने के लिये केन्द्रीय वित्त आयोग से राज्य की संचित निधि में वृद्धि के उपायों की सिफारिश करने को कहा गया है। साथ–साथ जहाँ पंचायतों को वित्तीय अधिकार प्रदान किये गये हैं वहाँ उनसे उनके कार्यकलापों में पारदर्शिता लाकर धन का सही उपयोग करना भी उतना ही आवश्यक बताया गया है। सर्वोपरि जितनी भी ग्रामीण योजनायें है उनकी सीधी जिम्मेदारी पंचायतों को सौंपी जा रही है व जो भी मध्यस्थ संस्थायें है उनको हटाया जा रहा है।

इस प्रकार एक तरह से हर ग्रामीण सामाजार्थिक, साँस्कृतिक व शैक्षिक क्रियाओं के सफल क्रियान्वयन में पंचायतों का पूर्ण नियंत्रण व निर्देशन रहेगा।

अन्ततः ग्राम पंचायतें या पंचायत राज संस्थायें ही ग्रामोद्धार का एक मात्र विकल्प हैं और इन्हीं के नियंत्रण में यदि ग्रामीण उपनिवेश चलाये जायेगे, तो गाँवों में खुशहाली लौटेगी व गाँवों का चतुर्मुखी विकास सरलता से सम्भव हो सकेगा।

चौथा स्तम्भः-

उपनिवेश स्तम्भ

गावों में विभिन्न स्तरों पर उपनिवेश स्थापना की मेरी चतुर्भुजी परियोजना की कल्पना सबसे महत्वपूर्ण व किसी हद तक मौलिक भी कही जा सकती है। वस्तुतः मेरा यह विचार कई देशी–विदेशी, प्राचीन व अर्वाचीन विचारवीथियों की परिणति कहा जा सकता है। इसमें इजरायल की सहकारी बस्तियों या उपनिवेशों का, रुस के समुदायिक क्षेत्र के 'मशीन ट्रेक्टर स्टेशन' का, रेफीसन की नैतिकता का, शुल्जे की व्यवहारिकता का, ग्रामीणों को एक छत या छाते के नीचे कृषि विकास व लघु या कुटीर उद्योग विस्तार की सभी सुविधायें सुलभ कराने के विचार का और ग्रामीण प्राथमिक सहकारी समितियों को उत्तर प्रदेश सरकार में वर्तमान सहकारिता मंत्री की 'कल्पतरु' की परिकल्पना का समावेश है। इसमें एक ही छत के नीचे कृषि साख की आपूर्ति, ग्रामीण व कुटीर उद्योगों की समस्याओं का निराकरण, उत्पादन–केन्द्रित वातावरण का निर्माण और अन्ततः वर्तमान में इन सभी से जुड़ी दुर्बलताओं, दोषों, घोटालों व भृष्टाचार को दूर करने कर प्रयास मात्र है।

इस सबका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि ऋण राशि या मुद्रा का इस भौतिकवादी युग में बिल्कुल प्रयोग ही न हों, ऐसी कल्पना करना एक दिवास्वप्न से कम नहीं होगा। वरन् कल्पना का उद्देश्य यह है कि मुद्रा या ऋण–राशि का हस्ताँतरण इस प्रकार हो कि इसका दुरुपयोग यथासम्भव कम किया जा सके, तथा संस्थागत वित्त का महत्व, उसकी संवायें या लेन–देन की क्रियायें अप्रभावित रहें और बैंक जैसी संस्था का दायित्व व क्रिया कलापों का

स्वरुप इस प्रकार यथासम्भव परिवर्तित किया जा सके, जिससे बैकों को भी आर्थिक संकटों से या समितियों के आर्थिक असन्तुलन से या फेल होने से बचाया जा सके तथा नौरशाही, इन्सपेक्टरराज, तथा क्लर्कों की कुटिल नीति यदि पूर्णरुपेण अन्त न हो सके तो कम से कम किसी सीमा तक उस पर अंकुश अवश्य लगाया जा सके।

प्रखण्ड स्तरीय बृहताकार उपनिवेश व ग्राम स्तर पर लघु स्तरीय उपनिवेश अर्थात् ग्राम प्रजातन्त्र

मेरे चतुर्भुजी परियोजनां के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार विभिन्न स्तरीय उपनिवेश ही हैं जिनमें ग्रामीणवासियों व कृषकों को हर प्रकार की कृषि व उद्योग सम्बन्धी सुविधायें, कृषि एवं उद्योग सम्बन्धी उपकरण एवं उनकी सेवायें तथा ग्रामजीवन की आधारभूत आवश्यकतायें यथा पीने का पानी, सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था व रहने के लिये समुचित गृहस्थान व वर्षभर कार्य संलग्नता हेतु अवसर सुलभ हों। जहाँ तक सामाजिक सांस्कृतिक व शैक्षिक पक्ष की बात है तो ग्राम पंचायत राज संस्थायें इसके लिये आवश्यक अधिनियम 73 के संशोधन के द्वारा सक्षम बना दी गई हैं। इस प्रकार जहाँ तक ग्राम्य जीवन के आर्थिक पक्ष का प्रश्न है उसके लिये इन उपनिवेशों का अस्तित्व नितान्त आवश्यक है।

मेरा तर्क इस संदर्भ में यह है कि यदि हर ब्लाक में व गाँव में योजनाबद्ध विधि से इन उपनिवेशों का निर्माण शुरु होगा तो स्थानीय ग्रामवासियों को कार्य मिलेगा और वे शहर की ओर पालायन नहीं करेंगे, जिससे शहरों में घनी व गन्दी बस्तियों के वसने में कमी आयेगी' और गावों में शहरी झलक सम्भव हो सकेगी।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जब एक सम्पूर्ण क्षेत्र में प्रखण्ड अधिकारी का निवास होगा, ग्रामीण बैंक की शाखा उसी अधिकारी के कार्यालय से सटी होगी, पम्पिंग सेट व ट्रैक्टर की कार्यशाला की स्थापना वहीं पर होगी, उसके अधिकारी व तकनीकी कर्मचारी वहीं रहेंगे, जिससे हर समय उनकी सेवायें उपलब्ध हो सकेंगी, और फिर उसी के साथ जुड़े होंगे बीज व खाद या उर्वरक व कीटाणुनाशक दवाओं के गोदाम और इनका दायित्व भार उठाते अध्यक्ष, सचिव, कोषाध्यक्ष व कर्मचारीगण वहीं उपस्थित होंगें। सब मिलाकर एक अच्छी खासी बस्ती या उपनिवेश की झलक प्रस्तुत करेंगे जिसमें बैंक गार्ड आदि चौकसी करने को होंगें, जो समस्त उपनिवेश के लोगों को सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होगे कई सुरक्षा गार्ड व चौकीदार होने से बैंक डकैती आदि का भय कम होगा, विद्युत का प्रकाश होगा, पानी की सुविधा होगी, व अधिकारी व कर्मचारियों का एक पढ़ा लिखा वर्ग होगा, तो फिर यह सब उन नवयुवकों को गाँवों में रहने के लिये आकर्षित करेंगा जो अभी शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। इसीलिये इस प्रकार के प्रयास से गाँव व गाँववासियों का हर प्रकार से भला होगा व ग्राम व कृषि विकास में देर न लगेगीं। ग्रामीण रोजगार के नये–नये अवसर सृजित होते रहेंगे, ग्रामीण रहन सहन के स्तर में सुधार आयेगा, और उनमें कुछ नया कर गुजरने की भावना जागृत होगी।

एक उल्लेखनीय अन्तर यह भी आयेगा कि किसान का बेटा, पढ़ने लिखने के पश्चात् जब कालेज से घर पहुँचता है तो उसे प्राचीन पद्धति का अनुसरण करना, लकड़ी के हल चलाना व बैल हाँकना अपनी हैसियत से नीचा व बुरा लगता है, पुरानी परिपाटी उसे काटने दौड़ती है और वह हीन व शर्मसार अनुभव करता है परन्तु यदि उसी को ट्रेक्टर से कृषि कार्य करने को मिलता है, चाहे वह किराये पर ही क्यों न हो, तो वह शान से गौरवान्वित अनुभव करता और खुशी–खुशी कार्य करने को तैयार ही नहीं वरन् उतावला

रहता है। ग्रामीण मिनी व टायनी उपनिवेशों में जब रुसी प्रणाली को अपनाते हुये हर गाँव में दो चार ट्रेक्टर एवं नवीनतम आधुनिक सुविधायें सरकार द्वारा या बैंक द्वारा, अथवा साख संस्थाओं द्वारा किराये पर उपलब्ध होंगी वो फिर लघु व सीमान्त कृषक व उनके पुत्र व पुत्रियाँ कृषि की आधुनिक तकनीकी एवं पद्धति का अनुसरण करते हुये सहर्ष इस कार्य में तनमनधन से जुटेंगे व कृषि व ग्राम विकास दोनों ही सम्भव हो सकेंगे।

उपनिवेशों का स्वरुप

प्रखण्ड (ब्लाक) स्तर पर (मिनी) लघु व ग्राम स्तर पर लघुतर व लघुतम् उपनिवेश

या

ग्रामीण प्रजातन्त्र के लिये प्रारम्भिक सुविधायें

प्रथम चरण : (अ) प्राथमिक आवश्यकतायें :– रहने के लिये घर, पीने का पानी

(ब) अन्य आवश्यकतायें :– सामाजिक आवश्यकतायें व परम्परागत पेशों से जुड़ी आवश्यकतायें।

द्वितीय चरण : कृषि (उच्च कोटीय तकनीकी व मशीनीकृत कृषि क्रियायें)

(अ) सेवा केन्द्र (सर्विस स्टेशन)

(1) ट्रेक्टर व ट्राली, (2) बुलडोजर (3) ड्रिलर

(4) विनोअर (5) हार्वेस्टर (6) पम्पिंग सेट

(7) ट्रक या अन्य शीध्रगामी यातायात के साधन

(8) आवश्यक कल पुर्जे

(ब) गोदाम, सहकारी संस्थायें व भण्डारगृह

(1) उर्वरक (2) कीटाणुनाशक दावायें

(3) उन्नत बीज (4) फसल का भण्डारण

(5) अन्य कुटीर उद्योगों में बना सामान

तृतीय चरण :- सहकारी संघवाद
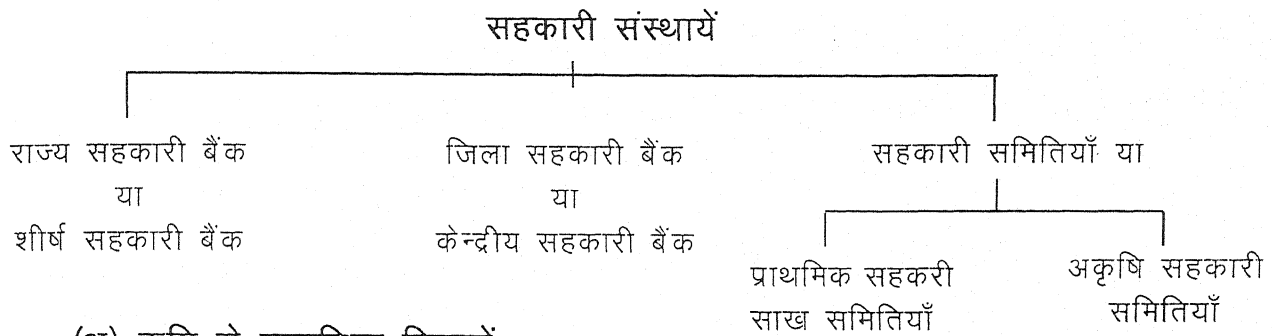
(अ) कृषि से सम्बन्धित क्रियायें :–

(1) डेयरी उद्योग (2) गाय–भैंस व भेड़ बकरी पालन

(3) सुअर व मुर्गी पालन (4) मत्स्य पालन (5) मघुमक्खी पालन

(ब) अकृषि क्रियायें :– (औद्योगिक सहकारियाँ)

(1) कुटीर उद्योग (2) लघु उद्योग

(3) परम्परागत उद्योग

चौथा चरण -: पंचायत संस्थायें

(अ) ग्राम सभा (प्रत्येक गाँव में)

(2) ग्राम पंचायत (5000 से अधिक आबादी वाले गाँव में)

(3) न्याय पंचायत (2000 से अधिक आबादी वाले गाँव में)

पंचायतों के कार्य

सामाजिक	मौद्रिक	प्रशासनिक	अन्य
स्कूल, सड़कें सफाई, प्रकाश, चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें बिजली आदि।	बैंक से प्राप्त ऋण राशि सरकार से प्राप्त अनुदान सभी का सही–सही लेखा जोखा रखना सम्बन्धी कार्यकलाप,	कानून व्यवस्था, झगड़ों का निपटारा, राज्य सरकार से एवं बैंकों के माध्यम से मिलने वाली ऋणराशि, अनुदान राशि की उचित देखरेख व नियन्त्रण	सामाजिक, धार्मिक तथा क्रीड़ा सम्बन्धी कार्यकलाप, मनोरंजन क्रियायें

ग्रामीण क्षेत्रों में ब्लाक या प्रखण्ड स्तर पर लघु उपनिवेश, 5000 से अधिक जनसंख्या वाले गांवों में लघुतर उपनिवेश एवं इससे कम जनसंख्या वाले गांवो में लघुतम उपनिवेश निर्माण करके कृषि व लघु या कुटीर उद्योग सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं का तत्कालिक स्थानीय हल सम्भव करने का मेरा विचार स्वतः दो प्रश्न सामने लाता है। ये प्रश्न या संशय हैं :–

(1) इस प्रकार की ग्रामीण उपनिवेशों की श्रंखला का निर्माण कहाँ तक तर्क–संगत, न्यायोचित व उपयुक्त है।

(2) इस प्रकार की महत्वाकाँछी योजना अर्थात ग्रामीण उपनिवेशों के श्रंखलाबद्ध निर्माण के लिये धनराशि कहाँ से आयेगी।

(१) ग्रामीण उपनिवेशों के निर्माण की उपयुक्तता

हम सभी योजनाओं के कार्यान्वयन के इस पक्ष से अवगत है कि हमारे देश में अनेक प्रदेश है, प्रदेश कई जनपदों में विभक्त हैं, और जनपद ब्लाक में बँटे हैं, जिनके अन्तर्गत कई गाँव आते हैं। ऐसे में 'सामूहिक क्षेत्र प्रणाली (क्लस्टर ऐरिया एप्रोच) या सेवा क्षेत्र योजना (सर्विस एरिया एप्रोच) या अन्य कई क्षेत्रों पर फैली योजनायें क्यों बनाई जा रही है। इन सभी प्रकार की कृषि–सहायक प्रणालियों या योजनाओं का एक दोष यह स्पष्टतः सामने आया है, कि इन योजनाओं में कोई क्षेत्रीय सीमायें नहीं है जिन पर कोई योजना, प्रणालीं या विधि अपनायी जानी है। परिणामतः ऐसे में जहाँ जनपद के कई भाग जहाँ आवागमन या यातायात के सम्पर्क मार्ग नहीं हैं, या ग्रामीण क्षेत्रों के घने जंगलों से घिरे होने के कारण वहाँ के निवासी जंगली, खूँखार है व शेष जनसमुदाय से कटे हुये हैं, वहाँ 'जंगल राज' है। वे आज भी लूट–मार पर आश्रित अशिक्षत जनजातियाँ हैं। ऐसे अनेक जनपदीय क्षेत्र रामपुरा, माधौगढ़ व मध्यप्रदेश के भिण्ड जनपद से मिले क्षेत्र हैं। यहाँ 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का नियम आज भी चलता है। अनेक डकैत इन्हीं घने बीहड़ वीरान क्षेत्रों

में आज भी रह रहे हैं। कारण यह है कि योजनायें ब्लाक स्तर पर नहीं थीं और अनेक ऐसे क्षेत्र दो तहसीलों के किनारों पर हैं जहाँ कृषि विकास की किरण आज तक नहीं फूटी। यही वजह थी कि ग्रामोत्थान या कृषि विकास की जो भी योजनायें आयी, वे अच्छी तो थी, परन्तु इनसे जनपद के क्षेत्र–विशेष ही लाभान्वित हुये, शेष पिछड़े रह गये और आज भी हैं।

इस सम्बन्ध में शोध कार्य हेतु जब मैने स्थानीय अधिकारियों तथा तहसीलदार आदि से इस उपेक्षा का कारण जानने का प्रयास किया, तो अधिकांश ने उपेक्षा भाव से उत्तर दिया, या टाल दिया। वे कोई स्पष्ट कारण नहीं बता सके जो तर्क संगत हों कि क्यों जनपद के कई बड़े–बड़े प्रखण्ड ऊसर व अविकसित पड़े हैं। अस्तु ऐसी ग्रामीण योजनायें जिनकी क्षेत्रीय सीमायें, जिन पर समग्र विकास होना चाहिये था नहीं हो सका। अतः अब जब ब्लाक स्तर पर ग्रामीण विकास आधारित है तो ब्लाक स्तरीय योजनायें भी बनना चाहिये, जिससे उनमें लगाये गये राज्य कर्मचारी उस समस्त क्षेत्र के विकास के लिये उत्तरदायी हों। साथ–साथ जब गाँव–गाँव में पंचायत राज की स्थापना हो रही है और प्रत्येक गाँव के विकास की बात सोची जा रही है तो फिर ब्लाक स्तर पर व ग्राम स्तर पर ही योजनायें बनायी जाना चाहिये, जिससे कहीं अत्यधिक विकास व विस्तार व कहीं विकास शून्यता की स्थिति उत्पन्न न हो सके। इसलिये जब ग्रामीण उपनिवेश बन जायेंगे, तो जो अधिकारी या कर्मचारी उसमें कार्यरत होगें, उनका दायित्व भी स्पष्ट रुप से परिभाषित किया जा सकेगा व उसका समय–समय पर निरीक्षण व मूल्यांकन भी किया जा सकेगा। उन पर पंचायतों व जिलाधिकारी का नियंत्रण व निगरानी रहेगी।

इसके साथ–साथ जब कुछ ग्रामीण उपनिवेश सफल हो जायेंगे, उनमें प्रगति दिखेगी तो अन्य उपनिवेशों में स्पर्धा की भावना जागेगी और इस प्रकार एक के बाद एक सफलता की सीढ़ी पर चढ़कर अन्ततः सम्पूर्ण ब्लाक व

फिर सम्पूर्ण जनपद का चतुरॉंगी विकास स्म्भव होगा। लोगों में काम करने की उमंग व उत्साह जागृत होगा, और तब होगा समग्र ग्रामीण व कृषि विकास का सपना साकार और ग्राम–वासियों में आशा का संचार।

कुछ क्षणों के लिये यह ग्रामीण उपनिवेश का विचार हास्यास्प्रद और अत्यधिक अनार्थिक लगेगा और ऐसा भी आभास होगा कि यह असम्भव सम्भावना है। परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि ग्रामीण उपनिवेश योजना पर गम्भीरता से गहन विचार किया जाय, तो अग्रॉंकित तर्क निःसंदेह सारे संदेहों को समाप्त कर देंगे।

सर्वप्रथम इस सम्बन्ध में उन सभी प्रारम्भिक कृषि सुविधाओं की अनिवार्यता व महत्व को ध्यान में रखना होगा, यथा जुताई गुड़ाई, सिंचाई, वुआई, निराई, कटाई, जिनके न होने पर कृषि विकास दिवास्वप्न बनकर रह जायेगा, क्योंकि इन कृषि–क्रिया कलापों में सहायक यान्त्रिक सेवायें, लघु व सीमान्त कृषक की सामर्थ्य से आज भी परे हैं, और इसलिये इन सेवाओं को प्राप्त करने के लिये उसे अत्यधिक कीमत देनी पड़ती हैं। फिर भी वे पर्याप्त समय से उसे नही मिल पातीं। इसका दुष्यपरिणाम यह होता है कि जितनी बार वह इन मंहगी प्रारम्भिक कृषि सेवाओं को प्राप्त करता है तो वह या तो गरीब ही रहता है या फिर गरीबी रेखा के नीचे पहुँच जाता है और मंहगी कृषि सेवाओं के बोझ में कराहता हुआ इस कथन को किसी हद तक आज भी चरितार्थ करता है कि 'भारतीय कृषक ऋण में जन्म लेता, ऋण में जीवित रहता है व मरने के बाद ऋण को अपने पुत्रों के लिये छोड़ जाता है।' ऐसा एक दो नहीं वरन लघु व सीमान्त सभी कृषकों पर लागू होता है जिनकी जनपद में वर्तमान संख्या 153352, है तथा जिनमें 70 प्रतिशत कृषक यह सेवायें किराये पर लेते हैं। शेष 30 प्रतिशत आज भी अपने कमजोर हल और बैल से कृषि कार्य करते हुये, इन प्रारम्भिक सुविधाओं के न मिलने पर

उत्तरोत्तर अधिकाधिक गरीब होते चले जा रहे हैं। इसीलिये ऐसे सभी दरिद्रनारायणों की दरिद्रता को समाप्त करनें के लिये सभी कृषि–संयत्र सेवायें केवल अनिवार्य ही नितान्त प्राणदायी हैं और इसीलिये प्रखण्ड स्तर पर व ग्रामीण स्तर पर लघु, लघुतर एवं लघुतम अपनिवेश सेवायें एक मात्र साधन व सहारा है जो उनके दुख–दर्द और अपरिमित आपदाओं को, जिसे वे शताब्दियों से झेल रहे हैं, का अन्त कर उनके जीवन में नव आशा व उल्लास का संचार करने में रामबाण औषधि व संजीवनी सिद्ध होगा।

नकद रूप में दी जाने वाली साख सुविधाओं एवं केन्द्रीय बैंकों की ऋण प्रदान करने की प्रणाली ने घपलों एवं भृष्टाचार को जन्म दिया है। ग्रामीण उपनिवेश की इस योजन के अन्तर्गत जब सुविधायें सेवाओं एवं वस्तुओं के रूप मे ंदी जायेगी तो निश्चय ही सहकारी बैकों की घोखाघड़ी पर अंकुश लग पायेगा। आज की तिथि (12–3–2003) में दैनिक जागरण के सम्पादकीय समाचार के अनुसार छह राज्यों के 50 से अधिक बैंक दीवालिया होने के कंगार पर पहुँच चुके हैं। इस पर रिजर्व बैंक की स्वाभाविक चिन्ता का उल्लेख किया गया है, परन्तुमात्र चिन्तित होने से तो विषम स्थिति से उबरा नहीं जा सकता, न ही सहकारी बैकों की राष्ट्रव्यापी शाखाओं व उनमें कार्यरत कर्मचारियों को समाप्त किया जा सकता है। आखिर यही केन्द्रीय बैंक मध्यस्थ ही नहीं, कृषि विकास की आधारशिला के प्रमुख स्तम्भ व एक प्रकार से नींव के पत्थर हैं। इनकी कार्यप्रणाली के दोषों का त्वरित निराकरण करना एक अनिवार्य शर्त व विवशता बन गई है और यही वह परिस्थितजन्य आवश्यकता है जो ग्रामीण उपनिवेशों के निर्माण व सहकारी बैंकों की कार्य प्रणाली में बदलाव व उनके पुनर्निमाण की सार्थकता कों सिद्ध करती है।

ग्रामीण उपनिवेशों का अर्थ-प्रबन्धन-कैसे और कहाँ से ?

मै पुनः दुहराता हूँ कि प्रथमदृश्टया यह परियोजना काल्पनिक व पूर्णतया अव्यवहारिक लगेगी परन्तु यदि हम इस परियोजना के आर्थिक पक्ष या वित्तीय संसाधनों पर ध्यान देना चाहें, तो हमें अग्राँकित आर्थिक हानियों पर ध्यान देना होगा, जो वर्षानुवर्ष हमको जानबूझ कर उठानी पड़ रहीं हैं, तथा उन समस्त आर्थिक हानियों को 5 से गुणा करकें सम्पूर्ण पंचवर्षीय हानियाँ निकालनी होगी, क्यों कि हमारी अधिकांश योजनायें 5 वर्ष के लिये ही बनाई जाती हैं। अस्तु निम्नाँकित मदों पर ध्यान दें :–

(1) जो सरकारी राहत या सहायता (सब्सड़ी) अनेक मदों में दी जाती हैं।

(2) जो ऋण–राशि केन्द्रीय बैंक या उनकी ग्रामीण शाखाओं द्वारा दी जाती है और उनकी वसूली के लिये अतिरिक्त प्रयत्नों पर जो घनराशि खर्च करनी पड़ती है।

(3) बुरे व संदिग्ध ऋण (बैड व डाऊटफुल डेट)

(4) वह रकम जो प्रतिवर्ष बैकों को राइट आफ करके खत्म कर देनी पड़ती है।

(5) प्राकृतिक आपदाओं के घटित होने पर मिलने वाली कृषि आदान सुविधाओं के समय से न मिलने पर होने वाली आर्थिक हानि।

(6) दोषपूर्ण ऋण–राशि हस्ताँतरण व्यवस्था, जिसके अन्तर्गत अधिकाँश ऋण–राशि का भाग बैंक व सहकारी समितियों के अधिकारियों, कर्मचारियों, अध्यक्षों, सचिवों या प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा हड़प कर लिया जाता है और प्रति 100 रु0 में से मात्र 15–30 रु0 ही मुश्किल से कृषि विकास में लगाये जा पाते हैं।

(7) इसी प्रकार प्रारम्भिक कृषि वस्तुयें व सुविधायें प्राप्त करने हेतु लघु व सीमान्त कृषकों को कितनी भागदौड़ करनी पड़ती है, कितना कष्ट

उठाना पड़ता व मानसिक वेदना का शिकार होना पड़ता है।

(8) विकास की बिड़म्बना :– बैंक कर्मचारियों व सम्बन्धित अधिकारियों की उपेक्षापूर्ण नीति के परिणामस्वरुप, कृषि विकास के लिये आवंटित धनराशि व्यर्थ में कोष में पड़ी रहती है व अन्ततः लौटानी पड़ती है।

यह दुर्भाग्य पूर्ण और चिन्ताजनक है कि एक ओर योजना आयोग बार–बार जोर देकर कह रहा है कि उत्तर प्रदेश कृषि ग्रामीण विकास एवं विशेष क्षेत्र योजनाओं जैसी परियोजनाओं पर किये गये व्यय में वृद्धि करे, और दूसरी ओर प्रदेश सरकार तनिक भी गम्भीरता का परिचय नही दे रही है। निश्चय ही यह एक हतप्रद करने वाला ही नही वरन् हास्यप्रद स्थिति को और अधिक हास्यप्रद बना देने वाला तथ्य है। वित्तीय वर्ष 2002–03 मे राज्य सरकार को विभिन्न मदों पर व्यय करने के लिये 7250 करोड़ रुपया की धनराशि आवंटित की गई लेकिन दिसम्बर 2002 तक मात्र 2649 करोड़ रु0 ही व्यय किये गये जो कुल स्वीकृत वार्षिक परियोजना का 36.6 प्रतिशत मात्र है।

विकास कार्यों के लिए आवंटित धनराशि का पूरा उपयोग न होने पर राज्य सरकार का यह तर्क कि ऐसा बजट की स्वीकृत में देरी के कारण हुआ, गले से उतरने वाला तर्क नहीं है और न इससे प्रदेश सरकार आवंटित धनराशि के सदुपयोग में तत्परता का परिचय देने से बच ही सकती है। ऐसा लगता है कि उत्तरप्रदेश सरकार विकास कार्यों को प्राथमिकता देने के प्रति गम्भीर ही नहीं है और इसीलिये जो बांछित प्रगति व विकास कृषि या लघु व कुटीर उद्योग क्षेत्र में दिखाई पड़ना चाहिये था वह नही हो सका है।

एक तथ्य और भी उजागर हुआ है कि :–

1. विशेष क्षेत्र कार्यक्रम के लिये स्वीकृत 200 करोड़ का 0.02 प्रतिशत,
2. उद्योग एवं खनिज के लिये स्वीकृत 57 करोड़ का 3.5 प्रतिशत एवं

3. विज्ञान प्रोद्योगिकी एवं पर्यावरण के लिये मंजूर 70 करोड़ का 2.2 प्रतिशत ही खर्च किया गया।

यहाँ उल्लेखनीय है कि कोई रकम कृषि और ग्रामीण विकास पर खर्च करने की आवश्यकता ही नहीं समझी गई। इतनी स्वीकृत धनराशि का ब्याज भी व्यर्थ ही गया।

निष्कर्षतः उपरोक्त उल्लिखित अष्ठ-बिन्दुओं का यह गणितीय सूक्ष्मावलोचन आज के उच्च तकनीकी एवं कम्प्यूटर युग में अनुमानित किया जाय तो कम से कम प्रत्येक प्रखण्ड या ब्लाक स्तर पर 5 से 6 करोड़ की वार्षिक हानि सरलता से आँकी जा सकती है। अब इस 5 से 6 करोड़ प्रतिवर्ष को यदि 5 से गुणा किया जाय तो 25 से 30 करोड़ रु0 की हानि सरलता से निकलती है जिससे कम से कम ब्लाकस्तर का उपनिवेश व उसके प्रारम्भिक कृषि विकास संसाधन जुटाए जा सकते हैं। और यदि पिछले 50 से 55 वर्षों का लेखा जोखा लगाया जाय जब से योजनाएं लागू की गई थी तब से हर ब्लाक गांव व छोटे-छोटे गांव में सभी स्तरों पर लघु, लघुतर असैर लघुतम उपनिवेश सफलता पूर्वक बनाये जा सकते थे और इससे देश में होने वाली हरित, श्वेत व नीली क्रान्ति में चार चाँद लग गये होते।

पुनः स्मरणीय है कि इन सभी योजनाओं में केन्द्रीय सहकारी बैंक मात्र मध्यस्थ की महत्वपूर्ण भूमिका निभाए, ऋण राशि या जो भी धनराशि मुद्रा के रुप में लेन देन के काम आये वह चेक या बैंक ड्राफ्ट के द्वारा हो, सभी 'इफको' व 'कृभको' या इसी प्रकार से उन्नत परिष्कृत बीज एवं उर्वरक प्रदान करने वाली संस्थाओं, कीटाणु नाशक दावाओं की आपूर्ति करने वाली संस्थाओं तथा कृषि संयंत्र प्रदान करने वाली संस्थाओं से थोक में कृषि की प्रत्येक आधरभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति कराई जाय। केन्द्रीय सहकारी बैंक आपनी ग्रामीण बैकिंग शाखाओं के माध्यम से इनका भण्डारण व संरक्षण करें

और इन सब पर सर्वशक्तिशाली ग्राम पंचायतें इनकी देखरेख कड़ी निगाह के साथ करें व ग्रामीणों की ग्राम–विशेष या स्थान विशेष की आवश्यकताओं का पूर्ण आँकलन करें, जिससे वास्तविक लाभार्थी लाभान्वित हो सकें, न कि फर्जी लाभार्थी बनाये जाय और बाद में वसूली होना ही असम्भव हो जाय, ऋण राशि डूब जाय, तथा बैंको पर आर्थिक संकट आ जाय और वे फेल होने लगे या दिवालिया घोषित हो जाँय।

एक और सुझाव यह भी है कि गांव में जो तकनीकी एवं प्रशिक्षित व्यक्ति जांय उन्हें रियायती दर पर भूमि रहने एवं जोतने बोने को दी जाय, तो वे गाँव से भागने की बात नहीं सोचेंगे, वे गांव से जुड़ जायेंगे, गाँव का और उनका हित एक हो जायेगा, और वे अधिक संलग्नता व स्थायित्व से कार्य करेंगे।

यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि एक बार उपनिवेश बन जाने पर ग्राम–वासियों या खेतिहर मजदूरों का कार्य खत्म नहीं होगा वरन् प्रारम्भ होगा और वे शहर की ओर भागने की बात नहीं सोचेंगे वरन् स्थायी रूप से रहने के साथ अपने बच्चों की पढ़ाई आदि पर भी ध्यान दे सकेंगे व कल पूर्जो की मरम्मत व अन्य कार्य भी सीख लेंगे।

अन्ततः जब ऐसे उपनिवेश बन जायेंगे व उनके कर्मचारी व अधिकारी अवकाश प्राप्त कर वहीं बस जायेंगे तो ग्राम–पंचायत की आय गृहकर तथा अन्य कर लगाकर बढ़ेगी, पढ़े लिखे सभ्य समाज का विस्तार होगा, जो ग्रामवासियों के जीवन सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा और यही 'ग्रामीण उपनिवेश', की वास्तविकता जिसकी सहकारी संस्थायें एक अभिन्न अंग होंगी, वास्तव में 'कल्पतरु' की कल्पना को सफलतापूर्वक, सरलतापूर्वक व स्वेछापूर्वक ग्राम्यजीवन व ग्रामवसियों द्वारा अंगीकार की जायेंगी, और तभी (और तब तक नहीं) हो सकेगा कृषि विकास व ग्रामीण चतुर्मुखी विस्तार और

दिखेगी वास्तविक ग्रामीण समृद्धि व सम्पन्नता। इस प्रकार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के आर्थिक–दर्शन का आधार, ग्राम–आधारित विकसित अर्थव्यवस्था का स्वप्न साकार हो सकेगा।

Bibliography

संदर्भित साहित्य

1. पुस्तकें :

1.	सहकारिता के सिद्धान्त	बी.पी.गुप्ता
2.	सहकारिता	बी.एस. प्रसाद
3.	कृषि अर्थशास्त्र	कालका प्रसाद भटनागर
4.	भारत की आर्थिक व्यवस्था	डा0 मामोरिया एवं डा. जैन
5.	भारतीय अर्थव्यवस्था	रुद्रदत्त एवं के.पी.एम. सुन्दरम
6.	भारतीय अर्थशास्त्र	ए.एन.अग्रवाल
7.	भारतीय कृषि समस्याएं	डा. मिश्रा
8.	Cooperative Movement in India	Hugh C. M.
9.	Agricultural Finacing in India	Chosal S.N,
10.	Panchyat Raj in Rajasthan	Matur M.V.
11.	Whither Agriculture in India	Dr. Baljit Singh
12.	Wealth in India	Joshi
13.	Cooperative Agriculture finance	Dr C.R. Reddy
14.	Principles & Pratice of Cooperative Banking In India	Chaubey B.N.
15	Cooperative Banking in India	Jaganath Mishra
16.	Rural Banking	Mehta N.C.
17.	Rural Cooperatives	Rao. L.R.
18.	Cooperative Credit Banking	Victor M.A.
19.	Cooperative Sector in India	Samiuddin & Mahfuger Rehman
20.	Rural Economice	Patel A.R. & KhanKoje
21.	Bank Finance for Rural Development	Naidu L.K.
22.	Rural India-Real India	Edited by Thingalaya N.K.
23.	Issues in India Agriculture	Real India Edited by Gupta K.R.

2. आर्थिक पत्रिकायें :

1. आर्थिक समीक्षा
2. योजनां
3. कुरुक्षेत्र
4. सहकारिता
5. कृषि विस्तार समीक्षा
6. उन्नत कृषि
7. ग्रामीण भारत
8. Coopperative Journal
9. All India Cooperative Reviews
10. Agricultural Extension Review

3. प्रतिवेदन :

1. All India Credit Survey Committee Report Vol II (1954)
2. All India Credit Review Committee Report
3. Agriculturel Finance Sub Committee Report
4. Allahabad Bank Report
5. Comittee on Cooperatives
6. Cooperative Planning Committee
7. Cooperative Movement in India (1939-46)-R-B-I
8. Credit Plans (District-Jalaun)
9. Eighth Five year Plan
10. Nineth Five Year Plan
11. Report of Chatrasal Gramin Bank Orai
12. सांख्यिकीय पत्रिका (जिला–जालौन) वर्ष–2000
13. वार्षिक ऋण योजना इलाहाबाद बैंक
14. जालौन डिस्ट्रिक्ट कोआ. बैंक लि., उरई (2000–2001)
15. उत्तर प्रदेश में सहकारिता 1997

4. समाचार पत्र :

1. दैनिक जागरण
2. हिन्दुस्तान
3. सहारा
4. Times of India
5. Hindustan Time
6. Economic Times

5. व्याख्यान :

Speech of Prime Minister Sri Atal Behari Bajpai at the function of NABARD awards for cooperative Bank New Delhi. May -7,1999